१९२८

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग में ई० हाल द्वारा मुद्रित
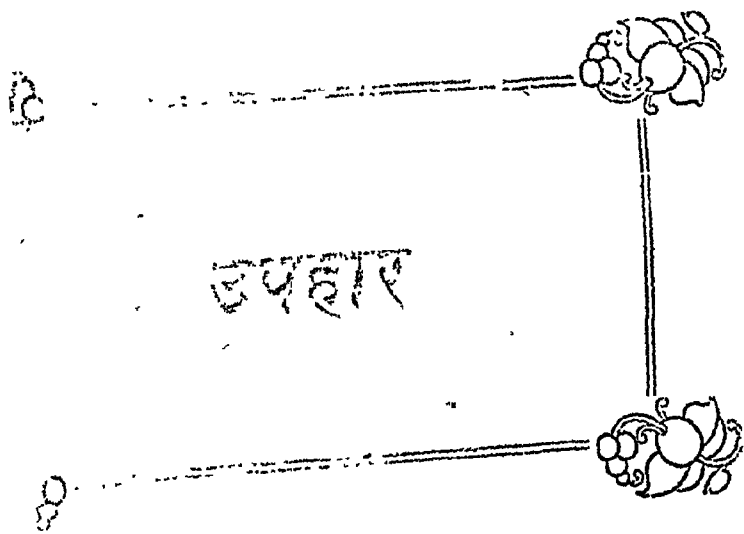
उपहार

# दो बात।

गुटका रामायण के अनेकों संस्करण निकल चुके हैं। हर एक अपनी अपनी पोथी को शुद्ध और दूसरे की पोथी को अशुद्ध क्षेपक बतलाते हैं। पर वास्तव में अब तक विरले ही संस्करण बिलकुल शुद्ध और क्षेपक रहित प्रकाशित हुए हैं।

रामायण ऐसी पवित्र अनमोल पुस्तक में इस महान कमी को हिंदी संसार में देख कर हमें दुख होता है और इसी को पूरा करने के विचार से हमने इसे छापा भी है। सफलता कहाँ तक हुई है पाठक ही बिचारें।

भर सक बाहरंग और अंतरंग दोनों के सुंदर बनाने की कोशिश की गई है। चित्रों की मनोहरता सुन्दरता और भाव पर ही पाठकों का प्रेम उमड़ता है और इसी कारण हमने इस गुटका में भी रंगीन और सादे लगभग २० चित्र दिए हैं। दाम ऐसा रक्खा गया है कि अमीर गरीब सब समान लाभ उठाएँ और तुलसी के घले, उसके अनमोल उपदेशों और सीखों को पढ़ें और अपने मन को शुद्ध और आत्मा को शांति दें।

प्रयाग।
—१—२१

भक्तशिरोमणि

# सूची

गोस्वामी तुलसीदास।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# ❀ रामचरितमानस

## प्रथम सोपान

## बालकाण्ड

अनुष्टुप्-वृत्त ।

श्लोक—वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ
भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥२॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥३॥
सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥४॥
उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥५॥

शार्दूलविक्रीडित-वृत्त ।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः ।
यत्सत्त्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम् ।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥६॥

वसन्ततिलका-वृत्त ।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

सोरठा—जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन-नायक करि-बर-बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन ॥

मूक होइ बाचाल, पङ्गु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल-कलिमल-दहन ॥
नील-सरोरुह-स्याम, तरुन-अरुन-बारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर-सागर-सयन ॥
कुन्द-इन्दु-सम देह, उमा-रमन करुना-अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन-मयन ॥
बन्दउँ गुरु-पद-कञ्ज, कृपा-सिन्धु नर-रूप-हरि ।
महामोह-तम-पुञ्ज, जासु बचन-रबि-कर-निकर ॥

बन्दउँ गुरु-पद-पदुम-परागा । सुरुचि-सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिय मूरि-मय चूरन चारू । समन सकल-भव-रुज-परिवारू ॥
सुकृत सम्भु-तन बिमल बिभूती । मञ्जुल मङ्गल-मोद-प्रसूती ॥
जन मन मञ्जु मुकुर मल हरनी । किये तिलक गुन-गन बस करनी ॥
श्रीगुरु-पद-नख मनि-गन-जोती । सुमिरत दिव्य-दृष्टि हिय होती ॥
दलन मोह-तम सो सुप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिँ बिमल बिलोचन ही के । मिटहिँ दोष दुख भव-रजनी के ॥
सूझहिँ रामचरित-मनि-मानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥

दो०—जथा सुअञ्जन अञ्जि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिँ सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

गुरु-पद-रज मृदु मञ्जुल अञ्जन । नयन-अमिय दृग दोष बिभञ्जन ॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भव-मोचन ॥
बन्दउँ प्रथम महीसुर-चरना । मोह जनित संसय सब हरना ॥
सुजन-समाज सकल-गुन-खानी । करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥
साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुन-मय फल जासू ॥
जो सहि दुख पर-छिद्र दुरावा । बन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥
मुद-मङ्गल-मय सन्त-समाजू । जो जग जङ्गम तीरथराजू ॥
रामभगति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्म-बिचार-प्रचारा ॥
बिधि-निषेध-मय कलिमल-हरनी । करम कथा रबिनन्दिनि बरनी ॥
हरि-हर-कथा बिराजति बेनी । सुनत सकल-मुद-मङ्गल देनी ॥
बट बिस्वास अचल निज-धर्मा । तीरथराज-समाज सुकर्मा ॥

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग॥
लहहिं चारि-फल अछत-तनु, साधु-समाज प्रयाग॥२॥

मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करइ जनि कोई। सत-सङ्गति-महिमा नहिं गोई॥
बालमीकि नारद घट जोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़-चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सतसङ्ग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसङ्ग बिवेक न होई। राम-कृपा-बिनु सुलभ न सोई॥
सतसङ्गति मुद-मङ्गल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसङ्गति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसङ्गति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु-महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक-बनिक मनि-गन-गुन जैसे॥

दो०—बन्दउँ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अञ्जलि-गत सुभ-सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोउ॥
सन्त सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, राम-चरन-रति देहु॥ ३॥

बहुरि बन्दि खलगन सतिभाये। जे बिनु काज दाहिनेहुँ बाँये॥
पर-हित-हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष बिषाद बसेरे॥
हरि-हर-जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर-दोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मन माखी॥
तेज-कृसानु रोष महिषेसा। अघ-अवगुन-धन धनी धनेसा॥
उदय केतु सम हित सब ही के। कुम्भकरन सम सोवत नीके॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं॥
बन्दउँ खल जस सेष सरोषा। सहस-बदन बरनइ पर-दोषा॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस-दस-काना॥

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही । सन्तत सुरा-नीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा । सहस्र-नयन पर दोष निहारा ॥

दो०—उदासीन-अरि-मीत-हित, सुनत जरहिं खल रीति ।
जानि पानि जुग जोरि जन, विनती करइ सप्रीति ॥४॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पालिय अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ॥
बन्दउँ सन्त असज्जन चरना । दुख-प्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दारुन दुख देहीं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं । जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा-सुधाकर-सुरसरि-साधू । गरल-अनल कलिमल सरि-ब्याधू ॥
गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ॥५॥

खल-अघ-अगुन साधु-गुन-गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाये । गनि गुन दोष वेद बिलगाये ॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना । बिधि-प्रपञ्च गुन अवगुन साना ॥
दुख-सुख पाप-पुन्य दिन-राती । साधु-असाधु सुजाति-कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव-जगदीसा । लच्छि अलच्छि रङ्क अवनीसा ॥
कासी-मग सुरसरि-क्रमनासा । मरु-मालव महिदेव-गवासा ॥
सरग-नरक अनुराग-बिरागा । निगम-अगम गुन-दोष-बिभागा ॥

दो०—जड़-चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥६॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता । तब तजि दोष गुनहिं मन राता ॥
काल सुभाउ करम बरिआई । भलउ प्रकृति-बस-चुकइ भलाई ॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं । दलि दुख दोष बिमल जस देहीं ॥

खलउ करहिं भल पाइ सुसङ्गू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभङ्गू ॥
लखि सुबेष जग बञ्चक जेऊ । बेष प्रताप पूजियहि तेऊ ॥
उघरहिं अन्त न होइ निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ॥
किये कुबेष साधु सनमानू । जिमि जग जामवन्त हनुमानू ॥
हानि-कुसङ्ग सुसङ्गति-लाहू । लोकहु बेद बिदित सब काहू ॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसङ्गा । कीचहि मिलइ नीच जल सङ्गा ॥
साधु-असाधु-सदन सुक सारी । सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी ॥
धूम कुसङ्गति कारिख होई । लिखिय पुरान मञ्जु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल सङ्घाता । होइ जलद जग-जीवन-दाता ॥

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥
जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम-मय जानि ।
बन्दउँ सब के पद-कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गन्धर्ब ।
बन्दउँ किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब ॥७॥

आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल-थल-नभ-बासी ॥
सीय-राम-मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
जानि कृपाकर किङ्कर मोहू । सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू ॥
निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं । ता तें बिनय करउँ सब पाहीं ॥
करन चहउँ रघुपति गुन गाहा । लघु-मति-मोरि चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अङ्ग उपाऊ । मन-मति-रङ्क मनोरथ राऊ ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी । चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बाल बचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी । जे पर-दूषन भूषन-धारी ॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर-भनिति सुनत हरषाहीं । ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥

जग बहु नर सरि सर सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥
दो०—भाग छोट अभिलाष बड़, करउँ एक बिस्वास।
पइहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास॥८॥
खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहिं बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही॥
कबित रसिक न राम-पद-नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हासरस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥
प्रभु-पद-प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि-हर-पद-रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की॥
रामभगति-भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कबि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृत नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना॥
भाव-भेद रस-भेद अपारा। कबित दोष-गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥
दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिबेक॥९॥
एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान-स्रुति-सारा॥
मङ्गल-भवन अमङ्गल-हारी। उमासहित जेहि जपत पुरारी॥
भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधु-बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस सन्त गुन-ग्राही॥
जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम-प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसङ्ग बड़प्पन पावा॥
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगर प्रसङ्ग सुगन्ध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम-कथा जग-मङ्गल-करनी॥

हरिगीतिका छन्द।

मङ्गल-करनि कलिमल-हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

गति कूर कबिता-सरित की ज्यों सरित-पावन-पाथ की ॥
प्रभु सुजस सङ्गति भनिति भलि होइहि सुजन मन-भावनी ॥
भव-अङ्ग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥
दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम-जस-सङ्ग ।
दारु बिचार कि करइ कोउ, बन्दिय मलय प्रसङ्ग ॥
स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद-करहिँ सब पान ।
गिराग्रम्य सिय-राम-जस, गावहिँ सुनहिँ सुजान ॥१०॥
मनि-मानिक-मुकता-छबि जैसी । अहि-गिरि-गज-सिर सोह न तैसी ॥
नृप-किरीट तरुनी-तनु पाई । लहहिँ सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिँ अनत अनत छबि लहहीं ॥
भगति-हेतु बिधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ॥
रामचरितसर बिनु अन्हवाये । सो स्रम जाइ न कोटि उपाये ॥
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी । गावहिँ हरिजस कलिमल हारी ॥
कीन्हे प्राकृत-जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगति पछिताना ॥
हृदय सिन्धु मति-सीपि समाना । स्वाती-सारद कहहिं सुजाना ॥
जौं बरषइ बर-बारि बिचारू । होहिं कबित-मुकतामनि चारू ॥
दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहियहि, रामचरित बर ताग ।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥
जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस बेष मराला ।
चलत कुपन्थ बेद-मग छाँड़े । कपट-कलेवर कलिमल भाँड़े ॥
बञ्चक भगत कहाइ राम के । किङ्कर कञ्चन कोह-काम के ॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिग धरमध्वज धन्धक धोरी ॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ ॥
ता तें मैं अति अलप बखाने । थोरे महँ जानिहहिँ सयाने ॥
समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी । कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ॥
एतेहु पर करिहहिँ जे सङ्का । मोहि ते अधिक ते जड़ मति-रङ्का ॥
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ । मति अनुरूप राम-गुन गावउँ ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥

समुझत अमित राम प्रभुताई । करत कथा मन अति कदराई ॥
दो०—सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरन्तर गान ॥१२॥
सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥
तहाँ वेद अस कारन राखा । भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा ॥
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ॥
ब्यापक बिस्व-रूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥
सो केवल भगतन्ह हित लागी । परम कृपाल प्रनत-अनुरागी ॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू । जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू ॥
गई बहोर गरीब-नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
बुध बरनहिं हरि-जस अस जानी । करहिं पुनीत सुफल निज-बानी ॥
तेहि बल मैं रघुपति गुन-गाथा । कहिहउँ नाइ राम-पद माथा ॥
मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई । तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥
दो०—अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम-लघु, बिनु स्रम पारहि जाहिं ॥१३॥
एहि प्रकार बल मनहिं देखाई । करिहउँ रघुपति कथा सुहाई ॥
ब्यास-आदि कबि-पुङ्गव नाना । जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥
चरन-कमल बन्दउँ तिन्ह केरे । पुरवहु सकल मनोरथ मेरे ॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा । जिन्ह बरने रघुपति-गुन-ग्रामा ॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने । भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ॥
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे । प्रनवउँ सबहिं कपट छल त्यागे ॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू । साधु-समाज भनिति सनमानू ॥
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं । सो स्रम बादि बाल-कबि करहीं ॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥
राम-सुकीरति भनिति भदेसा । असमञ्जस अस हमहिं अँदेसा ॥
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे । सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥
दो०—सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥
सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मति-बल अति थोर ।

करउ कृपा हरि-जस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोर॥
कबि कोविद रघुबर-चरित, मानस मञ्जु मराल।
बाल-विनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल॥
सो०—बन्दउँ मुनि-पद-कञ्जु, रामायन जेहि निरमयेउ।
सखर सकोमल मञ्जु, दोष-रहित दूषन सहित॥
बन्दउँ चारिउ बेद, भव-बारिधि-बोहित-सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहुं खेद, बरनत रघुबर-बिसद-जस॥
बन्दउँ बिधि-पद-रेनु, भव-सागर जेहि कीन्ह जहँ।
सन्त-सुधा-ससि-धेनु, प्रगटे खल-बिष-बारुनी॥
दो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बन्दि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मञ्जु मनोरथ मोरि॥१४॥
पुनि बन्दउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर-चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥
गुरु पितु मातु महेस-भवानी। प्रनवउँ दीनबन्धु दिन-दानी॥
सेवक स्वामि सखा सिय-पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के॥
कलि बिलोकि जग-हित हर-गिरजा। साबर-मन्त्र जाल जिन्ह सिरजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥
सो महेस मोहि पर अनुकूला। करउँ कथा मुद-मंगल-मूला॥
सुमिरि सिवा-सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित-चाऊ॥
भनिति मोरि सिव-कृपा बिभाती। ससि-समाज मिलि मनहुं सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह-समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम-चरन-अनुरागी। कलिमल-रहित सुमङ्गल भागी॥
दो०—सपनेहुं सांचेहुं मोहि पर, जौं हर-गौरि-पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहउँ सब, भाषा-भनिति-प्रभाउ॥१५॥
बन्दउँ अवधपुरी अति पावनि। सरजू-सरि कलि-कलुष-नसावनि॥
प्रनवउँ पुर-नर-नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥
सिय-निन्दक अघ-ओघ नसाये। लोक बिसोक बनाइ बसाये॥
बन्दउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व-सुखद खल-कमल-तुसारू॥

दशरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत-सुमङ्गल मूरति मानी॥
करउँ प्रनाम करम-मन-बानी। करहु कृपा सुत-सेवक जानी॥
जिन्हहिं बिरचि बड़भयउ बिधाता। महिमा-अवधि राम-पितु-माता॥

सो०—बन्दउँ अवध-भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम-पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥१६॥

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम-पद गूढ़-सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥
प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम-चरन-पङ्कज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥
बन्दउँ लछिमन-पद-जलजाता। सीतल सुभग-भगत-सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड-समान भयउ जस जाका॥
सेष सहस्र-सीस जग-कारन। जो अवतरेउ भूमि-भय-टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर॥
रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत-अनुगामी॥
महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार, खल-बन-पावक ज्ञान-घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर-चाप-धर॥१७॥

कपिपति रीछ निसाचर-राजा। अङ्गदादि जे कीस समाजा॥
बन्दउँ सब के चरन सुहाये। अधम-शरीर राम जिन्ह पाये॥
रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बन्दउँ पद-सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥
सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिज्ञान-बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥
जनक-सुता जग-जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना-निधान की॥
ताके जुग-पद-कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥
पुनि मन-बचन-करम रघुनायक। चरन-कमल बन्दउँ सब लायक॥
राजिव-नयन धरे धनु-सायक। भगत-बिपति-भञ्जन सुखदायक॥

दो०—गिरा-अरथ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दउँ सीता-राम-पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥१८॥

बन्दउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु-भानु-हिमकर को॥
बिधि-हरि-हर-मय-बेद-प्रान सो। अगुन अनूपम गुन-निधान सो॥
महा-मन्त्र जोइ जपत महेसू। कासी-मुकुति-हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकबि नाम-प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस-नाम-सम सुनि सिव बानी। जपि जेँई पिय सङ्ग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाव जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥

दो०—बरषा-रितु रघुपति-भगति, तुलसी सालि-सु-दास।
राम नाम बर बरन-जुग, सावन भादवँ मास॥१९॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक-लाहु परलोक-निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम-लखन-सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म-जीव-इव सहज संघाती॥
नर-नारायन-सरिस सुभ्राता। जग-पालक बिसेष जन-त्राता॥
भगति-सुतिय कल करन-बिभूषन। जग-हित-हेतु बिमल बिधु-पूषन॥
स्वाद-तोष-सम सुगति-सुधा के। कमठ-सेष-सम धर बसुधा के॥
जन-मन-मञ्जु-कञ्ज मधु-कर से। जीह-जसोमति हरि-हलधर से॥

दो०—एक छत्र एक मुकुट-मनि, सब बरननि्ह पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥२०॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन-भेद समुझिहहिँ साधू॥
देखिअहि रूप नाम-आधीना। रूप-ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥
रूप-बिसेष नाम बिनु जाने। करतल-गत न परहिँ पहिचाने॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे॥
नाम-रूप-गुन अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

दो०—राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी-द्वार।

तुलसी भीतर बाहरहुँ, जौं चाहसि उँजियार ॥२१॥
नाम जीह जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरञ्चि-प्रपञ्च-बियोगी ॥
ब्रह्म-सुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
जाना चहहिँ गूढ़-गति जेऊ । नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लव लाये । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी । मिटहिं कुसङ्कट होहिं सुखारी ॥
राम-भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा । ज्ञानी प्रभुहि बिसेष पियारा ॥
चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेष नहि आन उपाऊ ॥
दो०—सकल-कामना-हीन जे, राम-भगति-रस लीन ।
नाम प्रेम-पीयूष-हृद, तिन्हहुं किये मन-मीन ॥२२॥
अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ तें । किय जेहि जुग निज-बस निज-बूते
प्रौढ़ सुजन जनि जानहिं जनकी । कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ॥
एक-दारु-गत देखिय-एकू । पावक-सम जुग-ब्रह्म-बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें । कहउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें ॥
ब्यापक एक ब्रह्म अबिनासी । सत-चेतन-घन आनंद रासी ॥
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम-निरूपन नाम-जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥
दो०—निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम-प्रभाउ अपार ।
कहउँ नाम बड़ राम तें; निज बिचार अनुसार ॥२३॥
राम भगत-हित नर-तनु-धारी । सहि सङ्कट किय साधु सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुद मंगल-बासा ॥
राम एक तापस-तिय तारी । नाम कोटि-खल-कुमति सुधारी ॥
रिषि-हित राम सुकेतु-सुता की । सहित-सेन-सुत कीन्ह बिबाकी ॥
सहित दोष-दुख दास-दुरासा । दलइ नाम जिमि रबि निसि नासा ॥
भञ्जेउ राम आपु भव चापू । भव-भय-भञ्जन नाम-प्रतापू ॥
दंडकबन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन-मन-अमित नाम किय पावन ॥
निसिचर-निकर दले रघुनन्दन । नाम सकल-कलि-कलुष निकन्दन ॥

दो०—सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन-गाथ ॥२४॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक निवाजे। लोक बेद बर बिरद बिराजे॥
राम भालु-कपि कटक बटोरा। सेतु-हेतु स्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव-सिन्धु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
राम सकुल-रन-रावन मारा। सीय सहित निज-पुर पग धारा॥
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर-मुनि बर-बानी॥
सेवक सुमिरत नाम सुप्रीती। बिनु स्रम प्रबल मोह दल जीती॥
फिरत सनेह मगन-सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

दो०—ब्रह्म-राम तें नाम बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित-सतकोटि महँ, लिय महेस जिय जानि ॥२५॥

नाम प्रसाद सम्भु अविनासी। साज-अमङ्गल मङ्गल-रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम-प्रसाद ब्रह्म-सुख-भोगी॥
नारद जानेउ नाम-प्रतापू। जग-प्रिय-हरि हरि-हर-प्रिय आपू॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत-सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि-नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि-पवन-सुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहउ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम-गुन गाई॥

दो०—नाम राम को कल्पतरु, कलि कल्यान-निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदास ॥२६॥

चहुँ जुग तीनि काल, तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव बिसोका॥
वेद-पुरान-सन्त मत एहू। सकल-सुकृत-फल राम-सनेहू॥
ध्यान प्रथम-जुग मख-बिधि दूजे। द्वापर परितोषन प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल-मूल-मलीना। पाप-पयोनिधि जन-मन-मीना॥
नाम-कामतरु काल - कराला। सुमिरत समन सकल जग-जाला॥
राम-नाम कलि अभिमत-दाता। हित-परलोक लोक-पितु-माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम-नाम-अवलम्बन एकू।

कालनेमि-कलि कपट-निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

दो०—राम-नाम नरकेसरी। कनककसिपु कलिकाल।
जापक-जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुर-साल॥२७॥

भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मङ्गल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि सो नाम राम-गुन-गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥
राम-सुस्वामि कुसेवक मो सो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥
लोकहु बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
गनी गरीब ग्राम-नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर॥
सुकबि कुकबि निज-मति-अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु-सुजान सुसील नृपाला। ईस-अंस-भव परम कृपाला॥
सुनि सनमानहि सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान-सिरोमनि कोशल राऊ॥
रीझत राम सनेह निसोते। को जग मन्द मलिन-मन मोते॥

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु॥
हौंहु कहावत सब कहत; राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥२८॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने॥
सुनि अवलोकि सुचित-चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हिय नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥
रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय-बार हिये की॥
जेहि अघबधेउ ब्याध इव बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राज-सभा रघुबीर बखाने॥

दो०—प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहीं न राम से, साहिब सील-निधान॥
राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।

जौं यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥
एहि बिधि निज गुन दोष कहि, सबहि बहुरि सिर नाइ ।
बरनउँ रघुबर-बिसद-जस, सुनि कलि-कलुष नसाइ ॥२९॥

जागबलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई ॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी । सुनहु सकल सज्जन सुख मानी ॥
सम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा । राम भगति अधिकारी चीन्हा ॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते स्रोता बकता सम-सीला । समदरसी जानहिं हरिलीला ॥
जानहिं तीनि काल निज-ज्ञाना । करतल गत आमलक समाना ॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना । कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना ॥

दो०—मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥
स्रोता बकता ज्ञान-निधि, कथा राम कै गूढ़ ।
किमि समझउँ मैं जीव जड़, कलिमल-ग्रसित बिमूढ़ ॥३०॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषाबद्ध करब मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥
जस कछु बुधि-बिबेक बल मेरे । तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे ॥
निज सन्देह-मोह-भ्रम-हरनी । करउँ कथा भव-सरिता-तरनी ॥
बुध-बिस्राम सकल-जन रञ्जनि । राम-कथा कलि-कलुष बिभञ्जनि ॥
रामकथा-कलि-पन्नग-भरनी । पुनि बिबेक-पावक कहँ अरनी ॥
रामकथा कलि कामद—गाई । सुजन सजीवनि-मूरि सुहाई ॥
सोइ बसुधातल सुधा-तरङ्गिनि । भय-भञ्जनि भ्रम भेक-भुअङ्गिनि ॥
असुर-सेन-सम-नरक निकन्दिनि । साधु-बिबुध-कुल हित गिरि-नन्दिनि ॥
सन्त-समाज-पयोधि रमा सी । बिस्व-भार-भर अचल छमा सी ॥
जमगन-मुँह-मसि जग जमुना सी । जीवन-मुकुति-हेतु जनु कासी ॥
रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसिदास-हित हिय हुलसी सी ॥
सिव-प्रिय मेकल-सैल सुता सी । सकल सिद्धि-सुख-सम्पति रासी ॥
सदगुन-सुर-गन-अम्ब अदिति सी । रघुबर-भगतिप्रेम-परिमिति सी ॥

दो०—राम कथा-मन्दाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग-सनेह-वन, सिय-रघुबीर-बिहारु॥३१॥

राम-चरित-चिन्तामनि चारू। सन्त-सुमति-तिय सुभग सिंगारू॥
जग-मङ्गल गुन-ग्राम-राम के। दानि मुकुति-धन-धरम-धाम के॥
सद्गुरु ज्ञान-बिराग-जोग के। बिबुध-बैद भव-भीम-रोग के॥
जननि-जनक सिय-राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत-धरम-नेम के॥
समन पाप-सन्ताप-सोक के। प्रिय-पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति-बिचार के। कुम्भज लोभ-उदधि अपार के॥
काम-कोह-कलिमल करि-गन के। केहरि-सावक जन-मन-बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद-घन दारिद-दवारि के॥
मन्त्र-महा-मनि बिषय-ब्याल के। मेटत कठिन कुअङ्क भाल के॥
हरन मोह-तम दिनकर-कर से। सेवक-सालि-पाल जलधर से॥
अभिमत-दानि देव-तरु-बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकबि-सरद-नभ मन उडुगन से। राम-भगत-जन जीवन-धन से॥
सकल सुकृत-फल भूरि भोग से। जग-हित-निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक-मन-मानस मराल से। पावन गङ्ग-तरंग-माल से॥

दो०—कुपथ कुतर्क कुचाल कलि, कपट दम्भ पाखंड।
दहन राम-गुन-ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड॥
रामचरित राकेस-कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन-कुमुद-चकोरचित, हित बिशेष बड़ लाहु॥३२॥

कीन्ह प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि सङ्कर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा-प्रबन्ध बिचित्र बनाई॥
जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करइ सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरज करहिं अस जानी॥
राम-कथा कै मिति जग नाहीं। अस प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम-अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा॥
कलप-भेद हरिचरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये॥
करिय न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी॥

दो०—राम अनन्त अनन्त-गुन, अमित कथा बिस्तार।

सुनि आचरज न मानिहहिँ; जिन्ह के बिमल बिचार ॥३३॥
यहि बिधि सब संसय करि दूरी । सिर धरि गुरु-पद-पङ्कज-धूरी ॥
पुनि सबही प्रनवउँ कर जोरी । करत कथा जेहि लाग न खोरी ॥
सादर सिवहि नाइ अब माथा । बरनउँ बिसद राम-गुन गाथा ॥
सम्बत सोरह सै इकतीसा । करउँ कथा हरि-पद धरि सीसा ॥
नौमी भौमबार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम-जनम स्नुति गावहिँ । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि ॥
असुर नाग खग नर मुनि देवा । आइ करहिँ रघुनायक सेवा ॥
जन्म-महोत्सव रचहिँ सुजाना । करहिँ राम कल कीरति गाना ॥
दो०—मज्जहिँ मज्जन-बृन्द बहु, पावन सरजू-नीर ।

जपहिँ राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम-सरीर ॥३४॥
दरस परस मज्जन अरु पाना । हरइ पाप कह वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति । कहि न सकइ सारदा बिमल-मति ॥
राम-धाम-दा पुरी सुहावनि । लोक समस्त बिदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तन नहिँ संसारा ॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्ध-प्रद मङ्गल खानी ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरम्भा । सुनत नसाहिँ काम-मद-दम्भा ॥
रामचरितमानस एहि नामा । सुनत स्नवन पाइय बिस्नामा ॥
मन-करि विषय-अनल-बन जरई । होइ सुखी जौँ एहि सर परई ॥
रामचरित मानस मुनि-भावन । बिरचेउ सम्भु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध-दोष दुख-दारिद-दावन । कलि-कुचालिकुलि-कलुष नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ॥
ताते रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥
दो०—अस मानस जेहि बिधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु ।

अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा-ब्रृषकेतु ॥३५॥
सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी । रामचरितमानस कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥
सुमति-भूमि थल-हृदय-अगाधू । बेद-पुरान-उदधि घन साधू ।

बरषहिँ राम-सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मङ्गल-कारी॥
लीला सगुन जो कहहिँ बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल-हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत-सालि हित होई। राम भगत-जन जीवन सोई॥
मेधा-महि-गत सो जल पावन। सकिलि स्रवन-मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

दो०—सुठि सुन्दर सम्बाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥ ३६॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान-नयन निरखत मन माना॥
रघुपति-महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥
राम-सीय-जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि-बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मञ्जु मनि सीप सुहाई॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहु रङ्ग कमल-कुल सोहा॥
अरथ-अनूप सुभाव-सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा॥
सुकृत-पुञ्ज मञ्जुल-अलि-माला। ज्ञान-बिराग-बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान बिज्ञान बिचारी॥
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल-बिहँग समाना।
सन्त-सभा चहुँ-दिसि अँवराई। स्रद्धा रितु-बसन्त सम गाई॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा-दया दम-लता बिताना॥
सम-जम-नियम-फूल फल ज्ञाना। हरि-पद-रति-रस बेद बखाना॥
औरउ कथा अनेक प्रसङ्गा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहङ्गा॥

दो०—पुलक बाटिका-बाग-बन, सुख सुबिहङ्ग बिहारु।
माली-सुमन सनेह-जल, सींचत लोचन चारु॥ ३७॥

जे गावहिँ यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिँ सादर नर नारी। तेइ सुर बर मानस अधिकारी॥
अति-खल जे बिषयी बक कागा। एहि सर निकट न जाहिँ अभागा॥
सम्बुक-भेक-सिवार समाना। इहाँ न बिषय कथा-रस नाना॥

तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम-कृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसङ्ग कुपन्थ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह-कारज नाना जञ्जाला। तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु विषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयङ्कर नाना॥
दो०—जे स्रद्धा सम्बल रहित, नहिँ सन्तन्ह कर साथ।
तिन्ह कहँ मानस अगम अति, जिन्हहिँ न प्रिय रघुनाथ॥३८॥
जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निन्दा करि ताहि बुझावा॥
सकल बिघ्न ब्यापहिँ नहिँ तेही। राम सुकृपा बिलोकहिँ जेही॥
सोइ सादर मज्जन सर करई। महाघोर त्रय-ताप न जरई॥
ते नर यह सर तजहिँ न काऊ। जिन्ह कहँ राम-चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसङ्ग करउ मन लाई॥
अस-मानस मानस-चष-चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम-प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरिता सी। राम बिमल जस जल भरिता सी॥
सरजू नाम सुमङ्गल मूला। लोक-बेद-मत मञ्जुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस-नन्दिनि। कलिमल-त्रिन-तरु-मूल निकन्दिनि॥
दो०—स्रोता त्रिबिध-समाजपुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सन्त-सभा अनुपम अवध, सकल सुमङ्गल मूल॥३९॥
रामभगति-सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर-जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देव-धुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम-सरूप-सिन्धु समुहानी॥
मानस-मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन-मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥
उमा-महेस-बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥

रघुबर-जनम अनन्द-बधाई। भँवर तरङ्ग मनोहरताई॥

दो०—बालचरित चहुँ बन्धु के, बनज बिपुल बहु रङ्ग।
नृप-रानी-परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहङ्ग॥४०॥

सीय-स्वयम्बर-कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिवेका॥
सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक-समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबन्ध राम बर बानी॥
सानुज राम-बिबाह-उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिँ पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥
राम-तिलक हित मङ्गल साजा। परब-जोग जन जुरेउ समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

दो०—समन अमित उतपात सब, भरत-चरित जप-जाग।
कलि-अघ खल-अवगुन कथन, ते जल मल बक काग॥४१॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावन भूरी॥
हिम हिमसैल-सुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू॥
बरनब राम-बिबाह-समाजू। सो मुद-मङ्गल-मय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम-बन-गवनू। पन्थ-कथा खर-आतप-पवनू॥
बरषा घोर निसाचर रारी। सुर-कुल-सालि सुमङ्गल-कारी॥
राम-राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥
सती-सिरोमनि सिय-गुन-गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहुँ बन्धु की, जलमाधुरी सुबास॥४२॥

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न खोरी॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमल-हारी॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि-कलुष-गलानी॥
भव-स्रम-सोषक तोषक-तोषा। समन दुरित-दुख-दारिद-दोषा॥
काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किये ते। मिटहिँ पाप परिताप हिये ते॥

जिन्ह एहि बारि न मानस धोये। ते कायर कलिकाल बिगोये॥
तृषित निरखि रबि-कर-भव-बारी। फिरिहहिँ मृग जिमि जीव दुखारी॥

दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन-गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी-सङ्करहि, कह कबि कथा सुहाइ॥
अब रघुपति-पद-पङ्करुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिवर्ज कर, मिलन सुभग सम्बाद॥४३॥

भरद्वाज मुनि बसहिँ प्रयागा। तिन्हहिँ राम-पद अति अनुरागा॥
तापस सम-दम-दया निधाना। परमारथ-पथ परम सुजाना॥
माघ मकर-गत-रबि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई॥
देव-दनुज-किन्नर-नर-स्रेनी। सादर मज्जहिँ सकल त्रिबेनी॥
पूजहिँ माधव-पद-जलजाता। परसि अखयबट हरषहिँ गाता॥
भरद्वाज-आस्रम अति पावन। परम-रम्य मुनिबर मन भावन॥
तहाँ होइ मुनि-रिषय-समाजा। जाहिँ जे मज्जन तीरथराजा॥
मज्जहिँ प्रात समेत उछाहा। कहहिँ परसपर हरि-गुन-गाहा॥

दो०—ब्रह्म-निरूपन धर्म-बिधि, बरनहिँ तत्व-बिभाग।
कहहिँ भगति भगवन्त कै, सञ्जुत-ज्ञान-बिराग॥४४॥

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आस्रम जाहीं॥
प्रति सम्बत अति होइ अनन्दा। मकर मज्जि गवनहिँ मुनिबृन्दा॥
एक बार भरि मकर नहाये। सब मुनीस आस्रमन्ह सिधाये॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥
सादर चरन-सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि-सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु-बानी॥
नाथ एक संसय बड़ मोरे। करगत बेद-तत्व सब तोरे॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौ न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

दो०—सन्त कहहिँ अस नीति प्रभु, स्रुति-पुरान-मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुरु सन किये दुराव॥४५॥

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥
राम-नाम कर अमित प्रभावा। सन्त-पुरान-उपनिषद गावा॥
सन्तत जपत सम्भु अबिनासी। सिव भगवान ज्ञान-गुन-रासी॥

आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परम-पद लहहीं॥
सोपि राम-महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया॥
राम कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस—कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा॥

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बज्ञ तुम्ह, कहहु बिबेक बिचारि॥४६॥

जैसे मिटइ मोह भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी।
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहिं बिदित रघुपति प्रभुताई॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनइ राम-गुन-गूढ़ा। कीन्हेहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥
तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
महामोह महिषेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥
रामकथा ससि-किरन समाना। सन्त चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अब, उमा-सम्भु सम्बाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥४७॥

एक बार त्रेताजुग माहीं। सम्भु गये कुम्भज रिषि पाहीं॥
सङ्ग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही सम्भु अधिकारी पाई॥
कहत सुनत रघुपति-गुन-गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥
तेहि अवसर भञ्जन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राज उदासी। दंडकबन बिचरत अबिनासी॥

दो०—हृदय बिचारत जात हरि, केहि बिधि दरसन होइ।
गुपुत-रूप अवतरेउ प्रभु, गये जान सब कोइ॥

सो०—सङ्कर उर-अतिछोभ, सती न जानइ मरम सोइ।
तुलसी दरसन लोभ, मन डर लोचन लालची॥४८॥

रावन मरन मनुज कर जाँचा । प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा ॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा । करत बिचार न बनत बनावा ॥
एहि बिधि भये सोचबस ईसा । तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि सङ्गा । भयउ तुरत सो कपट-कुरङ्गा ॥
करि छल मूढ़ हरी बैदेही । प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥
मृग बधि बन्धु सहित प्रभु आये । आस्रम देखि नयन जल छाये ॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई । खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग बियोग न जा के । देखा प्रगट दुसह दुख ता के ॥

दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान ।
जे मतिमन्द बिमोह बस, हृदय धरहिं कछु आन ॥४९॥

सम्भु समय तेहि रामहिं देखा । उपजा हिय अति हरष बिसेखा ॥
भरि लोचन छबि सिन्धु निहारी । कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी ॥
जय सच्चिदानन्द जग-पावन । अस कहि चलेउ मनोज-नसावन ॥
चले जात सिव सती-समेता । पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सती सो दसा सम्भु कै देखी । उर उपजा सन्देह बिसेखी ॥
सङ्कर जगतबन्द्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावहिं सीसा ॥
तिन्ह नृप-सुतहि कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥
भये मगन छबि तासु बिलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दो०—ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ॥५०॥

बिष्नु जो सुर-हित नर-तनु-धारी । सोउ सरबज्ञ जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी । ज्ञान-धाम श्रीपति असुरारी ॥
सम्भु गिरा पुनि मृषा न होई । सिव सरबज्ञ जान सब कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा । होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी । हर अन्तरजामी सब जानी ॥
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ । संसय अस न धरिय उर काऊ ॥
जासु कथा कुम्भज रिषि गाई । भगति जासु मैं मुनिहिं सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा । सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥

छं०—मुनिधीर जोगी सिद्ध सन्तत, बिमल मन जेहि ध्यावहीं ।

कहि नेति निगम पुरान आगम, जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम ब्यापक ब्रह्म भुवन-निकाय-पति मायाधनी ।
अवतरेउ अपने भगत-हित निजतन्त्र नित रघुकुल मनी ॥

सो०—लाग न उर उपदेस, जदपि कहेउ सिव बार बहु ।
बोले बिहँसि महेस, हरि-माया-बल जानि जिय ॥५१॥

जौं तुम्हरे मन अति सन्देहू । तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बट छाहीं । जब लगि तुम्ह अइहहु मोहि पाहीं ॥
जैसे जाइ मोह-भ्रम-भारी । करेहु सो जतन बिबेक बिचारी ॥
चली सती सिव आयसु पाई । करइ बिचार करउँ का भाई ॥
इहाँ सम्भु अस मन अनुमाना । दच्छ-सुता कहँ नहिँ कल्याना ॥
मोरेहु कहे न संसय जाहीं । बिधि बिपरीत भलाई नाहीं ॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तरक बढ़ावइ साखा ॥
अस कहि जपन लगे हरि नामा । गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥

दो०—पुनि पुनि हृदय बिचार करि, धरि सीता कर रूप ।
आगे होइ चलि पन्थ तेहि, जेहि आवत नर-भूप ॥५२॥

लछिमन दीख उमा-कृतबेषा । चकित भये भ्रम हृदय बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गम्भीरा । प्रभु प्रभाव जानत मतिधीरा ॥
सती कपट जानेउ सुर-स्वामी । सबदरसी सब-अन्तरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना । सोइ सरबज्ञ राम भगवाना ॥
सती कीन्ह चह तहउँ दुराऊ । देखहु नारि-सुभाउ-प्रभाऊ ॥
निज-माया-बल हृदय बखानी । बोले बिहँसि राम मृदु-बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

दो०—राम-बचन-मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति सङ्कोच ।
सती सभीत महेस पहिँ, चली हृदय बड़ सोच ॥५३॥

मैं सङ्कर कर कहा न माना । निज अज्ञान राम पर आना ॥
जाइ उतर अब देहउँ काहा । उर उपजा अति दारुन-दाहा ॥
जाना राम सती दुख पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित श्री भ्राता ॥

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुन्दर भेखा॥
जहँ चितवहिँ तहँ प्रभु आसीना। सेवहिँ सिद्ध मुनीस प्रवीना॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तेँ एका॥
बन्दत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥
दो०—सती बिधात्री इन्दिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि बेष अजादि सुर, तेहि तेहि तनु अनुरूप॥५४॥
देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जे संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिँ प्रभुहि देव बहु बेखा। राम-रूप दूसर नहिँ देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
हृदय कम्प तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठी मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम-पद सीसा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥
दो०—गईं समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात॥५५॥
सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय-बस प्रभु सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाँई। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाँई॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई॥
तब सङ्कर देखेहु धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥
बहुरि राम-मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा॥
हरि-इच्छा भावी बलवाना। हृदय बिचारत सम्भु सुजाना॥
सती कीन्ह सीता कर बेषा। सिव-उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति-पथ होइ अनीती॥
दो०—परम-प्रेम तजि जाइ नहिँ, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेस कछु, हृदय अधिक सन्ताप॥५६॥
तब सङ्कर प्रभु-पद सिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा॥
एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव सङ्कल्प कीन्ह मन माहीं॥
अस बिचारि सङ्कर मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥

चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दिढ़ाई॥
अस पद तुम्ह बिन करइ को आना। राम-भगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभ-गिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि . समेत सकोचा॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्य-धाम प्रभु दीनदयाला॥
जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर-आराती॥
दो०—सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउँ सरबज्ञ।
कीन्ह कपट मैं सम्भु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ॥
सो०—जल पय सरिस बिकाइ। देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होत रस जाइ, कपट खटाई परतहीं॥५७॥
हृदय सोच समुझत निज करनी। चिन्ता अमित जाइ नहिं बरनी॥
कृपासिन्धु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥
सङ्कर-रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई॥
सतिहि ससोच जानि वृषकेतू। कही कथा सुन्दर सुख-हेतू॥
बरनत पन्थ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥
तहँ पुनि सम्भु समुझि पन आपन। बइठे बट तर करि कमलासन॥
सङ्कर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥
दो०—सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोच मन माहिँ।
मरम न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिँ॥५८॥
नित नव सोच सती उर भारा। कब जइहउँ दुख-सागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पति-बचन मृषा करि जाना॥
सो फल मोहि बिधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिय नहिँ तोही। सङ्कर-बिमुख जिआवसि मोही॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महँ रामहिँ सुमिरि सयानी॥
जौं प्रभु दीन दयाल कहावा। आरति हरण बेद जस गावा॥
तौ मैं बिनय करौं कर जोरी। छूटइ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरे सिव-चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रत एहू॥
दो०—तौ सबदरसी सुनिय प्रभु, करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरन जेहि बिनहि स्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ॥५९॥

एहि बिधि दुखित प्रजेस कुमारी । अकथनीय दारुन दुख भारी ॥
बीते सम्बत सहस-सतासी । तजी समाधि सम्भु अबिनासी ॥
राम-नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगतपति जागे ॥
जाइ सम्भु-पद बन्दन कीन्हा । सन्मुख सङ्कर आसन दीन्हा ॥
लगे कहन हरिकथा रसाला । दच्छ प्रजेस भये तेहि काला ॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक । दच्छहि कीन्ह प्रजापति-नायक ॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा । अति अभिमान हृदय तब आवा ॥
नहिँ कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥

दो०—दच्छ लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग ।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख-भाग ॥६०॥

किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्बा । बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा ॥
बिष्नु बिरञ्चि महेस बिहाई । चले सकल सुर जान बनाई ॥
सती बिलोके ब्योम बिमाना । जात चले सुन्दर बिधि नाना ॥
सुर-सुन्दरी करहिँ कल गाना । सुनत स्रवन छूटहिँ मुनि ध्याना ॥
पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी । पिता जग्य सुनि कछु हरषानी ॥
जौं महेस मोहि आयसु देहीं । कछु दिन जाइ रहउँ मिस एहीं ॥
पति-परित्याग हृदय दुख भारी । कहइ न निज अपराध बिचारी ॥
बोली सती मनोहर बानी । भय सङ्कोच प्रेम रस सानी ॥

दो०—पिता-भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥६१॥

कहेउ नीक मोरे मन भावा । यह अनुचित नहिँ नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज-सुता बोलाई । हमरे बयर तुम्हहुँ बिसराई ॥
ब्रह्म-सभा हम सन दुख माना । तेहि तें अजहुँ करहिँ अपमाना ॥
जौं बिनु बोले जाहु भवानी । रहइ न सील सनेह न कानी ॥
जदपि मित्र-प्रभु पितु-गुरु गेहा । जाइय बिनु बोले न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गये कल्यान न होई ॥
भाँति अनेक सम्भु समुझावा । भावी बस न ज्ञान उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिँ बोलाये । नहिँ भलि बात हमारे भाये ॥

दो०—कहि देखा हर जतन बहु, रहइ न दच्छकुमारि ।

दिये मुख्य गन सङ्ग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥६२॥

पिता-भवन जब गईं भवानी । दच्छ-त्रास काहु न सनमानी ॥
आदर भलेहि मिलीं एक माता । भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख सम्भु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो सङ्कर कहेऊ । प्रभु-अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा । जस यह भयउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अपमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥

दो०—सिव अपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हठि हटकि तब, बोली बचन सक्रोध ॥६३॥

सुनहु सभासद सकल मुनिन्दा । कही सुनी जिन्ह सङ्कर निन्दा ॥
सो फल तुरत लहब सब काहू । भली भाँति पछिताब पिताहू ॥
सन्त-सम्भु-श्रीपति अपबादा । सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई । स्रवन मूँदि न त चलिय पराई ॥
जगदातमा महेस पुरारी । जगत-जनक सब के हितकारी ॥
पिता-मन्दमति निन्दत तेही । दच्छ-सुक्र-सम्भव यह देही ॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू ॥
अस कहि जोग-अगिनि तन जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

दो०—सती मरन सुनि सम्भु गन, लगे करन मख खीस ।
जग्य-बिधन्स बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

समाचार सब सङ्कर पाये । बीरभद्र करि कोप पठाये ॥
जग्य-बिधन्स आइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह बिधिवत फल दीन्हा ॥
भइ जग-बिदित दच्छ-गति सोई । जसि कछु सम्भु-बिमुख कै होई ॥
यह इतिहास सकल जग जाना । तातें मैं संछेप बखाना ॥
सती मरत हरि सन बर माँगा । जनम जनम सिव-पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिमगिरि-गृह जाई । जनमी पारबती तनु पाई ॥
जब तें उमा सैल-गृह आई । सकल-सिद्धि-सम्पति तहँ छाई ॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआस्रम कीन्हे । उचित बास हिम-भूधर दीन्हे ॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटी सुन्दर सैल पर, मनि-आकर बहु भाँति ॥६५॥

सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज-बयर सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिँ अनुरागा॥
सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये॥
नित नूतन मङ्गल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिँ जस जासू॥
नारद समाचार सब पाये। कौतुकहीं गिरि-गेह सिधाये॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा॥
नारि सहित मुनि-पद सिर नावा। चरन सलिल सब भवन सिँचावा॥
निज सौभाग्य बहुत विधि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

दो०—त्रिकालग्य सर्वज्ञ तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनि वर हृदय विचारि ॥६६॥

कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल-गुन खानी॥
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अम्बिका भवानी॥
सब लच्छन-सम्पन्न कुमारी। होइहि सन्तत पियहिँ पियारी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि ते जस पइहहिँ पितु-माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढ़िहहिँ पतिव्रतअसिधारा॥
सैल सुलच्छनि सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ-चारी॥
अगुन अमान मातु-पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥

दोहा—जोगी जटिल अकाम-मन, नगन अमङ्गल-बेख।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥६७॥

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख-दम्पतिहि उमा-हरखानी॥
नारदहू यह भेद न जाना। दशा एक समुझब बिलगाना॥
सकल सखी गिरजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाखा। उमा सो बचन हृदय धरि राखा॥
उपजेउ सिव-पद-कमल सनेहू। मिलन कठिन भा मन सन्देहू॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखी-उछङ्ग बैठि पुनि जाई॥
झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिँ दम्पति सखी सयानी॥

उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ॥

दो०—कह मुनीस हिमवन्त सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥६८॥

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करइ जौं दैव सहाई॥
जस बर मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहिँ तस संसय नाहीं॥
जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिँ मैं अनुमाने॥
जौं विवाह सङ्कर सन होई। दोषउ गुन सम कह सब कोई॥
जौं अहि-सेज सयन हरि-करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोष न धरहीं॥
भानु-कृसानु सर्ब-रस खाहीं। तिन्हँ कहँ मन्द कहत कोउ नाहीं॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहँ नहिँ दोष गोसाँईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

दो०—जौं ऐसहि हिसिषा करहिँ, नर विवेक अभिमान।
परहिँ कलप भरि नरक महँ, जीव कि ईस समान॥६९॥

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न सन्त करहिँ तेहि पाना॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसे। ईस अनीसहिं अन्तर तैसे॥
सम्भु सहज समरथ भगवाना। एहि विवाह सब विधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिँ महेसू। आसुतोष पुनि किये कलेसू॥
जौं तप करइ कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिँ त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥
बर-दायक प्रनतारति-भञ्जन। कृपा सिन्धु सेवक-मन-रञ्जन॥
इच्छित-फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटिजोग जप साधे॥

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहिं दीन्हि असीस।
होइहि अब कल्यान सब, संसय तजहु गिरीस॥७०॥

अस कहि ब्रह्म-भवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकान्त पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि-बैना॥
जौं घर बर कुल होइ अनूपा। करिय विवाह सुता-अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुँआरी। कन्त उमा मम प्रान-पियारी॥
जौं न मिलिहि बर गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सब लोगू॥
सोइ बिचारि पति करहु बिबाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटइ ससि माहीं। नारद वचन अन्यथा नाहीं॥
दो०—प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्रीभगवान।
पारवती निरमयउ जेहि, सोइ करिहिं कल्यान॥७१॥
अब जौं तुम्हहिँ सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावन देहू॥
करइ सो तप जेहिँ मिलहिँ महेसू। आन उपाय न मिटिहि कलेसू॥
नारद वचन सगर्भ सहेतू। सुन्दर सब-गुन-निधि वृषकेतू॥
अस विचारि तुम्ह तजहु असङ्का। सबहि भाँति सङ्कर अकलङ्का॥
सुनि पति-वचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहिँ बिलोकि नयन भरि बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥
बारहि बार लेति उर लाई। गद्गद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत-मातु सर्वज्ञ भवानी। मातु-सुखद बोलीं मृदुबानी॥
दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि।
सुन्दर गौर सुबिप्र-बर, अस उपदेसेउ मोहि॥७२॥
करहि जाइ तप सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य विचारी॥
मातु-पितहि पुनि यह मत भावा। तप-सुख-प्रद दुख दोष नसावा॥
तप-बल रचइ प्रपञ्च विधाता। तप-बल विष्नु सकल-जग-त्राता॥
तप बल सम्भु करहिँ संहारा। तप-बल सेष धरहिँ महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तप अस जिय जानी॥
सुनत वचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥
मातु-पितहि बहु बिधि समुझाई। चली उमा तप-हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भये बिकल मुख आव न बाता॥
दो०—बेदसिरा-मुनि आइ तब, सबहिँ कहा समुझाइ।
पारवती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ॥७३॥
उर धरि उमा प्रान-पति चरना। जाइ बिपिन लागी तप करना॥
अति सुकुमारि न तनु तप जोगू। पति-पद सुमिरि तजे सब भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मन लागा॥
सम्बत सहस मूल फल खाये। साग खाइ सत बरष गँवाये॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥

बेल पाति महि परइ सुखाई। तीनि सहस्र सम्बत सो खाई॥
पुनि परिहरे सुखाने परना। उमहिँ नाम तब भयउ अपरना॥
देखि उमहिँ तप-खीन-सरीरा। ब्रह्म-गिरा भइ गगन गँभीरा॥
दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज-कुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिँ त्रिपुरारि॥७४॥
अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म-बर-बानी। सत्य सदा सन्तत सुचि जानी॥
आवहिँ पिता बुलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जायहु तबहीं॥
मिलहिँ तुम्हहि जब सप्त-रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलकगात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुन्दर मैं गावा। सुनहु सम्भु कर चरित सुहावा॥
जब तें सती जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव-मन भयउ बिरागा॥
जपहिँ सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिँ राम-गुन-ग्रामा॥
दो०—चिदानन्द सुख-धाम सिव, बिगत मोह-मद-काम।
बिचरहिँ महि धरि हृदय हरि, सकल-लोक-अभिराम॥७५॥
कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिँ ज्ञाना। कतहुँ राम गुन करहिँ बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत-बिरह-दुख दुखित सुजाना॥
यहि बिधि गयेउ काल बहु बीती। नित नइ होइ राम-पद-प्रीती॥
नेम प्रेम सङ्कर कर देखा। अबिचल हृदय भगति कै रेखा॥
प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला। रूप-सील-निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार सङ्करहि सराहा। तुम्ह बिन अस ब्रत को निरबाहा॥
बहु बिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जनम सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥
दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मोपर निज-नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि, यह मोहि माँगे देहु॥७६॥
कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥
मातु-पिता गुरु-प्रभु के बानी। बिनहिँ बिचार करिय सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी॥

प्रभु तोषेउ सुनि सङ्कर बचना। भगति-विवेक-धर्मजुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेउ जो हम कहेऊ॥
अन्तरधान भये अस भाखी। सङ्कर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिँ सप्तरिषि सिव पहिँ आये। बोले प्रभु अति बचन सुहाये॥
दो०—पारबती पहिँ जाइ तुम्ह, प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठयउ भवन, दूरि करेहु सन्देहु ॥७७॥
रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिवन्त तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तप भारी॥
केहि अपराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरम सब कहहू॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी॥
कहत मरम मन अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई॥
मन हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिँ उड़ाना॥
देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिय सदा सिवहि भरतारा॥
दो०—सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरि-सम्भव तव देह।
नारद कर उपदेस सुनि, कहहु बसेउ को गेह ॥७८॥
दच्छ-सुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घर उन्ह घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला
नारद सिख जे सुनहिँ नरनारी। अवसि होहिँ तजि भवन भिखारी॥
मन-कपटी तन-सज्जन-चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥
तेहि के बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली॥
कहहु कवन सुख अस बर पाये। भल भूलिहु ठग के बौराये॥
पञ्च कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही॥
दो०—अब सुख सोवत सोच नहिँ, भीख माँगि भव खाहिँ।
सहज-एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिँ ॥७९॥
अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहँ बर नीक बिचारा॥
अति-सुन्दर सुचि सुखद सुसीला। गावहिँ बेद जासु जस लीला॥
दूषन-रहित सकल-गुन-रासी। श्रीपति पुर-बैकुंठ-निवासी॥

अस पर तुम्हहिँ मिलाउब आनी। सुनत बिहँसि कह बचन भवानी॥
सत्य कहेहु गिरि-भव तनु एहा। हठ न छूट छूटइ बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान ते होई। जारेहु सहज न परिहर सोई॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन उजरउ नहिँ डरऊँ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥
दो०—महादेव अवगुन भवन, बिष्नु सकल-गुन-धाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥८०॥
तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जनम सम्भु हित हारा। को गुन दूषन करइ बिचारा॥
जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किये बरेषो॥
तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीं। बर-कन्या अनेक जग माहीं॥
जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरउँ सम्भु न त रहउँ कुँआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिँ सत बार महेसू॥
मैं पाँ परउँ कहइ जगदम्बा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलम्बा॥
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी। जय जय जगदम्बिके भवानी॥
दो०—तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषित गातु॥८१॥
जाइ मुनिन्ह हिमवन्त पठाये। करि बिनती गिरिजहि गृह ल्याये॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिँ जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई॥
भये मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥
मन थिर करि तब सम्भु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥
तारक-असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहिँ सब-लोक लोकपति जीते। भये देव सुख-सम्पति रीते॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरञ्चि पहिँ जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥
दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि, दनुज निधन तब होइ।
सम्भु-सुक्र-सम्भूत-सुत, एहि जीतइ रन सोइ॥८२॥
मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईश्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ-मख देहा। जनमी जाय हिमाचल गेहा॥

तेहि तप कीन्ह सम्भु पति लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
जदपि अहइ असमञ्जस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥
पठवहु काम जाइ सिव पाहीँ। करइ छोभ सङ्कर मन माहीँ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिवाह बरिआई॥
एहि बिधि भलेहि देव हित होई। मत अति नीक कहइ सब कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति-हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झख केतू॥
दो०--सुरन्ह कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
सम्भु बिरोध न कुसल मोहि, बिहँसि कहेउ अस मार॥८३॥
तदपि करब मैं काज तुम्हारा। स्रुति कह परम-धरम-उपकारा॥
परहित लागि तजइ जो देही। सन्तत सन्त प्रसंसहिँ तेही॥
अस कहि चलेउ सबहि सिर नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय बिचारा। सिव-बिरोध ध्रुव मरन हमारा॥
तब आपन प्रभाव बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिँ बारिचर-केतू। छन महँ मिटे सकल स्रुति-सेतू॥
ब्रह्मचर्ज ब्रत सञ्जम नाना। धीरज धरम ज्ञान बिज्ञाना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटक सब भागा॥
छन्द—भागेउ बिबेक सहाय सहित, सो सुभट सञ्जुग-महि मुरे।
सद्ग्रन्थ-पर्वत-कन्दरन्हि महँ, जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को, रखवार जग खरभर परा॥
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ, कोपि कर धनु-सर धरा॥
दो०—जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भये सकल बस काम॥८४॥
सब के हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिँ तरु साखा॥
नदी उमगि अम्बुधि कहँ धाई। सङ्गम करहिँ तलाव तलाई॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन्ह करनी॥
पसु पच्छी नभ-जल-थल-चारी। भये काम-बस समय-बिसारी॥
मदन अन्ध ब्याकुल सब लोका। निसि दिन नहिँ अवलोकहिँ कोका॥
देव दनुज नर किन्नर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह की दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥

सिद्ध बिरक्त महा मुनि जोगी। तेपि काम बस भये बियोगी॥

हरिगीतिका-छन्द।

भये काम-बस जोगीस तापस, पाँवरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारि-मय जे, ब्रह्म-मय देखत रहै॥
अबला बिलोकहिं पुरुष-मय जग, पुरुष सब अबला-मयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्माण्ड भीतर, काम-कृत कौतुक अयं॥४॥

सो०—धरी न काहूँ धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ॥८५॥

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम सम्भु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससङ्केउ मारू। भयउ जथा तिथि सब संसारू॥
भये तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गये मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥
फिरत लाज कछु करि नहिं आई। मरन ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु सखा बिराजा॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुयेहु मन मनसिज जागा॥

हरिगीतिका-छन्द।

जागेउ मनोभव मुयेहु मन बन,-सुभगता न परइ कही।
सीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत, मदन-अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कञ्ज गुञ्जत,-पुञ्ज मञ्जुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस-रव करि,-गान नाचहिं अपछरा॥५॥

दो०—सकल कला करि कोटि बिधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय निकेत॥८६॥

देखि रसाल-बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा॥
सुमन चाप निज सर सन्धाने। अति रिसि ताकि स्रवन लगि ताने॥
छाँड़ेउ बिषम बाण उर लागे। छूटि समाधि सम्भु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥
सौरभ-पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कम्पेउ त्रैलोका॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भये असुर सुखारी॥
समुझि काम-सुख सोचहिँ भोगी। भये अकंटक साधक जोगी॥

हरिगीतिका-छन्द।

जोगी अकंटक भये पति-गति, सुनत रति मुरछित भई।
रोदति वदति बहु भाँति करुना,-करति सङ्कर पहिँ गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि, जोरि कर सनमुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव, अबला निरखि बोले सही॥८॥

दो०—अब तें रति तव नाथ कर, होइहि नाम अनङ्ग।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसङ्ग॥८७॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महि भारा॥
कृष्न-तनय होइहि पति तोरा। बचन अन्यथा होइ न मोरा॥
रति गवनी सुनि सङ्कर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाये। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाये॥
सब सुर बिष्नु बिरञ्चि समेता। गये जहाँ सिव कृपा-निकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भये प्रसन्न चन्द्र-अवतंसा॥
बोले कृपासिन्धु वृषकेतू। कहहु अमर आयहु केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अन्तरजामी। तदपि भगति-बस बिनवउँ स्वामी॥

दो०—सकल सुरन्ह के हृदय अस, सङ्कर परम उछाह।
निज नयनन्हि देखा चहहिँ, नाथ तुम्हार बिवाह॥८८॥

यह उतसव देखिय भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन-मद मोचन॥
काम जारि रति कहँ बर दीन्हा। कृपासिन्धु यह अति भल कीन्हा॥
सासति करि पुनि करहिँ पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज-सुभाऊ॥
पारबती तप कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अङ्गीकारा॥
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुख मानी॥
तब देवन्ह दुन्दुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुर-साँई॥
अवसर जानि सप्तरिषि आये। तुरतहि बिधि गिरि-भवन पठाये॥
प्रथम गये जहँ रही भवानी। बोले मधुर बचन छल-सानी॥

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद के उपदेस।
अब भा झूठ हमार पन, जारेउ काम महेस॥८९॥

सुनि बोली मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिवर बिज्ञानी॥
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सम्भु रहे सबिकारा॥
हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेयेउँ अस जानी। प्रीति समेत करम-मन-बानी॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अबिवेक तुम्हारा॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गये समीप सो अवसि नसाई। असि मनमथ महेस कै नाईं॥
दो०—हिय हरषे मुनि बचन सुनि, देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर, गये हिमाचल पास॥९०॥
सब प्रसङ्ग गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुख पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवन्त बहुत सुख माना॥
हृदय बिचारि सम्भु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिये बोलाई॥
सुदिन सुनखत सुघरी सोचाई। बेगि बेद बिधि लगन धराई॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सो दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती॥
लगन बाँचि बिधि सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मङ्गल कलस दसहु दिसि साजे॥
दो०—लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मङ्गल सुखद, करहिं अपछरा गान॥९१॥
सिवहिं सम्भुगन करहिं सिँगारा। जटा-मुकुट अहि-मौर सँवारा॥
कुंडल कङ्कन पहिरे ब्याला। तन-बिभूति पट-केहरि-छाला॥
ससि ललाट सुन्दर सिर गङ्गा। नयन-तीनि उपबीत-भुजङ्गा॥
गरल-कंठ उर नर-सिर माला। असिव-बेष सिव-धाम कृपाला॥
कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहिं सुर-त्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥
बिष्नु बिरञ्चि आदि सुर ब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर-समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥
दो०-बिष्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।

बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥९२॥

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई ॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ॥
मनहीं मन महेस मुसुकाहीं। हरि के ब्यङ्ग बचन नहिं जाहीं ॥
अतिप्रिय-बचन सुनत प्रियकेरे। भृङ्गिहि-प्रेरि सकल गन टेरे ॥
सिव अनुसासन सुनि सब आये। प्रभु-पद-जलज-सीस तिन्ह नाये ॥
नाना-बाहन नाना-बेखा। बिहँसे सिव समाज निज देखा ॥
कोउ मुख हीन बिपुल-मुख काहू। बिनु-पद-कर कोउ बहु-पद-बाहू ॥
बिपुल-नयन कोउ नयन-बिहीना। रिष्ट-पुष्ट कोउ अति तन खीना ॥

हरिगीतिका-छन्द।

तन-खीन कोउ अति-पीन पावन, कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब, सद्य सोनित तन भरे ॥
खर-स्वान-असुर-सृगाल-मुख गन, बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत-पिसाच-जोगि-जमाति बरनत नहिं बनै ॥७॥

सो०—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरङ्गी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ॥९३॥

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अतिबिचित्र नहिं जाइ बखाना ॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवत पठावा ॥
कामरूप सुन्दर तनु धारी। सहित समाज सोह बर नारी ॥
आये सकल हिमाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराये। जथाजोग जहँ तहँ सब छाये ॥
पुर-सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरञ्चि निपुनाई ॥

हरिगीतिका-छन्द।

लघु लागि बिधि की निपुनता, अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता, सुभग सब सक को कही ॥
मंगल बिपुल तोरन पताका, केतु गृह गृह सोहहीं ॥
बनिता पुरुष सुन्दर चतुर छबि, देखि मुनि मन मोहहीं ॥

दो०—जगदम्बा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिधि सिधि सम्पति सकल सुख, नित नूतन अधिकाइ ॥९४॥

नगर निकट बरात जब आई। पुर खरभर सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥
हिय हरषे सुर-सेन निहारी। हरिहि देखि अति भये सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लेइ जीव पराने॥
गये भवन पूछहिँ पितु माता। कहहिँ बचन भय कम्पित गाता॥
कहिय काह कहि जाइ न बाता। जम कर धारि किधौं बरियाता॥
बर बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

हरिगीतिका-छन्द।

तन छार ब्याल कपाल भूषन, नगन जटिल भयङ्करा॥
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि, बिकट-मुख रजनीचरा॥
जो जियत रहिहि बरात देखत, पुन्य बड़ तेहि कर सही॥
देखिहि सो उमा बिवाह घर घर, बात असि लरिकन्ह कही॥१॥

दो०—समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिँ।
बाल बुझाये बिबिध बिधि, निडर होहु डर नाहिँ॥९५॥

लेइ अगवान बरातहि आये। दिये सबहि जनवास सुहाये॥
मैना सुभ आरती सँवारी। संग सुमङ्गल गावहिँ नारी॥
कञ्चनथार सोह बर पानी। परिछन चलीँ हरहि हरषानी॥
बिकट-बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा॥
भागि भवन पैठी अति त्रासा। गये महेस जहाँ जनवासा॥
मैना हृदय भयउ दुख भारी। लीन्ही बोलि गिरीस कुमारी॥
अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम-सरोज नयन भरि बारी॥
जेहि बिधि तुम्हहिँ रूप अस दीन्हा। तेहि जड़ बर बाउर कस कीन्हा॥

हरिगीतिका-छन्द।

कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहि, तुम्हहिँ सुन्दरता दई॥
जो फल चहिय सुरतरुहि सो, बरबस बबूरहि लागई॥
तुम्ह सहित गिरि ते गिरउँ पावक, जरउँ जलनिधि महँ परउँ॥

घर जाउ अपजस होउ जग, जीवन बिबाहु न हौं करौं ॥

दो०—भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि ।
करि बिलाप रोदति बदति, सुता सनेह सँभारि ॥९६॥

नारद कर मैं काह बिगारा । भवन मोर जिन्ह बसत उजारा ॥
अस उपदेस उमहि जिन्ह दीन्हा । बौरे बरहि लागि तप कीन्हा ॥
साँचेहु उनके मोह न माया । उदासीन धन धाम न जाया ॥
पर-घर घालक लाज न भीरा । बाँझ कि जान प्रसव की पीरा ॥
जननिहिँ बिकल बिलोकि भवानी । बोली जुत—बिबेक मृदु बानी ॥
अस बिचारि सोचहि मति माता । सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू । तौ कत दोष लगाइय काहू ॥
तुम्हसन मिटहिं कि बिधि के अङ्का । मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलङ्का ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

जनि लेहु मातु कलङ्क करुना,-परिहरहु अवसर नहीँ ।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे, जाब जहँ पाउब तहीँ ॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीँ ।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषण, नयन बारि बिमोचहीँ ॥११॥

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि-सप्त समेत ।
समाचार सुनि तुहिन-गिरि, गवने तुरत निकेत ॥९७॥

तब नारद सबही समुझावा । पूरब-कथा-प्रसङ्ग सुनावा ॥
मैना सत्य सुनहु मम बानी । जगदम्बा तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि-सक्ति अबिनासिनि । सदा सम्भु अरधङ्ग-निवासिनि ॥
जग-सम्भव-पालन-लय कारिनि । निज-इच्छा लीला बपु धारिनि ॥
जनमी प्रथम दच्छ-गृह जाई । नाम सती सुन्दर तनु पाई ॥
तहउँ सती सङ्करहि बियाहीँ । कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीँ ॥
एक बार आवत सिव सङ्गा । देखेउ रघुकुल-कमल-पतङ्गा ॥
भयउ मोह सिव कहा न कीन्हा । भ्रम बस बेष सीय कर लीन्हा ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

सिय बेष सती जो कीन्ह तेहि, अपराध सङ्कर परिहरी ।
हर बिरह जाइ बहोरि पितु के, जग्य-जोगानल जरी ॥

अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति, लागि दारुन तप किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा, सर्वदा सङ्कर प्रिया ॥१२

दो०—सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा विषाद।
छन महँ व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह सम्वाद ॥९८॥

तब मैना हिमवन्त अनन्दे। पुनि पुनि पारवती-पद-बन्दे॥
नारि पुरुष सिसु जुवा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥
लगे होन पुर मङ्गल गाना। सजे सबहिँ हाटक-घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूप-सास्त्र जस किछु व्यवहारा॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहि भवन जेहि मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। विष्णु विरञ्चि देव सब जाती॥
विविध पाँति बैठी जेवनारा। लगे परोसन निपुन सुआरा॥
नारि-वृन्द सुर जेँवत जानी। लगीँ देन गारी मृदु बानी॥

हरिगीतिका-छन्द।

गारी मधुर सुर देहिँ सुन्दरि, व्यङ्ग बचन सुनावहीँ।
भोजन करहिँ सुर अति विलम्ब, विनोद सुनि सचु पावहीँ॥
जेँवत जो बढ़ेउ अनन्द सो, मुख कोटिहु न परइ कह्यो।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने, बास जहँ जाको रह्यो ॥१३॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवन्त कहँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिवाह कर, पठये देव बुलाय ॥९९॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद-बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिँ नारी॥
सिंहासन अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि विचित्र बनावा॥
बैठे सिव विप्रन्ह सिर नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई। करि सिङ्गार सखी लेइ आई॥
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनइ छबि अस जग कबि को है॥
जगदम्बिका जानि भव-भामा। सुरन्ह मनहिँ मन कीन्ह प्रनामा॥
सुन्दरता—मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी॥

हरिगीतिका-छन्द।

कोटिहु बदन नहिँ बनइ बरनत, जग-जननि सोभा महा।

सकुचहिँ कहत स्रुति सेष सारद, मन्द-मति तुलसी कहा ॥
छबि-खानि मातु भवानि गवनी, मध्य मंडप सिव जहाँ ।
अवलोकि सकइ न सकुच पति-पद,-कमल मन मधुकर तहाँ ॥

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ सम्भु-भवानि ।
कोउ सुनि संसय करइ जनि, सुर अनादि जिय जानि ॥१००॥

जसि बिबाह कै बिधि स्रुति गाई । महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी । भवहि समरपी जानि भवानी ॥
पानि-गहन जब कीन्ह महेसा । हिय हरषे तब सकल सुरेसा ॥
बेद मन्त्र मुनिवर उच्चरहीँ । जय जय जय सङ्कर सुर करहीँ ॥
बाजहिँ बाजन बिबिध बिधाना । सुमन वृष्टि नभ भइ बिधि नाना ॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू । सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥
दासी दास तुरग रथ नागा । धेनु बसन मनि वस्तु बिभागा ॥
अन्न कनक-भाजन भरि जाना । दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर,—जोरि हिम-भूधर कह्यो ।
का देउँ पूरनकाम सङ्कर, चरन-पङ्कज गहि रह्यो ॥
सिव कृपासागर ससुर कर सन्तोष सब भाँतिहि कियो ।
पुनि गहे पद-पाथोज मैना, प्रेम परिपूरन हियो ॥१५॥

दो०—नाथ उमा मम प्रान प्रिय, गृह किङ्करी करेहु ।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बर देहु ॥१०१॥

बहु बिधि सम्भु सासु समुझाई । गवनी भवन चरन सिर नाई ॥
जननी उमा बोलि तब लीन्ही । लेइ उछङ्ग सुन्दर सिख दीन्ही ॥
करेहु सदा सङ्कर-पद-पूजा । नारि धरम पति-देव न दूजा ॥
बचन कहत भरि लोचन बारी । बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥
कत बिधि सृजी नारि जग माहीँ । पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीँ ॥
भइ अति प्रेम बिकल महतारी । धीरज कीन्ह कुसमय बिचारी ॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना । परम प्रेम कछु जाइ न बरना ॥
सब नारिन्ह मिलि भेँटि भवानी । जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

जननिहिँ बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दई।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखी लै सिव पहिँ गई।
जाचक सकल सन्तोषि सङ्कर, उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले ॥१६॥

दो०—चले सङ्ग हिमवन्त तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोष करि, बिदा कीन्हि वृषकेतु ॥१०२॥

तुरत भवन आये गिरिराई। सकल सैल सर लिये बोलाई॥
आदर दान बिनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिँ सम्भु कैलासहिँ आये। सुर सब निज निज लोक सिधाये॥
जगत मातु-पितु सम्भु-भवानी। तेहि सिङ्गार न कहउँ बखानी॥
करहिँ बिबिध बिधि भोग-बिलासा। गनन्ह समेत बसहिँ कैलासा॥
हर-गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब जनमेउ षट-बदन-कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षट-मुख जनम सकल जग जाना॥

हरिगीतिका-छन्द।

जग जान षटमुख जनम करम प्रताप पुरुषारथ महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु-सुत कर, चरित सङ्क्षेपहि कहा॥
यह उमा-सम्भु बिबाह जे नर,-नारि कहहिँ जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मङ्गल, सर्वदा सुख पावहीं ॥१७॥

दो०—चरित-सिन्धु गिरिजारवन, वेद न पावहिँ पार।
बरनइ तुलसीदास किमि, अति मति-मन्द गँवार ॥१०३॥

सम्भु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयन-नीर रोमावलि ठाढ़ी॥
प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि-ज्ञानी॥
अहो धन्य तव जनम मुनीसा। तुम्हहिँ प्रान सम प्रिय गौरीसा॥
सिव-पद-कमल जिन्हहिँ रति नाहीँ। रामहिँ ते सपनेहु न सुहाहीँ॥
बिनु छल-बिस्वनाथ-पद नेहू। रामभगत कर लच्छन एहू॥
सिव सम को रघुपति-ब्रत-धारी। बिनु अघ तजी सती सम नारी॥
पन करि रघुपति-भगति दिढ़ाई। को सिव सम रामहिँ प्रिय भाई॥

दो०—प्रथमहिं कहि मैं सिव चरित, बूझा मरम तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के, रहित समस्त बिकार ॥१०४॥
मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति-लीला ॥
सुनु मुनि आज समागम तोरे। कहि न जाइ जस सुख मन मोरे ॥
रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा॥
तदपि जथा स्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनु पानी॥
सारद दारुनारि सम स्वामी। राम-सूत्रधर अन्तरजामी ॥
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कबि-उर-अजिर नचावहिं बानी ॥
प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन-गाथा ॥
परम-रम्य गिरिवर-कैलासू। सदा जहाँ सिव-उमा निवासू ॥
दो०—सिद्ध तपोधन जोगि जन, सुर किन्नर मुनि बृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकन्द ॥१०५॥
हरि-हर-बिमुख धरम रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहु नहि जाहीं ॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुन्दर सब काला ॥
त्रिबिध समीर सुसीतल छाया। सिव बिस्राम बिटप स्रुति गाया ॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुख भयऊ।
निज कर डासि नाग-रिपु-छाला। बैठे सहजहि सम्भु कृपाला ॥
कुन्दु-इन्दु-दर गौर सरीरा। भुज-प्रलम्ब परिधन-मुनि-चीरा ॥
तरुन-अरुन-अम्बुज सम चरना। नख-दुति भगत-हृदय-तम हरना ॥
भुजग-भूति भूषन त्रिपुरारी। आनन सरद-चन्द-छबि हारी ॥
दो०—जटा-मुकुट-सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्य-निधि, सोह बाल-बिधु-भाल ॥१०६॥
बैठे सोह काम-रिपु कैसे। धरे सरीर सान्तरस जैसे ॥
पारवती भल अवसर जानी। गई सम्भु पहिं मातु भवानी ॥
जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। बाम-भाग आसन हर दीन्हा ॥
बैठी सिव समीप हरषाई। पूरब-जनम-कथा चित आई ॥
पति-हिय-हेतु अधिक मन मानी। बिहँसि उमा बोली मृदु बानी ॥
कथा जो सकल-लोक-हितकारी। सोइ पूछन चह सैल-कुमारी ॥
बिस्वनाथ मम-नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥

चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद-पङ्कज-सेवा॥
दो०—प्रभु समरथ सरबज्ञ सिव, सकल-कला-गुन धाम।
जोग-ज्ञान-बैराग्य-निधि, प्रनत-कलपतरु नाम॥१०७॥
जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज-दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥
जासु भवन सुरतरु तर होई। सह कि दरिद्र-जनित-दुख सोई॥
ससि-भूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥
प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी॥
सेष सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति-गुन-गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनङ्ग-अराती॥
राम सो अवध-नृपति-सुत सोई। की अज अगुन अलख-गति कोई॥
दो०—जौं नृप-तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥१०८॥
जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ।
अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटइ सोइ करहू॥
मैं बन दीख राम प्रभुताई। अति-भय-बिकल न तुम्हहिं सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फल भली भाँति हम पावा॥
अजहूँ कछु संसय मन मोरे। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा।
तब कर अस बिमोह अब नाहीं। राम-कथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम-गुन-गाथा। भुजगराज-भूषन सुर-नाथा॥
दो०—बन्दउँ पद धरि धरनि सिर, बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर-बिसद-जस, स्रुति-सिद्धान्त निचोरि॥१०९॥
जदपि जोषिता अन अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन-ब्रह्म सगुन-बपु-धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाही। राज तजा सो दूषन काही॥

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु सङ्कर सुभ-सीला॥
दो०—बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंस-मनि, किमि गवने निज-धाम॥११०॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी। जेहि बिज्ञान मगन मुनिज्ञानी॥
भगति ज्ञान विज्ञान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
अउरउ राम-रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिवेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिँ होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हिय राम-चरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये॥
श्रीरघुनाथ-रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा॥
दो०—मगन ध्यान-रस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति-चरित महेस तब, हरषित बरनइ लीन्ह॥१११॥
झूठउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजङ्ग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥
बन्दउँ बाल-रूप सोइ रामू। सबबिधि सुलभ जपत जिस नामू॥
मङ्गल-भवन अमङ्गल-हारी। द्रवउ सो दसरथ-अजर-बिहारी॥
करि प्रनाम रामहिँ त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज-कुमारी। तुम्ह समान नहिँ कोउ उपकारी॥
पूछेहु रघुपति-कथा प्रसङ्गा। सकल लोक जग-पावनि गङ्गा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत-हित लागी॥
दो०—राम कृपा तें पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिँ।
सोक मोह सन्देह भ्रम, मम बिचार कछु नाहिँ॥११२॥
तदपि असङ्का कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिँ काना। स्रवन-रन्ध्र अहि-भवन समाना॥
नयनन्हि सन्त दरस नहिँ देखा। लोचन मोर-पङ्ख कर लेखा॥
ते सिर कटु-तूँबरि समतूला। जे न नमत हरि-गुरु-पद-मूला॥
जिन्ह हरिभगति हृदय नहिँ आनी। जीवत सव समान ते प्रानी॥

जो नहिं करइ राम-गुन-गाना । जीह सो दादुर-जीह समाना ॥
कुलिस-कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरि-चरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुर-हित दनुज-बिमोहन-सीला ॥
दो०—रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख-दानि ।
सतसमाज सुरलोक सब, को न सुनइ अस जानि ॥११३॥
रामकथा सुन्दर करतारी । संसय-बिहग उड़ावनिहारी ॥
रामकथा कलि-बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराज-कुमारी ॥
राम नाम गुन चरित सुहाये । जनम करम अगनित स्रुति गाये ॥
जथा अनन्त राम भगवाना । तथा कथा कीरति गुन नाना ॥
तदपि जथा-स्रुत जसि मति मोरी । कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई । सुखद सन्त सम्मत मोहि भाई ॥
एक बात नहिं मोहि सुहानी । जदपि मोह-बस कहेहु भवानी ॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि स्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥
दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच ।
पाखंडी हरि-पद-बिमुख, जानहिं झूठ न साँच ॥११४॥
अज्ञ अकोबिद अन्ध अभागी । काई बिषय मुकुर-मन लागी ॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेखी । सपनेहु सन्त-सभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते बेद असम्मत बानी । जिन्हहिं न सूझ लाभ नहिं हानी ॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना । राम-रूप देखहिं किमि दीना ॥
जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका । जलपहिं कलिपत बचन अनेका ॥
हरि-माया-बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत-बिबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥
जिन्ह कृत महा-मोह-मद-पाना । तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना ॥
सो०—अस निज हृदय बिचारि, तजु संसय भजु राम-पद ।
सुनु गिरिराज-कुमारि, भ्रम-तम रबि-कर-बचन-मम ॥११५॥
सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत-प्रेम-बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जल-हिम-उपल बिलग नहिं जैसें ॥
जासु नाम भ्रम-तिमिर-पतङ्गा । तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसङ्गा ॥

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिँ तहँ मोह-निसा-लवलेसा॥
सहज प्रकास-रूप भगवाना। नहिँ तहँ पुनि विज्ञान बिहाना॥
हरष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव-धरम अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥
दो०—पुरुष-प्रसिद्ध प्रकास-निधि, प्रगट परावर-नाथ।
रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥११६॥
निज भ्रम नहिँ समुझहिँ अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहिँ जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन-पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिँ कुबिचारी॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाये। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाये॥
उमा राम-बिषयक अस मोहा। नभ तम-धूम-धूरि जिमि सोहा॥
बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तेँ एक सचेता॥
सब कर परम-प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान-गुन-धामू॥
जासु सत्यता तेँ जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
दो०—रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानु-कर-बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सो, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥११७॥
एहि बिधि जग हरि आस्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपने सिर काटइ कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनुपद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल-रस-भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेखा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिँ बरनी॥
दो०—जेहि इमि गावहिँ बेद बुध, जाहि धरहिँ मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ-सुत भगत-हित, कोसलपति-भगवान॥११८॥
कासी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अन्तरजामी॥
बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव-बारिधि गो-पद इव तरहीं॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ज्ञान बिराग सकल गुन जाहीं॥
सुनि सिव के भ्रम-भञ्जन-बचना। मिटि गइ सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति-पद प्रीति प्रतीता। दारुन असम्भावना बीती॥
दो०—पुनि पुनि प्रभु-पद कमल गहि, जोरि पङ्करुह-पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेम रस सानि॥११९॥
ससि-कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल मम संसय हरेऊ। राम-सरूप जानि मोहि परेऊ॥
नाथ कृपा अब गयउ बिषादा। सुखी भइउँ प्रभु-चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किङ्करि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर-पुर-बासी॥
नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता। राम-कथा पर प्रीति पुनीता॥
दो०—हिय हरषे कामारि तब, सङ्कर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहिँ प्रसंसि पुनि, बोले कृपानिधान॥
सो०—सुनु सुभ-कथा भवानि, रामचरित मानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना बिहँग-नायक गरुड़॥
सो संबाद उदार, जेहि बिधि भा आगे कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ॥
हरि गुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहउँ उमा सादर सुनहु॥१२०॥
सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाये। बिपुल बिसद निगमागम गाये॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि सन्त मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिँ स्वमति अनुमाना॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिँ असुर अधम अभिमानी॥

शिव-पार्वती सम्वाद ।

करहिँ अनीति जाइ नहिँ बरनी। सीदहिँ बिप्र-धेनु-सुर-धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिँ कृपानिधि सज्जन पीरा॥
दो०—असुर मारि थापहिँ सुरन्ह, राखहिँ निजस्रुति-सेत।
जग बिस्तारहिँ बिसद जस, राम-जनम कर हेत॥१२१॥
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपा सिन्धु जन हित तनु धरहीं॥
राम-जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक ते एका॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र साप तें दूनउँ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनक कसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति-मद मोचन
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह-बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥
दो०—भये निसाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुम्भकरन रावन सुभट, सुर-बिजई जग जान॥१२२॥
मुकुत न भये हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किये संसारा॥
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलन्धर सन सब हारे॥
सम्भु कीन्ह सङ्ग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम-सती असुराधिप-नारी। तेहि बल ताहि न जितहिँ पुरारी
दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेइँ जानेउँ मरम तब, साप कोप करि दीन्ह॥१२३॥
तासु साप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुक-निधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलन्धर रावन भयऊ। रन हति राम परम-पद दयऊ॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥
नारद साप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिष्नु-भगत पुनि ज्ञानी॥

कारन कवन साप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसङ्ग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह। आचरज भारी॥
दो०—बोले बिहँसि महेस तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ॥
सो०—कहउँ राम-गुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव-भञ्जन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान-मद॥१२४॥
हिम-गिरि-गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आस्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति-पद-अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि स्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥
मुनि गति देखि सुरेस डराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचर-केतू॥
सुनासीर मन महँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥
दो०—सूख हाड़ लेइ भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज॥१२५॥
तेहि आस्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया बसन्त निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहु रङ्गा। कूजहिं कोकिल गुञ्जहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रम्भादिक सुर-नारि नवीना। सकल असमसर-कला-प्रवीना॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि-पतङ्गा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपञ्च बिधि नाना॥
काम-कला कछु मुनिहिं न ब्यापी। निज-भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
दो०—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥१२६॥
भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिर आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी॥

सुनि सब के मन अचरज आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिर नावा॥
तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित सङ्करहि सुनाये। अति प्रिय जानि महेस सिखाये॥
बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनायहु कबहूँ। चलेहु प्रसङ्ग दुरायहु तबहूँ॥
दो०-सम्भु दीन्ह उपदेस हित, नहिँ नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि-इच्छा बलवान॥१२७॥
राम कीन्ह चाहहिँ सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहिँ कोई॥
सम्भु बचन मुनि मन नहिँ भाये। तब बिरञ्चि के लोक सिधाये॥
एक बार करतल बर-बीना। गावत हरि-गुन गान-प्रबीना॥
छीरसिन्धु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास स्रुतिनाथा॥
हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहँसि चराचर-राया। बहुते दिनन्ह कीन्ह मुनि दाया॥
काम चरित नारद सब भाखे। जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥
दो०-रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तेँ मिटहिँ, मोह मार मद मान॥१२८॥
सुनु मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान बिराग हृदय नहिँ जाके॥
ब्रह्मचरज-ब्रत-रत मतिधीरा। तुम्हहिँ कि करइ मनोभव पीरा॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर-अङ्कुरेउ गर्ब-तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उपारी। पन हमार सेवक-हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करब मैं सोई॥
तब नारद हरिपद सिर नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निजमाया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥
दो०—बिरचेउ मग महँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार।
श्री निवासपुर तेँ अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥१२९॥
बसहिँ नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनु धारी॥
तेहि पुर बसइ सील निधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥

सत-सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्व-मोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूप निहारी॥
सोइ हरि-माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयम्बर सो नृप-बाला। आये तहँ अगनित महिपाला॥
मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूप गृह आये। करि पूजा नृप मुनि बैठाये॥
दो०—आनि देखाई नारदहि, भूपति राज कुमारि।
कहहु नाथ गुन-दोष सब, एहि के हृदय बिचारि॥१३०॥
देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिँ प्रगट बखाने॥
जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समर-भूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिँ सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि-कन्या जाही॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाखे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीँ। नारद चले सोच मन माहीँ॥
करउँ जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरइ कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥
दो०—एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोक रीझइ कुँअरि, तब मेलइ जयमाल॥१३१॥
हरि सन माँगउँ सुन्दरताई। होइहि जात गहरु मोहि भाई॥
मोरे हित हरि सम नहिँ कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥
बहु बिधि बिनय कीन्ह तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काज हिये हरषाने॥
अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिँ पावउँ ओही॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज-माया बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला॥
दो०—जेहि बिधि होइहि परम-हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥१३२॥
कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥

एहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अन्तर हित प्रभु भयऊ॥
माया बिवस भये मुनि मूढ़ा। समुझी नहिँ हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयम्बर-भूमि बनाई॥
निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहिँ बरिहि न भोरे
मुनि हित कारन कृपा निधाना। कीन्हि कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहि सिर नावा॥

दो०—रहे तहाँ दुइ रुद्र गन, ते जानहिँ सब भेउ।
विप्र वेष देखत फिरहिँ, परम कौतुकी तेउ॥१३३॥

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेश गन दोऊ। बिप्र वेष गति लखइ न कोऊ॥
करहिँ कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँअरि छबि देखी। इन्हहिँ बरिहि हरि जानि बिसेखी॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराये। हँसहिँ सम्भु-गन अति सचु पाये॥
जदपि सुनहिँ मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि-भ्रम-सानी॥
काहु न लखा सो चरित बिसेखा। सो सरूप नृप कन्या देखा॥
मर्कट बदन भयङ्कर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥

दो०—सखी सङ्ग लेइ कुँअरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल॥१३४॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिँ अकुलाहीँ। देखि दसा हर-गन मुसुकाहीँ॥
धरि नृप तनु तहँ गयउ कृपला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लेइ गये लच्छिनिवासा। नृप-समाज सब भयउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोह मति नाँठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर-गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
वेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहिँ सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥१३५॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय सन्तोष न आवा ॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं ॥
देहउँ साप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई ॥
बीचहि पन्थ मिले दनुजारी। सँग रमा सोइ राजकुमारी ॥
बोले मधुर बचन सुर-साँई। मुनि कहँ चले बिकल की नाँई ॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया-बस न रहा मन बोधा ॥
पर सम्पदा सकहु नहिँ देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी ॥
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायेहु। सुरन्ह प्रेरि विष पान करायेहु ॥
दो०—असुर सुरा बिष सङ्करहि, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहारु ॥१३६॥
परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावइ मनहिँ करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मन्द मन्देहि भल करहू। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू ॥
डहँकि डहँकि परचेहु सब काहू। अति असङ्क मन सदा उछाहू ॥
करम सुभासुभ तुम्हहिँ न बाधा। अब लगि तुम्हहिँ न काहू साधा ॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
बञ्चेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोई तनु धरहु साप मम एहा ॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिँ कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि-बिरह तुम्ह होब दुखारी ॥
दो०—साप सीस धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्ह।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्ह ॥१३७॥
जब हरि माया दूरि निवारी। नहिँ तहँ रमा न राजकुमारी ॥
तब मुनि अति सभीत हरि-चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥
मृषा होउ मम साप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला ॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे ॥
जपहु जाइ सङ्कर सतिनामा। होइहि हृदय तुरत बिस्रामा ॥
कोउ नहिँ सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे ॥
जेहि पर कृपा न करहिँ पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहिँ माया नियराई ॥
दो०—बहुबिधि मुनिहिँ प्रबोधि प्रभु, तब भये अन्तरधान।

सत्यलोक नारद चले, करत राम-गुन-गान ॥१३८॥
हर-गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेखी॥
अति सभीत नारद पहिँ आये। गहि-पद आरत बैन सुनाये॥
हर-गन-हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
स्राप-अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥
निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुज-बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिँ बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि-पद सिर नाई। भये निसाचर कालहि पाई॥
दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन-भुबि-भार ॥१३९॥
एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुन्दर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीँ। चारु चरित नाना बिधि करहीँ॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई॥
बिबिध प्रसङ्ग अनूप बखाने। करहिँ न सुनि आचरज सयाने॥
हरि-अनन्त हरि-कथा-अनन्ता। कहहिँ सुनहिँ बहु बिधि सब सन्ता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाये। कलप कोटि लगि जाहिँ न गाये॥
यह प्रसङ्ग मैं कहा भवानी। हरि-माया मोहहिँ मुनिज्ञानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत-हितकारी। सेवत सुलभ सकल-दुख-हारी॥
सो०—सुर नर मुनि कोउ नाहिँ, जेहि न मोह माया प्रबल॥
अस बिचारि मन माहिँ, भजिय महा-माया-पतिहि ॥१४०॥
अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी।
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर-भूपा॥
जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बन्धु समेत धरे मुनि बेखा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥
अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम-रुज-हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥
भरद्वाज सुनि सङ्कर बानी। सकुचि सप्रेम उमा हरषानी॥
लगे बहुरि बरनइ बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू॥

दो०—सो मैं तुम्हसन कहउँ सब, सुनु मुनीस मन लाइ।
रामकथा-कलिमल-हरनि, मङ्गल-करनि सुहाइ ॥१४१॥

स्वायम्भुव-मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भइ नर सृष्टि अनूपा॥
दम्पति धरम-आचरन नीका। अजहुँ गाव स्रुति जिन्ह कै लीका॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि-भगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिँ जाही॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि-कर्दम क प्रिय नारी॥
आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥
सांख्यसास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

सो०—होइ न विषय बिराग, भवन बसत भा चौथ पन।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरिभगति बिनु ॥१४२॥

बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक-सिधि-दाता॥
बसहिँ तहाँ मुनि-सिद्ध-समाजा। तहँ हिय हरषि चले मनुराजा॥
पन्थ जात सोहहिँ मति-धीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा॥
पहुँचे जाइ धेनुमति-तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी। धरम-धुरन्धर नृपरिषि जानी॥
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन्ह सकल सादर करवाये॥
कृस-सरीर मुनि-पट परिधाना। सत-समाज नित सुनहिँ पुराना॥

दो०—द्वादस अच्छर मन्त्र पुनि, जपहिँ सहित अनुराग।
बासुदेव-पद-पङ्करुह, दम्पति मन अति लाग ॥१४३॥

करहिँ अहार साक फल कन्दा। सुमिरहिँ ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि-अधार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनन्त अनादी। जेहि चिन्तहिँ परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। चिदानन्द निरुपाधि अनूपा॥
सम्भु बिरञ्चि बिष्नु भगवाना। उपजहिँ जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥

जौ यह बचन सत्य स्रुति भाषा। तौ हमार पूजहि अभिलाषा॥
दो०—एहि बिधि बीते बरष षट, —सहस बारि आहार।
सम्बत सप्त-सहस्त्र पुनि, रहे समीर अधार ॥ १४४॥
बरष सहस-दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पग दोऊ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिँ चलहिँ चलाये॥
अस्थि-मात्र होइ रहेउ सरीरा। तदपि मनाग मनहिँ नहिँ पीरा॥
प्रभु सर्बज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप-रानी॥
माँगु माँगु बर भइ नभ बानी। परम गँभीर कृपामृत सानी॥
मृतक-जिआवनि गिरा सुहाई। स्रवन-रन्ध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट-पुष्ट तन भये सुहाये। मानहुँ अबहिँ भवन ते आये॥
दो०—स्रवनसुधा-सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदय समात ॥१४५॥
सुनु सेवक सुरतरु-सुरधेनू। बिधि-हरि-हर बन्दित पदरेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनत पाल सचराचर नायक॥
जौ अनाथ-हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीँ। जेहि कारन मुनि जतन कराहीँ॥
जो भुसुंडि-मन-मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिँ हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति-मोचन॥
दम्पति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत-बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥
दो०—नील-सरोरुह नील मीन, नील-नीरधर-स्याम।
लाजहिँ तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम ॥१४६॥
सरद-मयङ्क-बदन छबि सीवाँ। चारु-कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ॥
अधर-अरुन रद-सुन्दर नासा। बिधुकर निकर बिनिन्दक हासा॥
नव अम्बुज अम्बक-छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज-चाप छबि-हारी। तिलक ललाट-पटल दुतिकारी॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप-समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिकहार भूषन मनि-जाला॥

केहरि-कन्धर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुन्दर तेऊ॥
करि-कर-सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषङ्ग कर सर कोदंडा॥
दो०—तड़ित बिनिन्दक पीत-पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन-भँवर छबि छीनि॥१४७॥
पद-राजीव बरनि नहिँ जाहीं। मुनिमनमधुप बसहिँ जिन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबि-निधि जग मूला॥
जासु अंस उपजहिँ गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि-बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिँ सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिँ मनु सतरूपा॥
हरष-बिबस तनु दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज-कर-कञ्जा। तुरत उठाये करुना-पुञ्जा॥
दो०—बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि॥१४८॥
सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरज बोले मृदु बानी॥
नाथ देखि पद-कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥
एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं॥
तुम्हहिँ देत अति सुगम गोसाँई। अगम लागि मोहि निज कृपनाई॥
जथा दरिद्र कलपतरु पाई। बहु सम्पति माँगत सकुचाई॥
तासु प्रभाव जान नहिँ सोई। तथा हृदय मम संसय होई॥
सो तुम्ह जानहु अन्तर जामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिँ अदेय कछु तोही॥
दो०—दानि-सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतभाउ।
चाहउँ तुम्हहिँ समान सुत, प्रभु सन कवन दुराव॥१४९॥
देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु-सरिस खोजउँ कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
सतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देबि माँगु बर जो रुचि तोरे॥
जो बर नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥
प्रभु परन्तु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत-हित तुम्हहि सुहाई॥

तुम्ह ब्रह्मादि-जनक जग स्वामी । ब्रह्म सकल-उर-अन्तर जामी ॥
अस समुझत मन संसय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिँ जो गति लहहीं ॥
दो०—सोइ-सुख सोइ-गति सोइ-भगति, सोइ निज चरन-सनेहु ॥
सोइ-बिबेक सोइ-रहनि प्रभु, हमहिँ कृपा करि देहु ॥१५०॥
सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बच रचना । कृपा सिन्धु बोले मृदु बचना ॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं । मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ॥
मातु बिबेक अलौकिक तोरे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ॥
बन्दि चरन मनु कहेउ बहोरी । अउर एक बिनती प्रभु मोरी ॥
सुत बिषयक तव पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ़ कहइ किन कोऊ ॥
मनिबिनुफनिजिमिजलबिनुमीना । मम जीवन तिमि तुम्हहिँ अधीना ॥
अस बर माँगि चरन गहि रहेऊ । एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥
सो०—तहँ करि भोग बिसाल, तात गये कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध-भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत ॥१५१॥
इच्छामय नर-बेष सँवारे । होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता । करिहउँ चरित भगत-सुख-दाता ॥
जेहि सुनि सादर नर बड़भागी । भव तरहहिँ ममता-मद त्यागी ॥
आदिसक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना । अन्तरधान भये भगवाना ॥
दम्पति उर धरि भगति कृपाला । तेहि आस्रमनि बसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा । जाइ कीन्ह अमरावति बासा ॥
दो०—यहि इतिहास पुनीत अति, उमहिँ कहा बृषकेतु ।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम-जन्म कर हेतु ॥१५२॥
सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी । जो गिरिजा प्रति सम्भु बखानी ॥
बिस्व-बिदित एक कैकय देसू । सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू ॥
धरम-धुरन्धर नीति-निधाना । तेज प्रताप सील बलवाना ॥
तेहि के भये जुगल-सुत बीरा । सब-गुन-धाम महा-रनधीरा ॥

राउ-धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रताप-भानु अस ताही।
अपर-सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज-बल-अतुल अचल-संग्रामा।
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती।
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आप गवन बन कीन्हा।
दो०—जब प्रताप-रबिभयउ नृप, फिरी दोहाई देस।
प्रजापाल अति बेदबिधि, कतहुँ नहीं अघ लेस ॥१५३॥
नृप-हित-कारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बन्धु-बल बीरा। आपु प्रताप पुञ्ज रनधीरा॥
सेन सङ्ग चतुरङ्ग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परी अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई॥
सप्त दीप भुज बल बस कीन्हे। लेइ लेइ दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रताप भानु महिपाला॥
दो०—स्वबसबिस्व करि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेश।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समय नरेश ॥१५४॥
भूप प्रताप भानु बल पाई। कामधेनु भइ भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरम सील सुन्दर नर नारी॥
सचिव धरमरुचि हरिपद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती
गुरु सुर सन्त पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिनप्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥
नाना बापी कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुन्दर बागा॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाये। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाये॥
दो०—जहँ लगि कहे पुरान स्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग ॥१५५॥
हृदय न कछु फल अनुसन्धाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासदेव अरपित नृप ज्ञानी॥
चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥

बिन्ध्याचल गम्भीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥
फिरत बिपिन नृप देखि बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड़ बिधु नहिँ समात मुख माहीँ। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीँ ॥
कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई ॥
घुरघुरात हय आरव पाये। चकित बिलोकत कान उठाये ॥
दो०—नील-महीधर-सिखर सम, देखि बिसाल बराह।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाह ॥१५६॥
आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत-गति भाजी ॥
तुरत कीन्ह नृप सर सन्धाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना ॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा ॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा ॥
गयउ दूरि घन-गहन बराहू। जहँ नाहिँन गज बाजि निबाहू ॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग-मग तजइ नरेसू ॥
कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरि-गुहा-गँभीरा ॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई ॥
दो०—खेद-खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत ॥१५७॥
फिरत बिपिन आस्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनि बेखा ॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई ॥
समय प्रताप-भानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी ॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहिँ नृप अभिमानी ॥
रिस उर मारि रङ्क जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस के साजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रताप-रबि तेहि तब चीन्हा ॥
राउ तृषित नहिँ सो पहचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरँग तेँ कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥
दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहि, सरवर दीन्ह दिखाय ॥
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाय ॥१५८॥
गै स्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आस्रम तापस लेइ गयऊ ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेले। सुन्दर जुवा जीव पर हेले॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे॥
नाम प्रताप-भानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा॥

दो०—निसा घोर गम्भीर-बन, पन्थ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह, जायहु होत बिहान॥
तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाइ।
आपु न आवइ ताहि पहिँ, ताहि तहाँ लेइ जाइ॥१५९॥

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बन्दि निज-भाग्य सराही॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहउ बखानी॥
तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज-काजा॥
समुझि राज-सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर संभारि हृदय हरषाना॥

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निरधन रहित-निकेत॥१६०॥

कह नृप जे बिज्ञान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
रहहिँ अपनपौ सदा दुराये। सब बिधि कुसल कुबेष बनाये॥
तेहि तें कहहिँ सन्त स्रुति टेरे। परम अकिञ्चन प्रिय हरि केरे॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरञ्चि सिवहि सन्देहा॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिय अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेखी॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावउँ काहु।

लोकमान्यता अनल सम, कर तप-कानन दाहु ॥
सो०—तुलसी देखि सुबेखु, भूलहिँ मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु, बचन सुधा-सम असन-अहि ॥१६१॥
ता तेँ गुपुत रहउँ जग माहीँ। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीँ ॥
प्रभु जानत सब बिनहिँ जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये ॥
तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे ॥
अब जौँ तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही ॥
जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥
देखा स्वबस कर्म-मन-बानी। तब बोला तापस बगध्यानी ॥
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिर नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥
दो०—आदि सृष्टि उपजी जबहि, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि ॥१६२॥
जनि आचरज करहु मन माहीँ। सुत तप तेँ दुर्लभ कछु नाहीँ ॥
तप बल तेँ जग सृजइ बिधाता। तप बल बिष्नु भये परित्राता ॥
तप बल सम्भु करहिँ संहारा। तप तेँ अगम न कछु संसारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहइ सो लागा ॥
धरम करम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका ॥
उद्भव-पालन-प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी ॥
सुनि महीस तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥
सो०—सुनु महीस असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिँ नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥
नाम तुम्हार प्रताप-दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
गुरु प्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा ॥
देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहउँ कथा निज पूछे तोरे ॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीँ। माँगु जो भूप भाव मन माहीँ ॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥

कृपासिन्धु मुनि दरसन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बर होउँ बिसोकी॥

दो०—जरा मरन-दुख रहित तनु, समर जितइ जनि कोउ।
एक-छत्र रिपु-हीन महि, राज कलप सत होउ॥ १६४॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तव-पद नाइहि सीसा। एक बिप्र-कुल छाड़ि महीसा॥
तप बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुव बस बिधि बिष्नु महेसा॥
चल न ब्रह्म-कुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र साप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिँ कवनेहुँ काला॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहँ सर्ब काल कल्याना॥

दो०—एवमस्तु कहि कपट-मुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब-हमार भुलाब-निज, कहहु त हमहिँ न खोरि॥१६५॥

ता तेँ मैं तोहि बरजउँ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठे स्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥
यह प्रगटे अथवा द्विज-सापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन-उपाय निधन तव नाहीँ। जौं हरि हर कोपहिँ मन माहीँ॥
सत्य नाथ पद-गहि नृप भाषा। द्विज गुरु-कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुरु जौं कोप बिधाता। गुरु-बिरोध नहिँ कोउ जग त्राता॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिँ सोच हमारे॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव-साप अति घोरा॥

दो०—होहिँ बिप्र बस कवनि बिधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखउँ कोउ॥१६६॥

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीँ। कष्टसाध्य पुनि होहिँ कि नाहीँ॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परन्तु एक कठिनाई॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगे अरु जब तेँ भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥
जौं न जाउँ तौ होइ अकाजू। बना आइ असमञ्जस आजू॥

सुनि महीस बोलउ मृदु बानी । नाथ निगम असि नीति बखानी ॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं । गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू । सन्तत धरनि धरत सिर रेनू ॥

दो०—अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

जानि नृपहि आपन आधीना । बोला तापस कपट-प्रवीना ॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही । जग नाहिं न दुर्लभ कछु मोही ॥
अवसि काज मैं करिहउँ तोरा । मन क्रम वचन भगत तैं मोरा ॥
जोग-जुगुति तप मन्त्र प्रभाऊ । फलइ तबहिं जब करिय दुराऊ ॥
जौं नरेस मैं करउँ रसोई । तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई । सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥
पुनि तिन्ह के गृह जेवइँ जोऊ । तव बस होइ भूप सुनु सोऊ ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू । सम्वत भरि सङ्कलप करेहू ॥

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार ।
मैं तुम्हरे सङ्कलप लगि, दिनहि करब जेवनार ॥१६८॥

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे । होइहहिं सकल विप्र बस तोरे ॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा । तेहि प्रसङ्ग सहजहिं बस देवा ॥
अउर एक तोहि कहउँ लखाऊ । मैं एहि भेष न आउब काऊ ॥
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया । हरि आनब मैं करि निजमाया ॥
तप बल तेहि करि आपु समाना । रखिहउँ इहाँ बरष परमाना ॥
मैं धरि तासु वेष सुनु राजा । सबबिधि तोर सँवारब काजा ॥
गइ निसि बहुत सयन अब कीजे । मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥
मैं तप बल तोहि तुरग समेता । पहुँचइहउँ सोवतहि निकेता ॥

दो०—मैं आउब सोइ वेष धरि, पहिचानेहु तब मोहि ।
जब एकान्त बोलाइ सब, कथा सुनावउँ तोहि ॥१६९॥

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी । आसन जाइ बैठ छल-ज्ञानी ॥
स्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा । जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा । जानइ सो अति कपट घनेरा ॥

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव-दुख-दाई॥
प्रथमहिँ भूप समर सब मारे। बिप्र सन्त सुर देखि दुखारे॥
तेहि खल पाछिल बयर सँभारा। तापस नृप मिलि मन्त्र बिचारा॥
जेहि रिपु-छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि, सिर अवसेषित राहु॥१७०॥

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु अब सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥
कुल समेत रिपु-मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई॥
तापस-नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अति रोषी॥
भानुप्रतापहिँ बाजि समेता। पहुँचायेसि छन माँझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिँ सयन कराई। हय-गृह बाँधेसि बाजि बनाई॥

दो०—राजा के उपरोहितहि, हरि लेइ गयउ बहोरि।
लेइ राखिसि गिरि खोह महँ, माया करि मति भोरि॥१७१॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभये बिहाना। देखि भवन बड़ अचरज माना॥
मुनि महिमा मन महँ अनुमानी। उठेउ गवँहिँ जेहि जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नर नारि न जानेउ केही॥
गये जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोकि सुमिरि सोइ काजा॥
जुग सम नृपहि गयउ दिन तीनी। कपटी मुनि-पद रहि मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम-बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत-सहस बर, बिप्र कुटुम्ब समेत॥१७२॥

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि स्रुति गाई॥
माया-मय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्र माँस खल साँधा॥

भोजन कहँ सब बिप्र बोलाये। पद पखारि आसन बैठाये॥
परुसन जबहिँ लाग महिपाला। भइ अकास-बानी तेहि काला॥
बिप्र-बृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुर माहू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥
दो०—बोले बिप्र सकोप तब, नहिँ कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार॥१७३॥
छत्रबन्धु तैँ बिप्र बोलाई। घालइ लिये सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जइहसि तैँ समेत परिवारा॥
सम्बत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि साप बिकल अति त्रासा। भइ बहोरि बर गिरा अकासा॥
बिप्रहु साप बिचारि न दीन्हा। नहिँ अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजन-खानी॥
तहँ न असन नहिँ बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसङ्ग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई॥
दो०—भूपति भावी मिटइ नहिँ, जदपि न दूषन तोर।
किये अन्यथा होइ नहिँ, बिप्र-साप अति घोर॥१७४॥
अस कहि सब महिदेव सिधाये। समाचार पुरबासिन्ह पाये॥
सोचहिँ दूषन दैवहिँ देहीँ। बिरचत हंस काग किय जेहीँ॥
उपरोहितहिँ भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये। सजि सजि सेन भूप सब आये॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बन्धु समेत परेउ नृप धरनी॥
सत्यकेतु-कुल कोउ नहिँ बाँचा। बिप्र-साप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज-पुर गवने जय जस पाई॥
दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम॥१७५॥
काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस-सिर ताहि बीस-भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भकरन बल-धामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र-बन्धु लघु तासू॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नु-भगत बिज्ञान-निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भये निसाचर घोर घनेरे॥
काम-रूप खल जिनिस अनेका। कुटिल भयङ्कर बिगत-बिबेका॥
कृपा-रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिँ बिस्व-परितापी॥

दो०—उपज जदपि पुलस्त्य-कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्राप-बस, भये सकल अघ-रूप॥१७६॥

कीन्ह बिबिध तप तीनिउँ भाई। परम उग्र नहिँ बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। माँगहु बर प्रसन्न मैं ताता॥
करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिँ न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुम्भकरन पहिँ गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥
जौं एहि खल नित करब अहारू। होइहि सब उजार संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नींद मास षट केरी॥

दो०—गये बिभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र बर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवन्त पद, कमल अमल अनुरागु॥१७७॥

तिन्हहिँ देइ बर ब्रह्म सिधाये। हरषित ते अपने गृह आये॥
मय-तनुजा मन्दोदरि नामा। परम-सुन्दरी नारि-ललामा॥
सोइ मय दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधान-पति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बन्धु बिआहेसि जाई॥
गिरि-त्रिकूट एक सिन्धु मँझारी। बिधि-निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥
भोगावति जसि अहि-कुल बासा। अमरावति जसि सक्र-निवासा॥
तिन्ह त अधिक रम्य अति बङ्का। जग बिख्यात नाम तेहि लङ्का॥

दो०—खाँई सिन्धु गंभीर अति, चारिहु दिसि फिरि आव।
कनक-कोट मनि-खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव॥
हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ, जातुधान-पति होइ।

सूर प्रतापी अतुल-बल, दल समेत बस सोइ ॥१७८॥
रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर सङ्घारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लेइ गयउ पराई॥
फिरि सब नगर दशानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेखा॥
सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक-जान जीति लेइ आवा॥
दो०—कौतुकही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाय।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल, चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥
सुख सम्पति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
अति बल कुम्भकरन अस भ्राता। जेहि कहँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ-पुर त्रासा॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन-सनमुख कोई। सुर-पुर नितहि परावन होई॥
दो०—कुमुख अकम्पन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥
काम-रूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥
सुत-समूह जन परिजन नाती। गनइ को पार निसाचर जाती॥
सैन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध-मद-सानी॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध—बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि प्रबल-रिपु जाहिं पराई॥
तिन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विज-भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

दो०—छुधा-छीन बल-हीन सुर, सहजहि मिलिहहि आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउ, भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बल बयर बढ़ावा॥
जे सुर समर-धीर बलवाना। जिन्ह के लरिबे कर अभिमाना॥
तिन्हहिँ जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु-अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सबही आज्ञा दीन्ही। आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही॥
चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ-स्रवत सुर-रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥
दिगपालन्ह के लोक सुहाये। सूने सकल दसानन पाये॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि प्रचारी॥
रन-मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धन-धारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पन्थहि लागा॥
ब्रह्म-सृष्टि जहँ लगि तनु-धारी। दसमुख-बसवर्त्ती नर नारी॥
आयसु करहिँ सकल भयभीता। नवहिँ आइ नित चरन बिनीता॥

दो०—भुज-बल बिस्व-बस्य करि, राखेसि कोउ न स्वतन्त्र।
मंडलीक-मनि रावन, राज करइ निज-मन्त्र॥
देव जच्छ गन्धर्ब नर, किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज-बाहु-बल, बहु सुन्दरि बर नारि॥१८२॥

इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ॥
प्रथमहि जिन्ह कहँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥
देखत भीम-रूप सब पापी। निसिचर-निकर देव-परितापी॥
करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिँ करि माया॥
जेहि बिधि होइ धरम-निर्मूला। सो सब करहिँ बेद-प्रतिकूला॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि। नगर गाँउ पुर आगि लगावहिँ॥
सुभ आचरन कतहु नहिँ होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहि हरि भगति जज्ञ जप दाना। सपनेहु सुनिय न बेद पुराना॥

चवपैया-छन्द।

जप जोग बिरागा, तप मख-भागा, स्रवन सुनइ दस सीसा।

आपुन उठि धावै, रहइ न पावै, धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा, भा संसारा, धरम सुनिय नहिँ काना।
तेहि बहु विधि त्रास, देस निकासैं, जो कह बेद-पुराना॥
सो०—बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिँ।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥१८३॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट पर-धन पर-दारा॥
मानहिँ मातु पिता नहिँ देवा। साधुन्ह सन करवावहिँ सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सम प्रानी॥
अतिसय देखि धरम कै हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सरि सिन्धु भार नहिँ मोही। जस मोहि गरुअ एक पर-द्रोही॥
सकल धरम देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता॥
धेनु-रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर-मुनि-झारी॥
निज-सन्ताप सुनायेसि रोई। काहू तेँ कछु काज न होई॥

चवपैया-छन्द।

सुर मुनि गन्धर्बा, मिलि करि सर्बा, गे बिरञ्चि के लोका।
सँग गो-तनु धारी-भूमि बिचारी, परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना, मन अनुमाना, मोरउ कछु न बसाई।
जा करि तैँ दासी, सो अबिनासी, हमरउ तोर सहाई॥२॥
सो०—धरनि धरहि मन धीर, कह बिरञ्चि हरि-पद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भञ्जिहि दारुन बिपति॥१८४॥
बैठे सुर सब करहिँ बिचारा। कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तेँ प्रगट होहिँ मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसहु माहीँ। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीँ॥
अग-जग-मय सब रहित बिरागी। प्रेम तेँ प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥
दो०—सुनि बिरञ्चि मन हरषि तन,—पुलकि नयन बह नीर।

अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मति-धीर ॥१८५॥

छवपैया-छन्द।

जय जय सुर-नायक, जन सुख-दायक, प्रनतपाल भगवन्ता।
गो-द्विज-हितकारी, जय असुरारी, सिन्धु-सुता प्रिय कन्ता॥
पालन सुर धरनी, अद्भुत-करनी, मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला, दीनदयाला, करहु अनुग्रह सोई॥३॥
जय जय अविनासी, सब घट बासी, व्यापक परमानन्दा॥
अविगत गोतीतं, चरित पुनीतं, माया रहित मुकुन्दा॥
जेहि लागि बिरागी, अति अनुरागी, बिगत मोह मुनिवृन्दा।
निसि-बासर ध्यावहिँ, गुन गन गावहिँ, जयति सच्चिदानन्दा॥४॥
जेहि सृष्टि उपाई, त्रिविध बनाई, सङ्ग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी, चिन्त हमारी, जानिय भगति न पूजा॥
जो भव-भय भञ्जन, मुनि-मन रञ्जन, गञ्जन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी, छाड़ि सयानी, सरन सकल-सुर-जूथा॥५॥
सारद स्रुति सेषा, रिषय असेषा, जा कहँ कोउ नहिँ जाना।
जेहि दीन पियारे, बेद पुकारे, द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भव-बारिधि-मन्दर, सब बिधि सुन्दर, गुन-मन्दिर सुख-पुञ्जा।
मुनि सिद्ध सकल सुर, परम भयातुर, नमत नाथ-पद-कञ्जा॥६॥

दो०—जानि सभय सुर-भूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन-गिरा गम्भीर भइ, हरनि सोक-सन्देह॥१८६॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहिँ लागि धरिहउँ नर-बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर-बंस उदारा॥
कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहँ मैँ पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ-कौसल्या—रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर-भूपा॥
तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सुचारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निभय होहु देव समुदाई॥
गगन ब्रह्म-बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा॥

दो०—निज लोकहि बिरञ्चि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर-तनु धरि धरि महि, हरि-पद सेवहु जाइ ॥१८७॥
गये देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहँ बिस्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलम्ब न कीन्हा॥
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल-प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि-तरु-नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥
गिरि कानन जहँ तहँ महि पूरी। रहे निज निज अनीक रुचि रूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहि राखा॥
अवधपुरी रघुकुल-मनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊ॥
धरम-धुरन्धर गुन-निधि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँग-पानी॥
दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि-पद-कमल बिनीत ॥१८८॥
एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥
निज दुख सुख सब गुरुहि सुनायो। कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझायो॥
धरहु धीर होइहहिं सुत-चारी। त्रिभुवन-बिदित भगत-भय-हारी॥
सृङ्गी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चारु कर लीन्हे॥
जो बसिष्ठ कछु हृदय बिचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
दो०—तब अदृश्य भये पावक, सकल सभहि समुझाइ।
परमानन्द मगन नृप, हरप न हृदय समाइ ॥१८९॥
तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥
अरध-भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥
एहि बिधि गर्भ-सहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहि आये। सकल लोक सुख-सम्पति छाये॥
मन्दिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा—सील-तेज की खानी॥

सुख-जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥
दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरष-जुत, राम-जनम सुख-मूल॥१९०॥
नवमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि-प्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन-काल लोक-विस्रामा॥
सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर सन्तन्ह मन चाऊ॥
बनकुसुमित गिरि-गन-मनिआरा। स्रवहिं सकल सरितामृत-धारा॥
सो अवसर बिरञ्चि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल सङ्कुल-सुर-जूथा। गावहिं गुन गन्धर्व-बरूथा॥
बरषहि सुमन सुअञ्जलि साजी। गहगहि गगन दुन्दुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग-मुनि—देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥
दो०—सुर-समूह बिनती करि, पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल-लोक-बिस्राम॥१९१॥

चवपैया-छन्द।

भये प्रगट कृपाला, दीनदयाला, कौसल्या-हितकारी।
हरषित महँतारी, मुनि-मन-हारी, अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामं, तनु-घन-स्यामं, निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला, नयन बिसाला, सोभा-सिन्धु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी, अस्तुति तोरी, केहि बिधि करउँ अनन्ता।
माया-गुन-ज्ञाना,-तीत अमाना, वेद पुरान भनन्ता॥
करुना-सुख-सागर, सब गुन आगर, जेहि गावहिं स्रुति सन्ता।
सो मम-हित-लागी, जन-अनुरागी, भयउ प्रगट श्रीकन्ता॥

त्रिभङ्गी-छन्द।

ब्रह्मांड निकाया, निर्मित-माया, रोम रोम प्रति, वेद कहै।
मम उर सो बासी, यह उपहासी, सुनत धीर मति, थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत बिधि, कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई, मातु बुझाई, जेहि प्रकार सुत, प्रेम लहै॥

चवपैया-छन्द।

माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।

कीजिय सिसुलीला, अति प्रिय-सीला, यह सुख परम अनूपा ॥
सुन वचन सुजाना, रोदन ठाना, होइ बालक सुर-भूपा ॥
यह चरित जे गावहिँ, हरि-पद पावहिँ, ते न परहिँ भव-कूपा ॥४॥
दो०—विप्र-धेनु-सुर-सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज-इच्छा निर्मित-तनु, माया-गुन-गोपार ॥१६२॥
सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। सम्भ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी ॥
दसरथ पुत्र-जन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना ॥
परम-प्रेम-मन पुलक-सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥
जा कर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानन्द-पूरि-मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥
गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आये द्विजन्ह सहित नृप-द्वारा ॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप-रासि गुन कहि न सिराई ॥
दो०—तब नन्दीमुख स्राध करि, जात-करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥१६३॥
ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा ॥
सुमनबृष्टि अकास तेँ होई। ब्रह्मानन्द मगन सब लोई ॥
वृन्द वृन्द मिलि चलीँ लोगाई। सहज सिँगार किये उठि धाई ॥
कनक-कलस मङ्गल भरि थारा। गावत पैठहिँ भूप-दुआरा ॥
करि आरती निछावरि करहीँ। बार बार सिसु चरनन्हि परहीँ ॥
मागध सूत बन्दि-गन गायक। पावन गुन गावहिँ रघुनायक ॥
सरवस-दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहिँ ताहू ॥
मृगमद-चन्दन-कुङ्कुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा ॥
दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रगटे सुखमा-कन्द।
हरषवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि-नर-बृन्द ॥१६४॥
कैकय-सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर-सुत जनमत भइँ ओऊ ॥
वह सुख सम्पति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा ॥
अवधपुरी सोहइ यहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती ॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी ॥

अगर-धूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मन्दिर-मनि-समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इन्दु उदारा॥
भवन बेद-धुनि अति मृदुबानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥
कौतुक देखि पतङ्ग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥
दो०—मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ, निसा कवनि विधि होइ॥१९५॥
यह रहस्य काहू नहिँ जाना। दिन-मनि चले करतगुन गाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥
औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काक भुसुंडि सङ्ग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहिँ कोऊ॥
परमानन्द प्रेम-सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिँ मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥
तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा॥
दो०—मन सन्तोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिँ असीस।
सकल तनय चीरजीवहु, तुलसिदास के ईस॥१९६॥
कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती॥
नाम-करन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि-ज्ञानी॥
करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥
जो आनन्द-सिन्धु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख-धाम राम अस नामा। अखिल-लोक दायक बिश्रामा॥
बिस्व-भरन-पोषन कर जोई। ता कर नाम भरत अस होई॥
जा के सुमिरन ते रिपु-नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥
दो०—लच्छनधाम राम-प्रिय, सकल-जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखिय, लछिमन नाम उदार॥१९७॥
धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। बेद-तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि-धन जन-सरबस सिव-प्राना। बालकेलि-रस-तेहि सुख माना॥
बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम-चरन-रति मानी॥

भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छवि जननी तृन तोरी॥
चारिउ सील-रूप-गुन धामा। तदपि अधिक सुख-सागर-रामा॥
हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहुँ उछङ्ग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना॥
दो०—व्यापक ब्रह्म निरञ्जन, निर्गुन विगत विनोद॥
सो अज प्रेम-भगत-बस, कौसल्या के गोद॥१६८॥
कामकोटि-छवि स्याम सरीरा। नीलकञ्ज वारिद गम्भीरा॥
अरुन-चरन-पङ्कज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अङ्कुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किङ्किनी उदर त्रय रेखा। नाभि गंभीर जान जेहि देखा॥
भुज विशाल भूषन जुत भूरी। हिय हरि-नख अति सोभा रूरी॥
उर मनि-हार-पदिक की सोभा। विप्र चरन देखत मन लोभा॥
कम्बु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन-छवि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनइ पारे॥
सुन्दर स्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुञ्चित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु-पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि स्रुति सेखा। सो जानहिं सपनेहुँ जिन्ह देखा॥
दो०—सुख सन्दोह मोह पर, ज्ञान-गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेम-बस, कर सिसु चरित पुनीत॥१६६॥
एहि विधि राम जगत-पितु-माता। कोसलपुर बासिन्ह सुख दाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह कीयह गति प्रगट भवानी॥
रघुपति-बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव-बन्धन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥
भृकुटि-बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिय कहु काही॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥
एहि बिधि सिसु-बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगर बासिन्ह सुख दीन्हा॥
लेइ उछङ्ग कबहुँक हलरावे। कबहुँ पालने घालि झुलावे॥

दो०—प्रेम मगन कौसल्या, निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह-बस माता, बाल-चरित कर गान ॥२००॥

एक बार जननी अन्हवाये। करि सिँगार पलना पौढ़ाये ॥
निजकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना ॥
करि पूजा नैवेद चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई ॥
गइ जननी सिसु पहिँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कम्प मन धीर न होई ॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा ॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥

दो०—देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥२०१॥

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन ॥
काल करम गुन ज्ञान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही ॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरननि्ह सिर नावा ॥
बिसमयवन्त देखि महतारी। भये बहुरि सिसु रूप खरारी ॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत-पिता मैं सुत करि जाना ॥
हरि जननी बहु बिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ॥

दो०—बार बार कौसल्या, बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापइ, प्रभु मोहि माया तोरि ॥२०२॥

बाल चरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा ॥
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई ॥
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥
मन-क्रम-बचन अगोचर जोई। दसरथ-अजिर बिचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिँ आवत तजि बाल-समाजा ॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिँ पराई ॥

निगम नेति सिव अन्त न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा॥
धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥
दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि-ओदन लपटाइ॥२०३॥
बालचरित अति सरल सुहाये। सारद सेष सम्भु स्रुति गाये॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिँ राता। ते जन बञ्चित किये बिधाता॥
भये कुमार जबहिँ सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु-पितु-माता॥
गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन-सीला। खेलहिँ खेल सकल नृप-लीला॥
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिँ सब लोग लुगाई॥
दो०—कोसलपुर-बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तेँ प्रिय लागत, सब कहुँ राम कृपाल॥२०४॥
बन्धु सखा संग लेहिँ बोलाई। बन मृगया नित खेलहिँ जाई॥
पावन-मृग मारहिँ जिय जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिँ आनी॥
जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अज्ञा अनुसरहीं॥
जेहि बिधि सुखी होहिँ पुर लोगा। करहिँ कृपानिधि सोइ सञ्जोगा॥
बेद पुरान सुनहिँ मन लाई। आपु कहहिँ अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिँ माथा॥
आयसु माँगि करहिँ पुर-काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥
दो०—ब्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत-हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप॥२०५॥
यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिल कथा सुनहु मन लाई॥
बिस्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहि बिपिन सुभ आस्रम जानी॥
जहँ जप जोग जज्ञ मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जज्ञ निसाचर धावहिँ। करहि उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥
गाधि-तनय मन चिन्ता ब्यापी। हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी॥

तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि-भारा॥
यहु मिस देखउँ पद जाई। करि विनती आनउँ दोउ भाई॥
ज्ञान विराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

दो०—बहु विधि करत मनोरथ, जात लागि नहिँ बार।
करि मज्जन सरजू-जल, गये भूप-दरबार॥२०६॥

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लेइ बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहि दूजा॥
विविध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा॥
पुनि चरनन्हि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भये मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥
तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउ बीरा॥
असुर समूह सतावहिँ मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

दो०—देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं, इन्ह कहँ अति कल्यान॥२०७॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय-कम्प मुख-दुति-कुम्हिलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिँ कहेउ बिचारी॥
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सरबस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुतप्रिय मोहि प्रान कि नाँई। राम देत नहिँ बनइ गोसाँई॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा॥
सुनि नृप-गिरा प्रेम-रस-सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी॥
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप सन्देह नास कहँ पावा॥
अति आदर दोउ तनय बोलाये। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाये॥
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिँ कोऊ॥

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस॥२०८॥

सो०—पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिन्धु मति धीर, अखिल-विस्व कारन करन ॥२०८॥
अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलद तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। बिस्वामित्र महा निधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्य-देव मैं जाना। मोहि हित पिता तजेउ भगवाना॥
चले जात मुनि दीन्ह दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज-पद दीन्हा॥
तब रिषि निज-नाथहि जिय चीन्ही। बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्ही॥
जा तें लाग न छुधा पिपासा। अतुलित-बल तन तेज प्रकासा॥
दो०—आयुध सर्ब समर्पि कै, प्रभु निज आस्रम आनि।
कन्द मूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि ॥२०९॥
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जज्ञ करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥
सुनि मारीच निसाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनि-द्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥
पावक-सर सुबाहु पुनि जारा। अनुज निसाचर कटक सँघारा॥
मारि असुर द्विज-निर्भय-कारी। अस्तुति करहिं देव-मुनि-झारी॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥
धनुष-यज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥
आस्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जन्तु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहिं सिला प्रभु देखी। सकल कथा रिषि कही बिसेखी॥
दो०—गौतम-नारि साप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन-कमल-रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर ॥२१०॥

त्रिभङ्गी-छन्द।

परसत पद-पावन, सोक नसावन, प्रगट भई तप-पुञ्ज सही।
देखत रघुनायक, जन-सुख-दायक, सनमुख होइ कर-जोरि रही॥

अति प्रेम अधीरा, पुलक-सरीरा, मुख नहिँ आवइ, बचन कही ।
अतिसय बड़भागी, चरनन्हि लागी, जुगल नयन जल,-धार बही ॥
धीरज मन कीन्हा, प्रभु कहँ चीन्हा, रघुपति कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी, अस्तुति ठानी, ज्ञान-गम्य जय, रघुराई ॥
मैं नारि अपावन, प्रभु जग-पावन, रावन-रिपु जन,-सुखदाई ।
राजीव-बिलोचन, भव-भय-मोचन, पाहि पाहि सरनहिँ आई ॥३॥
मुनि साप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा, परम अनुग्रह, मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन, हरि भव-मोचन, इहइ लाभ सङ्कर जाना ॥
बिनती प्रभु मोरी, मैं मति भोरी, नाथ न बर माँगउँ आना ॥
पद-कमल-परागा, रस अनुरागा, मम मन मधुप करइ पाना ॥
जेहि पद सुरसरिता, परम पुनीता, प्रगट भई सिव,-सीस धरी ।
सोइ पद-पङ्कज, जेहि पूजत अज, मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥
एहि भाँति सिधारी, गौतम नारी, बार बार हरि, चरन परी ।
जो अति मन भावा, सो बर पावा, गइ पतिलोक अनन्द भरी ॥

दो०—अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारन रहित दयाल ।
तुलसिदास सठ ताहि भजु, छाड़ि कपट जञ्जाल ॥२११॥

चले राम लछिमन मुनि सङ्गा । गये जहाँ जग-पावनि गङ्गा ॥
गाधि सूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये । बिबिध दान महिदेवन्ह पाये ॥
हरषि चले मुनि-बृन्द-सुहाया । बेगि बिदेह-नगर नियराया ॥
पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेखी ॥
बापी कूप सरित सर नाना । सलिल सुधा-सम मनि-सोपाना ॥
गुञ्जत मञ्जु मत्त-रस भृङ्गा । कूजत कल बहु बरन बिहङ्गा ॥
बरन बरन बिकसे बन जाता । त्रिबिध समीर सदा सुख-दाता ॥

दो०—सुमन बाटिका बाग बन, बिपुल बिहङ्ग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास ॥२१२॥

बनइ न बरनत नगर निकाई । जहाँ जाइ मन तहइँ लोभाई ॥
चारु बजार बिचित्र अँबारी । मनि मय जनु बिधि स्वकर संवारी ॥
धनिक-बनिक बर धनद समाना । बैठे सकल बस्तु लेइ नाना ॥

चौहट सुन्दर गली सुहाई। सन्तत रहहिँ सुगन्ध सिंचाई॥
मङ्गल-मय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर-नारि सुभग सुचि सन्ता। धरम सील ज्ञानी गुनवन्ता॥
अति अनूप जहँ जनक-निवासू। थिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥
दो०—धवल-धाम मनि-पुरट-पट सुघटित नाना भाँति।
सिय-निवास सुन्दर-सदन, सोभा किमि कहि जाति॥२१३॥
सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिसाल बाजि-गज-साला। हय-गय-रथ-सङ्कुल सब काला॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना॥
भलेहि नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनि-वृन्द समेता॥
बिस्वामित्र महामुनि आये। समाचार मिथिलापति पाये॥
दो०—सङ्ग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर बर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भाँति॥२१४॥
कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्र-वृन्द सब सादर वन्दे। जानि भाग्य बड़ राउ अनन्दे॥
कुसल प्रस्न कहि बारहिँ बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आये दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई॥
स्याम गौर मृदु वयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व-चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आये। बिस्वामित्र निकट बैठाये॥
भये सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह बिदेह बिसेखी॥
दो०—प्रेम मगन मन जानि नृप, करि बिबेक धरि धीर।
बोलेउ मुनि-पद नाइ सिर, गदगद गिरा गंभीर॥२१५॥
कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल-तिलक कि नृपकुल-पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

सहज बिराग-रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा॥
ता तें प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म-सुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥
ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। मन मुसकाहिं राम सुनि बानी॥
रघुकुल-मनि दसरथ के जाये। मम हित लागि नरेस पठाये॥
दो०—राम लखन दोउ बन्धु बर, रूप-सील बल धाम।
मख राखेउ सब साखि जग, जिते असुर संग्राम॥२१६॥
मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँद दाता॥
इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म-जीव इव सहज सनेहू॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लिवाइ नगर अवनीसू॥
सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहाँ बास लेइ दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥
दो०—रिषय सङ्ग रघुबंस-मनि, करि भोजन बिस्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि जाम॥२१७॥
लखन हृदय लालसा बिसेखी। जाइ जनकपुर आइय देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥
राम अनुज मन की गति जानी। भगतबछलता हिय हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुसासन पाई॥
नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावउँ। नगर देखाइ तुरत लेइ आवउँ॥
सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम-सेतु-पालक तुम्ह ताता। प्रेम-बिबस सेवक-सुख-दाता॥
दो०—जाइ देखि आवहु नगर, सुख-निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन, सुन्दर बदन देखाइ॥२१८॥
मुनि-पद-कमल बन्दि दोउ भ्राता। चले लोक-लोचन सुख-दाता॥

बालक-वृन्द देखि अति सोभा। लगे सङ्ग लोचन मन लोभा॥
पीत-बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचन्दन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥
केहरि-कन्धर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग-मनि-माला॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन-मयङ्क ताप त्रय मोचन॥
कानन्हि कनक-फूल छवि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं॥
चितवनि चारु भ्रिकुटि वर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाकी॥
दो०—रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुञ्चित केस।
नख-सिख सुन्दर बन्धु दोउ, सोभा सकल सुदेस॥२१६॥
देखन नगर भूप-सुत आये। समाचार पुरबासिन्ह पाये॥
धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रङ्क बिधि लूटन लागी॥
निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिँ सुखी लोचन फल पाई॥
जुबती भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिँ राम रूप अनुरागीँ॥
कहहिँ परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनियतु नाहीं॥
बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट-वेष . मुख-पञ्च पुरारी॥
अपर देव अस कोउ न आही। यह छवि सखी पटतरिय जाही॥
दो०—बय-किसोर सुखमा-सदन, स्याम गौर सुख-धाम।
अङ्ग अङ्ग पर वारियहि, कोटि कोटि सत काम॥२२०॥
कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥
ये दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल-मरालन्ह के कल जोटा॥
मुनि-कौशिक-मख के रखवारे। जिन्ह रन-अजिर निसाचर मारे॥
स्याम-गात कल-कञ्ज-बिलोचन। जो मारीच-सुभुज-मद मोचन॥
कौसल्या-सुत सो सुख खानी। नाम राम धनुसायक-पानी॥
गौर किसोर वेष वर काछे। कर-सर-चाप राम के पाछे॥
लछिमन नाम राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥
दो०—बिप्र काज करि बन्धु दोउ, मग मुनि-बधू उधारि।
आये देखन चाप-मख, सुनि हरषीं सब नारि॥२२१॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोग जानकिहि यह बर अहई॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिवाहू॥
कोउ कह ये भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परन्तु पन राउ न तजई। बिधिबस हठि अबिबेकहि भजई॥
कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिय उचित फलदाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बर एहू। नाहिन आलि इहाँ सन्देहू॥
जौं बिधि-बस अस बनइ सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू॥
सखि हमरे आरति अति ता ते। कबहुँक ये आवहिं एहि नाते॥

दो०—नाहि त हम कहँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि।
यह सङ्घट तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि॥२२२॥

बोली अपर कहेहु सखि नीका। एहि बिवाह अति हित सबही का॥
कोउ कह सङ्कर चाप कठोरा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा॥
सब असमञ्जस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी॥
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं॥
परसि जासु पद-पङ्कज धूरी। तरी अहिल्या कृत-अघ-भूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिव-धनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिय न भोरे॥
जेहि बिरञ्चि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बर रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी॥

दो०—हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि-बृन्द।
जाहिं जहाँ जहँ बन्धु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द॥२२३॥

पुर पूरब-दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनु-मख हित भूमि बनाई॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥
चहुँ दिसि कञ्चन मञ्च बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मञ्च मंडली बिलासा॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ आई॥
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाये। धवल धाम बहु बरन बनाये॥
जहँ बैठे देखहिं सब नारी। जथाजोग निज-कुल अनुहारी॥
पुर-बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना॥

दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेम बस, परसि मनोहर गात।

तन पुलकहिँ अति हरप हिय, देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥
सिसु सब राम प्रेम बस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिँ बोलाई। सहित सनेह जाहिँ दोउ भाई॥
राम देखावहिँ अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेप महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुप-मख-साला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीँ। जानि बिलम्ब त्रास मन माहीँ॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाव देखावत सोई॥
कहि बातैँ मृदु मधुर सुहाई। किये बिदा बालक बरिआई॥
दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।

गुरु-पद-पङ्कज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥
निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबही सन्ध्या-बन्दन कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
ते दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुरु-पद-पदुम पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुबर जाय सयन तब कीन्ही॥
चाँपत चरन लखन उर लाये। सभय सप्रेम परम सचु पाये॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद-जलजाता॥
दो०—उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि कान।

गुरु तेँ पहिलेहि जगतपति, जागे राम सुजान ॥२२६॥
सकल सौच करि जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये॥
समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप बाग बर देखेउ जाई। जहँ बसन्त-रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव-पल्लव फल सुमन सुहाये। निज-सम्पति सुर-रूख लजाये॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहँग नचत कल मोरा॥
मध्य बाग सर सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिल सर-सज बहु रङ्गा। जल-खग कूजत गुञ्जत भृङ्गा॥

दो०—बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम-रम्य आराम यह, जो रामहिँ सुख देत ॥२२७॥
चहुँ दिसि चितइ पूछि माली गन। लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा-पूजन जननि पठाई ॥
सङ्ग सखी सब सुभग सयानी। गावहिँ गीत मनोहर बानी ॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा ॥
मज्जन करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज-अनुरूप सुभग बर माँगा ॥
एक सखी सिय सङ्ग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई ॥
तेहि दोउ बन्धु बिलोके जाई। प्रेम-बिबस सीता पहिँ आई ॥
दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक-गात जल-नैन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिँ सब मृदु बैन ॥२२८॥
देखन बाग कुँअर दुइ आये। बय-किसोर सब भाँति सुहाये ॥
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥
सुनि हरषीँ सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी ॥
एक कहइ नृप सुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आये काली ॥
जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी ॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखियहि देखन जोगू ॥
तासु बचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥
दो०—सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥२२९॥
कङ्कन किङ्किनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सिय मुख ससि भये नयन चकोरा ॥
भये बिलोचन चारु अचञ्चल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगञ्चल ॥
देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा ॥
जनु बिरञ्चि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई ॥

सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहि पटतरउँ बिदेह-कुमारी ॥

दो०—सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि ।
बोले सुचि-मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

तात जनक-तनया यह सोई । धनुष-जग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखी लेइ आई । करत प्रकास फिरइ फुलवाई ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
सो सब कारन जान बिधाता । फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पग धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहुँ पर-नारि न हेरी ॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं परतिय मन दीठी ॥
मङ्गन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नर बर थोरे जग माहीं ॥

दो०—करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान ।
मुख-सरोजमकरन्द-छबि, करइ मधुप इव पान ॥२३१॥

चितवतचकितचहूँ दिसि सीता । कहँ गये नृप-किसोर मन चिन्ता ॥
जहँ बिलोक मृग-सावक नैनी । जनु तहँ बरसिकमल-सित-स्रेनी ॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाये । स्यामल गौर किसोर सुहाये ॥
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधिपहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छबि देखे । पलकन्हिहूँ परिहरी निमेखे ॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी । सरद-ससिहिजनुचितव चकोरी ॥
लोचन मग रामहिं उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
जब सियसखिन्हप्रेम-बस जानी । कहि न सकहिं कछुमन सकुचानी ॥

दो०—लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमलबिधु, जलद-पटल बिलगाइ ॥२३२॥

सोभा सींव सुभग दोउ बीरा । नील-पीत-जलजात सरीरा ॥
मोर-पङ्ख सिर सोहत नीके । गुच्छ बीचबिचकुसुम-कलीके ॥
भाल तिलक स्रम-बिन्दु सुहाये । स्रवन सुभग भूषन छबि छाये ॥
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे । नव-सरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला । हास बिलास लेत मन मोला ॥
मुख-छबि कहि न जाइमोहिपाहीं । जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥

उर-मनि-माल कम्बु कल ग्रीवाँ । काम-कलभ-कर भुज बल सींवाँ ॥
सुमन समेत बाम कर दोना । साँवर कुँअर सखी सुठि लोना ॥
दो०—केहरि-कटि पट-पीत-धर, सुखमा-सील-निधान ।
देखि भानुकुल-भूषनहिँ, बिसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥
धरि धीरज एक आलि सयानी । सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप-किसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे । सनमुख दोउ रघु सिंघ निहारे ॥
नख-सिख देखि राम कै सोभा । सुमिरि पिता पन मन अति छोभा ॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भयउ गहरु सब कहहिँ सभीता ॥
पुनि आउब एहि बिरियाँ काली । अस कहि मन बिहँसी एक आली ॥
गूढ़-गिरा सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलम्ब मातु भय मानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आनी । फिरी अपनपौ पितु बस जानी ॥
दो०—देखन-मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥२३४॥
जानि कठिन सिव चाप बिसूरति । चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख-सनेह-सोभा-गुन खानी ॥
परम-प्रेम-मय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्र भीतर लिखि लीन्ही ॥
गई भवानी भवन बहोरी । बन्दि चरन बोली कर जोरी ॥
जय जय गिरि-बर-राज किसोरी । जय महेस-मुख-चन्द चकोरी ॥
जय गज-बदन षडानन-माता । जगत-जननि दामिनि-दुति गाता ॥
नहिँ तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव बेद नहिँ जाना ॥
भव-भव बिभव-पराभव कारिनि । बिस्व-बिमोहनि स्वबस-बिहारिनि ॥
दो०—पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिँ कहि, सहस सारदा सेख ॥२३५॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी । बर-दायिनि त्रिपुरारि पियारी ॥
देबि पूजि पद-कमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहिँ सुखारे ॥
मोर मनोरथ जानहु नीके । बसहु सदा उर-पुर सबही के ॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही । अस कहि चरन गहे बैदेही ॥
बिनय प्रेम-बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ॥

सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोली गौरि हरष हिय भरेऊ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन-कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साँचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राँचा॥
छन्द-मन जाहि राचेउ मिलिहि सो बर, सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय, सहित हिय हरषित अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि, मुदित मन मन्दिर चली॥१८॥
सो०—जानि गौरि अनुकूल, सिय-हियहिरष न जाइ कहि।
मञ्जुल-मङ्गल-मूल, बाम अङ्ग फरकन लगे॥२३६॥
हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआछल नाहीं॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहु तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे॥
करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
बिगत-दिवस गुरु आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई॥
प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सिय-मुख सरिस देखिसुख पावा॥
बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥
दो०—जनम-सिन्धु पुनि बन्धु-बिष, दिन-मलीन सकलङ्क।
सिय-मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क॥२३७॥
घटइ बढ़इ विरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज सन्धिहि पाई॥
कोक सोक-प्रद पङ्कज-द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥
वैदेही-मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥
सिय-मुख-छवि-बिधुब्याज बखानी। गुरु पहि चले निसा बड़ि जानी॥
करि मुनि-चरन-सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिस्रामा॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बन्धु बिलोकि कहन अस लागे॥
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पङ्कज-कोक-लोक सुखदाता॥
बोले लखन जोरि जुग पानी। प्रभु-प्रभाव-सूचक मृदु बानी॥
दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद, उडुगन जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बल हीन॥२३८॥

नृप सब नखत करहिं उँजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल-कोक-मधुकर-खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा॥
रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिखाया॥
तव-भुज-बल-महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥
बन्धु-बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरु पहिँ आये। चरन-सरोज सुभग सिर नाये॥
सतानन्द तब जनक बोलाये। कौसिक-मुनि पहिँ तुरत पठाये॥
जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई॥
दो०—सतानन्द पद बन्दि प्रभु, बैठे गुरु पहिँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठयउ जनक बोलाइ॥२३९॥
सीय-स्वयम्बर देखिय जाई। ईस काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जस भाजन सोई। नाथ कृपा तब जा पर होई॥
हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्ह असीस सबहि सुख मानी॥
पुनि मुनि-बृन्द-समेत कृपाला। देखन चले धनुष-मख-साला॥
रङ्गभूमि आये दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह-काज बिसारी। बाल जुवान जरठ नर नारी॥
देखी जनक भीर भइ भारी। सुचि सेवक सब लिये हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिँ जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥
दो०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥२४०॥
राजकुँअर तेहि अवसर आये। मनहु मनोहरता तन छाये॥
गुन-सागर नागर बर बीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा॥
राज-समाज बिराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग बिधु पूरे॥
जिन्ह कै रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी॥
देखहिँ भूप महा-रन-धीरा। मनहुँ बीररस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल-छोनिप बेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥

पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नर-भूषन लोचन सुखदाई॥
दो०—नारि बिलोकहिँ हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सृङ्गार धरि, मूरति परम अनूप॥२४१॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा। बहु मुख-कर-पग-लोचन-सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिँ कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिँ जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिँ रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी॥
जोगिन्ह परम-तत्व-मय भासा। सान्त-सुद्ध-सम सहज प्रकासा॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख-दाता॥
रामहिँ चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिँ कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कबि कोऊ॥
जेहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ॥
दो०—राजत राज-समाज महँ, कोसलराज—किसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तनु, बिस्व-बिलोचन चोर॥२४२॥
सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि-काम उपमा लघु सोऊ॥
सरदचन्द्र-निन्दक मुख नीके। नीरज-नयन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार-मद-हरनी। भावति हृदय जाति नहिँ बरनी॥
कल-कपोल-स्रुति-कुंडल-लोला। चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला॥
कुमुदबन्धु-कर-निन्दक हासा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई। कुसुम-कली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कम्बु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवाँ॥
दो०—कुञ्जरमनि-कंठा-कलित, उरन्हि तुलसिका-माल।
वृषभ-कन्ध केहरि-ठवनि, बल-निधि बाहु बिसाल॥२४३॥
कटि तूनीर पीत-पट बाँधे। कर-सर धनुष-बाम-बर काँधे॥
पीत-जग्यउपवीत सोहाये। नख-सिख मञ्जु महाछबि छाये॥
देखि लोग सब भये सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि-पद-कमल गहे तब जाई॥
करि बिनती निज कथा सुनाई। रङ्गअवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिँ कुँवर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ॥

निज निज रुख रामहिँ सब देखा। कोउ न जान कछु चरित बिसेखा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ॥
दो०—सब मञ्चन्ह तेँ मञ्च एक, सुन्दर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ, बैठारे महिपाल॥२४४॥
प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भये तारे॥
अस प्रतीति सब के मन माहीँ। राम चाप तोरब सक नाहीँ॥
बिनु भञ्जेहु भव-धनुष बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गँवाई॥
बिहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अन्ध अभिमानी॥
तोरेहु धनुष ब्याह अवगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बियाहा॥
एक बार कालहु किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥
सो०—सीय बियाहब राम, गरब दूरि करि नृपन्ह को।
जीति को सक सङ्ग्राम, दसरथ के रन-बाँकुरे॥२४५॥
बृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन-मोदकन्हि कि भूख बताई॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिय सीता॥
जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
सुन्दर सुखद सकल-गुन-रासी। ये दोउ बन्धु सम्भु उर-बासी॥
सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृग-जल निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम-फल पावा॥
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिँ सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिँ सुमन करहिँ कल गाना॥
दो०—जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लेवाइ॥२४६॥
सिय सोभा नहिँ जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप-गुन-खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अङ्ग अनुरागी॥
सीय बरनि तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई॥
जौँ पटतरिय तीय महँ सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा-मुखर तन-अरध-भवानी। रति अति दुखित अतनि पति जानी॥

बिष-बारुनी-बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छबि-सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई॥
सोभा-रजु मन्दर-सिङ्गारू। मथइ पानि पङ्कज निज मारू॥
दो०—एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता-सुख-मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिँ सीय समतूल॥२४७॥
चलीं सङ्ग लइ सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥
सोह नवल-तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥
भूषन सकल सुदेस सुहाये। अङ्ग अङ्ग रचि सखिन्ह बनाये॥
रङ्गभूमि जब सिय पग धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥
हरषि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥
पानि-सरोज सोह जयमाला। अवचट चितये सकल भुआला॥
सीय चकित चित रामहिँ चाहा। भये मोह-बस सब नर नाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥
दो०—गुरुजन लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि॥
लगी बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहि उर आनि॥२४८॥
राम रूप अरु सिय छबि देखे। नर नारिन्ह परिहरी निमेखे॥
सोचहिँ सकल कहत सकुचाहीँ। बिधि सन बिनय करहिँ मन माहीँ॥
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पन तजि नरनाहू। सीय राम कर करइ बियाहू॥
जग भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अन्तहु उर दाहू॥
एहि लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू॥
तब बन्दीजन जनक बोलाये। बिरदावली कहत चलि आये॥
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा॥
दो०—बोले बन्दी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिँ हम, भुजा उठाइ बिसाल॥२४९॥
नृप-भुजबल बिधु सिव-धनु-राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गँवहिँ सिधारे॥
सोइ पुरारि-कोदंड कठोरा। राज-समाज आजु जेइ तोरा॥
त्रिभुवन-जय-समेत बैदेही। बिनहिँ बिचार बरइ हठि तेही॥

सुनि पन सकल भूप अभिलाखे। भट मानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई॥
तमकि ताकि तकि सिव-धनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं॥
जिन्ह के कछु बिचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहु बल, अधिक अधिक गरुआइ॥ २५०॥

भूप सहस-दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
डगइ न सम्भु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥
सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग सन्यासी॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥
श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा॥

दो०—कुँअरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति-कमनीय।
पावनिहार बिरञ्चि जनु, रचेउ न धनु-दमनीय॥ २५१॥

कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न सङ्कर-चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई॥
अब जनि कोउ माखइ भट मानी। बीर-बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहउ का करऊँ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुइँ भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई॥
जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी॥
माखे लखन कुटिल भइ भौंहैं। रद-पट फरकत नयन रिसौंहैं॥

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम-पद-कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥ २५२॥

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल-मनि जानी॥
सुनहु भानकुल-पङ्कज भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥

जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावउँ॥
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होई। कौतुक करउँ बिलोकिय सोई॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लेइ धावउँ॥
दो०—तोरउँ छत्रकदंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करउँ प्रभु-पद सपथ, कर न धरउँ धनु भाथ॥२५३॥
लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति-सनेह-मय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुरुबचन चरन सिर नावा। हरष बिषाद न कछु उर आवा॥
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि जुवा मृगराज लजाये॥
दो०—उदित उदय-गिरि मञ्च पर, रघुवर बाल-पतङ्ग।
बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन-भृङ्ग॥२५४॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुरु-पद बन्दि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मञ्जु बर कुञ्जर-गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक-पूरि-तन भये सुखारी॥
बन्दि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिव धनु मृनाल की नाँईं। तोरहिं राम गनेस गोसाँईं॥
दो०—रामहिं प्रेम-समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता-मातु सनेह-बस, बचन कहइ बिलखाइ॥२५५॥
सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं॥

धनु टान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुँअर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवन्त लघु गनिय न रानी॥
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा॥
रबिमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥
दो०—मन्त्र परम-लघु जासु बस। बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महा मत्त गजराज कहँ। बस कर अङ्कुस खर्ब॥२५६॥
काम कुसुम-धनु-सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देबि तजिय संसय अस जानी। भञ्जब धनुष राम सुनु रानी॥
सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई॥
गन-नायक बर-दायक देवा। आजु लगे कीन्हिउँ तव सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप-गरुता अति थोरी॥
दो०—देखि देखि रघुबीर छबि, सुर मनाव धरि धीर॥
भरे बिलोचन प्रेम-जल, पुलकावली-सरीर॥२५७॥
नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु-पन सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध-समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु-गात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिय हीरा॥
सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहि सम्भु चाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥
दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल॥२५८॥
गिरा-अलिनि मुख-पङ्कज रोकी। प्रगट न लाज-निसा अवलोकी॥

सोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपिन कर सोना॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीत उर आनी॥
तन मन बचन मोर पन साँचा। रघुपति पद सरोज चित राँचा॥
तौ भगवान सकल उर बासी। करिहहिँ मोहि रघुपति कै दासी॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम पन ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसे॥

दो०—लखन लखेउ रघुबंस-मनि, ताकेउ हर-कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चाप ब्रह्मंड॥ २५९॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
राम चहहिँ सङ्कर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥
चाप समीप राम जब आये। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये॥
सब कर संसय अरु अज्ञानू। मन्द महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर-मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोच जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन-दुख-दावा॥
सम्भु-चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े आइ सब सङ्ग बनाई॥
राम-बाहुबल सिन्धु अपारू। चहत पार नहिँ कोउ कनहारू॥

दो०—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेखि॥२६०॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने॥
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी॥
गुरुहि प्रनाम मनहिँ मन कीन्हा। अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा॥

हरिगीतिका-छन्द।

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि,—बाजि तजि मारग चले।

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि, कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे, सकल बिकल बिचारहीं ॥
कोदंड खंडेउ राम तुलसी, जयति बचन उचारहीं ॥१८॥

सो०—सङ्कर-चाप जहाज, सागर रघुबर बाहु बल ॥
बूड़ सो सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोह-बस ॥२६१॥

प्रभु दोउ चाप-खंड महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे ॥
कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम-बारि अवगाह सुहावन ॥
राम रूप राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना ॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा ॥
बरषहिं सुमन रङ्ग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला ॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष-भङ्ग धुनि जात न जानी।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भञ्जेउ राम सम्भु-धनु भारी ॥

दो०—बन्दी मागध सूत गन, बिरद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय धन मनि चीर ॥२६२॥

झाँझ मृदङ्ग सङ्ख सहनाई। भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई ॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाये। जहँ तहँ जुबतिन्ह मङ्गल गाये ॥
सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥
सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती ॥
रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरक जैसे ॥
सतानन्द तब आयसु दीन्हीं। सीता गवन राम पहिं कीन्ही ॥

दो०—सङ्ग सखी सुन्दर चतुर, गावहिं मङ्गलचार।
गवनी बाल-मराल-गति, सुखमा अङ्ग अपार ॥२६३॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबि-गन-मध्य महाछबि जैसी ॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व-बिजय-सोभा जेहि छाई ॥
तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू ॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिँ छवि अवलोक सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥
सो०—रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरषहिँ सुमन॥
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रवि कुमुद-गन॥२६४॥
पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भये मलिन साधु सब राजे॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिँ असीसा॥
नाचहिँ गावहिँ बिबुध,बधूटी। बार बार कुसुमाञ्जलि छूटी॥
जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करहीं। बन्दी बिरदावलि उच्चरहीं॥
महि पाताल ब्योम जस ब्यापा। राम बरी सिय भञ्जेउ चापा॥
करहिँ आरती पुर-नर-नारी। देहिँ निछावरि बित्त बिसारी॥
सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिङ्गार मनहुँ इक ठोरी॥
सखी कहहिँ प्रभु-पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥
दो०—गौतम-तिय गति सुरति करि, नहिँ परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंस मनि, प्रीति अलौकिक जानि॥२६५॥
तब सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप-बालक दोऊ॥
तोरे धनुष चाँड़ नहिँ सरई। जीवत हमहिँ कुअँरि को बरई॥
जौँ बिदेह कछु करइ सहाई। जीतहु समर-सहित दोउ भाई॥
साधु-भूप बोले सुनि बानी। राज-समाजहि लाज लजानी॥
बल प्रताप बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि सङ्ग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई॥
दो०—देखहु रामहिँ नयन भरि, तजि इर्षा मद कोहु॥
लखन-रोष पावक प्रबल, जानि सलभ जनि होहु॥२६६॥
बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहइ नाग-अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब सम्पदा चहइ सिव-द्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलङ्कता कि कामी लहई॥

हरि-पद-बिमुख सुगति जिमि चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा॥
कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लेवाइ गईं जहँ रानी॥
राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय-सनेह बरनत मन माहीं॥
रानिन्ह सहित सोच बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखन राम-डर बोलि न सकहीं॥
दो०—अरुन नयन भृकुटी-कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त-गज-गन निरखि, सिंह किसोरहि चोप॥२६७॥
खरभर देखि बिकल पुर-नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥
तेहि अवसर सुनि सिव-धनु भङ्गा। आयउ भृगुकुल-कमल-पतङ्गा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस-जटा ससि-बदन सुहावा। रिस-बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
बृषभ कन्ध उर-बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनि-बसन तून दुइ बाँधे। धनु-सर-कर-कुठार-कल-काँधे॥
दो०—सान्त बेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप॥२६८॥
देखत भृगुपति बेष कराला। उठे सकल भय-बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड-प्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आयु खुटानी।
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज ले गईं सयानी॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पद-सरोज मेले दोउ भाई॥
राम लखन दसरथ के ढोटा। दीन्ह असीस देखि भल जोटा॥
रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार-मार-मद मोचन॥
दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोप सरीर॥२६९॥
समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारन महीप सब आये॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप-खंड महि डारे॥

परशुराम आगमन ।

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर-नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय-महँतारी। बिधि अब सवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध-निमेष कलप सम बीता॥

दो०—समय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर॥२७०॥

नाथ सम्भु-धनु भञ्जनिहारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करइ सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई॥
सुनहु राम जेहि सिव-धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। नत मारे जइहैं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने। बोले परसुधरहिं अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू॥

दो०—रे नृप-बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि-धनु, बिदित सकल संसार॥२७१॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाव न मोरा॥
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बाल-ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व-बिदित छत्रिय-कुल द्रोही॥
भुज-बल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु-भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीप-कुमारा॥

दो०—मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीप-किसोर।
गरभन के अरभक दलन, परसु मोर अति घोर॥२७२॥

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महा भट मानी॥

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पाँ परिय तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥
दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महा मुनि धीर॥
सुनि सरोष भृगुबंस-मनि, बोले गिरा गँभीर॥२७३॥
कौसिक सुनहु मन्द यह बालक। कुटिल काल बस निज कुल घालक॥
भानु-बंस—राकेस कलङ्कू। निपट निरङ्कुस अबुध असङ्कू॥
काल-कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा॥
लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनइ पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं सन्तोष तो पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥
दो०—सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
बिद्यमान रन पाइ रिपु, कायर करहिं प्रलाप॥२७४॥
तुम्ह तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बुलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुबादी बालक बध जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाचा। अब यह मरनहार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिय अपराधू। बाल दोष-गुन गनहिं न साधू॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरु-द्रोही॥
उतर देत छाड़उँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहि उरिन होतेउँ स्रम थोरे॥
दो०—गाधि-सूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अय-मय-खाँड़ न ऊख-मय, अजहुँ न बूझ अबूझ॥२७५॥

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा। को नहिँ जान विदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भये नीके। गुरु रिन रहा सोच बड़ जी के॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयउ ब्याज बहु बाढ़ा॥
अब आनिय ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटु-वचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही। विप्र विचारि बचउ नृप-द्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज-देवता घरहिँ के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिँ लखन निवारे॥
दो०—लखन उतर आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुल-भानु॥२७६॥
नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध-मुख करिय न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। तौ कि बराबरि करइ अजाना॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीँ। गुरु पितु मात मोद मन भरहीँ॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी॥
राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख-सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूट-मुख पय-मुख नाहीँ॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीच मीच सम देख न मोही॥
दो०—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिँ, होहिँ विस्वप्रतिकूल॥२७७॥
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहिँ जुरिहि रिसाने। बैठिय होइहहिँ पाय पिराने॥
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिँ जनक डेराहीँ। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीँ॥
थर थर कापहिँ पुर-नर-नारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तनु जरइ होइ बल हानी॥
बोले रामहिँ देइ निहोरा। बचउँ विचारि बन्धु लघु तोरा॥
मन-मलीन तन सुन्दर कैसे। विष-रस-भरा कनक घट जैसे॥
दो०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।

गुरु समीप गवने संकुचि, परिहरि बानी बाम ॥२७८॥
अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहिँ काना॥
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न बिदुष बिदूषहिँ काऊ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप बध बन्ध गोसाँई। मो पर करिय दास की नाँई॥
कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि-नायक सोइ करउँ उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोप करि कीन्हा॥
दो०—गर्भ स्रवहिँ अवनिप-रवनि, सुनि कुठार-गति-घोर।
परसु अछत देखउँ जियत, बैरी भूप किसोर॥२७९॥
बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृप-घाती॥
भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ॥
आजु दया दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहँसि सिर नावा॥
बाउ-कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥
जौं पै कृपा जरहिँ मुनि गाता। क्रोध भये तनु राखु बिधाता॥
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहँसे लखन कहा मनमाहीं। मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥
दो०—परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोध।
सम्भु सरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध॥ २८० ॥
बन्धु कहइ कटु सम्मत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे॥
करु परितोष मोर सङ्ग्रामा। नाहिँ त छाड़ु कहाउब रामा॥
छल तजि करहि समर सिव-द्रोही। बन्धु सहित न त मारउँ तोही॥
भृगुपति बकहिँ कुठार उठाये। मन मुसुकाहिँ राम सिर नाये॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सङ्का सब काहू। बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू॥
राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानिय आपन अनुगामी॥

दो०—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु बिप्र-बर रोस।
बेष बिलोकि कहेसि कछु, बालकहु नहिँ दोस ॥ २८१ ॥
देखि कुठार बान-धनु-धारी। भइ लरिकहि रिस बीर बिचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहिँ न चीन्हा। बंस सुभाउ उतर तेहि दीन्हा ॥
जौँ तुम्ह अवतेहु मुनि की नाँई। पद-रज सिर सिसु धरत गोसाँई ॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय बिप्र उर कृपा घनेरी ॥
हमहिँ तुम्हहिँ सरबरि कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥
देव एक गुन धनुष हमारे। नव गुन परम-पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥
दो०—बार बार मुनि बिप्र बर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि, तहूँ बन्धु सम बाम ॥ २८२ ॥
निपटहि द्विजकरि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही ॥
चाप-स्रुवा सर-आहुति जानू। कोप मोर अति घोर-कृसानू ॥
समिध सेन चतुरङ्ग सुहाई। महा महीप भये पसु आई ॥
मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर-जज्ञ जग कोटिन्ह कीन्हे ॥
मोर प्रभाव बिदित नहिँ तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे ॥
भञ्जेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा ॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
छुअतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना ॥
दो०—जौँ हम निदरहिँ बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भय-बस नावहिँ माथ ॥ २८३ ॥
देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल अधिक होउ बलवाना ॥
जौँ रन हमहिँ पचारइ कोऊ। लरहिँ सुखेन काल किन होऊ ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल-कलङ्क तेहि पावर जाना ॥
कहउँ सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिँ न रन रघुबंसी ॥
बिप्र-बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिँ डेराई ॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर-मति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैँचहु मोर मिटइ सन्देहू ॥

देइ चाप आपुहि चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

दो०—जाना राम प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम अघात ॥२८४॥

जय रघुबंस-बनज-बन भानू। गहन-दनुज-कुल दहन-कृसानू॥
जय सुर-बिप्र-धेनु-हितकारी। जय मद मोह-कोह-भ्रम-हारी॥
बिनय-सील करुना-गुन सागर। जयति बचन-रचना अति नागर॥
सेवक-सुखद सुभग सब अङ्गा। जय सरीर छबि कोटि अनङ्गा॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा-मन्दिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गये बनहिं तप-हेतू॥
अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गँवहिं पराने॥

दो०—देवन्ह दीन्ही दुन्दुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर-नर-नारि सब, मिटा मोह-मय-सूल ॥२८५॥

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मङ्गल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कलकोकिल-बयनी॥
सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जनम दरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदय चकोर-कुमारी॥
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भञ्जेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाँई॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाह चाप आधीना॥
टूटतही धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नारि बिदित सब काहू॥

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा-बंसब्यवहार।
बूझि बिप्र कुल-बृद्ध गुरु, बेद बिदित आचार ॥२८६॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहि बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठये दूत बोलि तेहि काला॥
बहुरि महाजन सकल बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिर नाये॥
हाट बाट मन्दिर सुर-बासा। नगर सँवारहु चारिहु पासा॥
हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाये॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥

पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान-बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बन्दि तिन्ह कीन्ह अरम्भा। बिरचे कनक कदलि के खम्भा॥
दो०—हरित-मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरञ्चि कर भूल॥२८७॥
बेनु हरित-मनि-मय सब कीन्हे। सरल सपरन परहिँ नहिँ चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिँ परइ सपरन सुहाई॥
तेहि के रचि पचि बन्ध बनाये। बिच बिच मुकुता-दाम लगाये॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
किये भृङ्ग बहु रङ्ग बिहङ्गा। गुञ्जहिँ कूजहिँ पवन प्रसङ्गा॥
सुर-प्रतिमा खम्भन्हि गढ़ि काढ़ी। मङ्गल द्रव्य लिये सब ठाढ़ी॥
चौकै भाँति अनेक पुराई। सिन्धुर-मनि-मय सहज सुहाई॥
दो०—सौरभ-पल्लव सुभग सुठि, किये नीलमनि कोरि।
हेम-बौर मरकत घवरि, लसत पाट-मय डोरि॥२८८॥
रचे रुचिर बर बन्दनवारे। मनहुँ मनोभव फन्द सँवारे॥
मङ्गल-कलस अनेक बनाये। ध्वज पताक पट चँवर सुहाये॥
दीप मनोहर मनि-मय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना॥
जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनइ असि मति कवि केही॥
दूलह राम रूप-गुन-सागर। सो बितान तिहुँ लोक उजागर॥
जनक-भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी॥
जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी। तेहिं लघु लाग भवन दस-चारी॥
जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥
दो०—बसइ नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि बर बेष॥
तेहि-पुर कै सोभा कहत, सकुचहिँ सारद सेष॥२८९॥
पहुँचे दूत राम-पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥
भूप-द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिये बोलाई॥
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि लीन्ही॥
बारि-बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥
राम-लखन-उर कर-बर-चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आये भरत सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते पाती आई॥
दो०—कुसल प्रान प्रिय बन्धु दोउ, अहहिँ कहहु केहि देस।
सुनि सनेह-साने-बचन, बाँची बहुरि नरेस॥२९०॥
सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेह समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत के देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी॥
तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीके निज नयन निहारे॥
स्यामल गौर-धरे-धनु भाथा। बय-किसोर कौसिकमुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम-बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥
जा दिन तेँ मुनि गयउ लेवाई। तब तेँ आजु साँचि सुधि पाई॥
कहहु बिदेह कवनि बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने॥
दो०—सुनहु महीपति-मुकुट-मनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लखन जाके तनय, बिस्व-बिभूषन दोउ॥२९१॥
पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुष-सिंह तिहुँ पुर उँजियारे॥
जिन्ह के जस-प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥
तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रबि कि दीप कर लीन्हे॥
सीय-स्वयम्बर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तेँ एका॥
सम्भु-सरासन काहु न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीनि लोक महँ जे भट मानी। सब के सकति सम्भु धनु भानी॥
सकइ उठाइ सरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू॥
जेहि कौतुक सिव-सैल उठावा। सोउ तेहि सभा पराभव पावा॥
दो०—तहाँ राम-रघुबंस-मनि, सुनिय महा-महिपाल।
भञ्जेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पङ्कज-नाल॥२९२॥
सुनि सरोष भृगुनायक आये। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाये॥
देखि राम बल निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा॥
राजन राम अतुल बल जैसे। तेज-निधान लखन पुनि तैसे॥
कम्पहिँ भूप बिलोकत जा के। जिमि गज हरि-किसोर के ताके॥
देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ॥

दूत बचन-रचना प्रिय लागी। प्रेम-प्रताप-बीररस पागी॥
सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूंदहिँ काना। धरम बिचारि सबहि सुख माना॥
दो०—तब उठि भूप बसिष्ठ कह, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बोलाइ॥२९३॥
सुनि बोले गुरु अति सुख पाई। पुन्य-पुरुष कहँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख सम्पति बिनहि बोलाये। धरमसील पहिँ जाहिँ सुभाये॥
तुम्ह गुरु-बिप्र-धेनु-सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥
सुकृती तुम्ह समान जग माहीँ। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीँ॥
तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ का के। राजन राम सरिस सुत जा के॥
बीर बिनीत धरम-ब्रत धारी। गुन-सागर बर बालक चारी॥
तुम्ह कहँ सर्व काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥
दो०—चलहु बेगि सुनि गुरु बचन, भलेहि नाथ सिर नाइ॥
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास देवाइ॥२९४॥
राजा सब रनिवास बोलाई। जनक-पत्रिका बाँचि सुनाई॥
सुनि सन्देस सकल हरषानी। अपर कथा सब भूप बखानी॥
प्रेम-प्रफुल्लित राजहिँ रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी॥
मुदित असीस देहिँ गुरु नारी। अति आनन्द मगन महँतारी॥
लेहिँ परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिँ छाती॥
राम-लखन कै कीरति करनी। बारहि बार भूप-बर बरनी॥
मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाये। रानिन्ह तब महिदेव बोलाये॥
दिये दान आनन्द समेता। चले बिप्र-बर आसिष देता॥
सो०—जाचक लिये हँकारि, दीन्हि निछावरि कोटि बिधि॥
चिरजीवहु सुत चारि, चक्रबर्त्ति दसरत्थ के॥२९५॥
कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाये। लागे घर घर होन बधाये॥
भुवन चारि-दस भरा उछाहू। जनकसुता-रघुबीर बिबाहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग-गृह-गली सँवारन लागे॥

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मङ्गल-मय पावनि॥
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मङ्गल-रचना रची बनाई॥
ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम-बिचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनि-जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥

दो०—मङ्गल मय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथी सींची चतुरसम, चौके चारु पुराइ॥२९६॥

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव-सप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधु-बदनी मृग-सावक-लोचनि। निज-सरूप रति-मान-बिमोचनि॥
गावहिँ मंगल मञ्जुल बानी। सुनि कल-रव कलकंठ लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व-बिमोहन रचेउ बिताना॥
मंगल-द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥
कतहुँ बिरद बन्दी उच्चरहीँ। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीँ॥
गावहिँ सुन्दरि मङ्गल गीता। लै लै नाम राम अरु सीता॥
बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा॥

दो०—सोभा दसरथ भवन कै, को कबि बरनइ पार।
जहाँ सकल-सुर-सीस-मनि, राम लीन्ह अवतार॥२९७॥

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यन्दन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर-बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥
भरत सकल साहनी बोलाये। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥
सुभग सकल सुठि चञ्चल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥
नाना जाति न जाहिँ बखाने। निदरि पवन जनु चहत उड़ाने॥
तिन्ह सब छयल भये असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥
सब सुन्दर सब भूषन-धारी। कर सर चाप तून-कटि-भारी॥

दो०—छरे छबीले छैल सब, सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असि कला प्रबीन॥२९८॥

बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े॥
फेरहिँ चतुर तुरग गति नाना। हरषहिँ सुनि सुनि पनव निसाना॥
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाये। ध्वज पताक मनि भूषन लाये॥

चँवर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु-जान-सोभा अपहरहीं॥
स्यामकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्हि सारथिन्ह जोते॥
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकत मुनि मन मोहे॥
जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाईं॥
अस्त्र सस्त्र सब साज बनाई। रथी सारथिन्ह लिये बोलाई॥
दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहिर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुन्दर सबहि, जो जेहि कारज जात॥२६९॥
कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥
चले मत्त-गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन-घन-राजी॥
बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्र-बरबृन्दा। जनु तनु धरे सकल स्रुति-छन्दा॥
मागध सूत बन्दि गुन गायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनइ पारा॥
चले सकल सेवक-समुदाई। निज निज साज समाज बनाई॥
दो०—सब के उर निर्भर हरष, पूरित पुलक सरीर।
कबहि देखिबइ नयन भरि, राम लखन दोउ बीर॥३००॥
गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ-रव बाजि हँसहिं चहुँ ओरा॥
निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना॥
महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पखान पबारे॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहि नारी। लिये आरती मङ्गल थारी॥
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनन्द न जाइ बखाना॥
तब सुमन्त्र दुइ स्यन्दन साजी। जोते रबि-हय-निन्दक बाजी॥
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने॥
राज-समाज एक रथ साजा। दूसर तेज-पुञ्ज अति भ्राजा॥
दो०—तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ, हरषि चढ़ाइ नरेस।
आपु चढ़े स्यन्दन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेस॥३०१॥
सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुरु संग पुरन्दर जैसे॥
करि कुल-रीति बेद-बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥

सुमिरि राम गुरु आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिँ सुमन सुमङ्गल-दाता॥
भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर-नर-नारि सुमङ्गल गाई। सरस राग बाजहिँ सहनाई॥
घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीँ। सरव करहिँ पायक फहराहीँ॥
करहिँ बिदूषक कौतुक नाना। हास-कुसल कल-गान सुजाना॥
दो०—तुरग नचावहिँ कुँअर बर, अकनि मृदङ्ग निसान।
नागर नट चितवहिँ चकित, डगहिँ न ताल बँधान॥३०२॥
बनइ न बरनत बनी बराता। होहिँ सगुन सुन्दर सुभ-दाता॥
चारा चाष बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मङ्गल कहि देई॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरस सब काहू पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥
लोवा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मङ्गल-गन जनु दीन्हि देखाई।
छेमकरी कह छेम बिसेखी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥
दो०—मङ्गल-मय कल्यान-मय, अभिमत-फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित. भये सगुन एक बार॥३०३॥
मङ्गल सगुन सुगम सब ताके। सगुन-ब्रह्म सुन्दर सुत जाके॥
राम सरिस बर दुलहिनि सीता। समधी दसरथ जनक पुनीता॥
सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे बिरञ्चि हम साँचे॥
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिँ हने निसाना॥
आवत जानि भानु-कुलकेतू। सरितन्हि जनक बँधाये सेतू॥
बीच बीच बर बास बनाये। सुरपुर-सरिस सम्पदा छाये॥
असन सयन बर बसन सुहाये। पावहिँ सब निज निज मन भाये॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मन्दिर भूले॥
दो०—आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान॥३०४॥
कनक कलस कल कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥

भरे सुधा सम सब पकवाने। भांति भाँति नहिं जाहिं बखाने॥
फल अनेक वर बस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहु बिधि जाना॥
मङ्गल सकुन सुगन्ध सुहाये। बहुत भाँति महिपाल पठाये॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥
अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनन्द पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बराती हने निसाना॥
दो०—हरषि परसपर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनन्द समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुवेल॥३०५॥
बरषि सुमन सुर सुन्दरि गावहिं। मुदित देव दुन्दुभी बजावहिं॥
बस्तु सकल राखी नृप आगे। बिनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे॥
प्रेम समेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहँ चले लेवाई॥
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनद धन मद परिहरहीं॥
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा॥
जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥
दो०—सिधिसबसियआयसुअकनि, गईं जहाँ जनवास।
लिये सम्पदा सकल सुख, सुरपुर-भोग-बिलास॥३०६॥
निज निज बास बिलोकि बराती। सुर-सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव-भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनन्द अमाई॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु-दरसन-लालच मन माहीं।
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर सन्तोष बिसेखी॥
हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाये। पुलक-अंग अम्बक जल छाये॥
चले जहाँ दसरथ जनवासे। मनहुँ सरोवर तके पियासे॥
दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुख-सिन्धु महँ, चले थाह सी लेत॥ ३०७॥

मुनिहिं दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद-रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुख न समाई॥
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक-सरीर प्रान जनु भेंटे॥
पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये॥
बिप्र-बृन्द बन्दे दुहुँ भाई। मनभावती असीसें पाई॥
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम-परिपूरित-गाता॥
दो०—पुरजन परिजन जातिजन, जाचक मन्त्री मीत।
मिले जथा बिधि सबहिं प्रभु, परम कृपाल बिनीत॥ ३०८॥
रामहिं देखि बरात जुड़ानी। प्रीति की रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन-धरमादिक तनु धारी॥
सुतन्ह समेत दसरथहिं देखी। मुदित नगर-नर-नारि बिसेखी॥
सुमन बरषि सुर हनहिं निसाना। नाक-नटी नाचहिं करि गाना॥
सतानन्द अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बन्दीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना॥
प्रथम बरात लगन तें आई। ता ते पुर प्रमोद अधिकाई॥
ब्रह्मानन्द लोग सब लहहीं। बढ़हु दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥
दो०—राम सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर-नारि-समाज॥ ३०९॥
जनक-सुकृत-मूरति बैदेही। दसरथ-सुकृत राम धरे देही॥
इन्ह सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन्ह समान फल लाधे॥
इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीँ। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीँ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भये जग जनमि जनकपुर-बासी॥
जिन्ह जानकी-राम-छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेखी॥
पुनि देखब रघुबीर-बिबाहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर कोकिल-बयनी। एहि बिबाह बड़ लाभ सुनयनी॥
बड़े भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥
दो०—बारहि बार सनेह-बस, जनक बोलाउब सीय।

लोग आइहहिं बन्धु दोउ, कोटि काम कमनीय ॥३१०॥
बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥
तब तब राम लखनहिं निहारी। होइहहिं सब पुर-लोग सुखारी॥
सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसइ भूप सङ्ग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अङ्ग सुहाये। ते सब कहहिं देखि जे आये॥
कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरञ्चि निज हाथ-सँवारे॥
भरत रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥
लखन सत्रुसूदन एक रूपा। नख-सिख तें सब अङ्ग अनूपा॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥

हरिगीतका-छन्द।

उपमा न कोउ कह दासतुलसी, कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल-बिनय-बिद्या-सील-सोभा,-सिन्धु इन्ह सम एइ अहैं॥
पुर-नारि सकल पसारि अञ्चल, बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहियहु चारिउ भाइ एहि पुर, हम सुमङ्गल गावहीं॥२०॥

सो०—कहहिं परसपर नारि, बारि-बिलोचन पुलक-तन।
सखि सब करब पुरारि, पुन्य-पयोनिधि भूप दोउ॥ ३११॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीय-स्वयम्बर आये। देखि बन्धु सब तिन्ह सुख पाये॥
कहत राम जस बिसद बिसाला। निज निज भवन गये महिपाला॥
गये बीति कछु दिन एहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥
मङ्गल मूल लगन-दिन आवा। हिम-रितु अगहन मास सुहावा॥
ग्रह तिथि नखत जोग बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥
पठइ दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी अपर बिधाता॥

दो०—धेनुधूरि-बेला बिमल, सकल सुमङ्गल-मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल॥ ३१२॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलम्ब कर कारन काहा॥
सतानन्द तब सचिव बोलाये। मङ्गल सकल साजि सब ल्याये॥
सङ्ख निसान पनव बहु बाजे। मङ्गल-कलस सगुन सुभ साजे॥

सुभग सुआसिनि गावहिँ गीता। करहिँ बेद धुनि बिप्र पुनीता॥
लेन चले सादर एहि भाँती। गये जहाँ जनवास बराती॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहिँ सुरराजू॥
भयउ समय अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले सङ्ग मुनि साधु समाजा॥
दो०—भाग्य बिभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस-मुख, जानि जनम निज बादि॥२१३॥
सुरन्ह सुमङ्गल अवसर जाना। बरषहिँ सुमन बजाइ निसाना॥
सिव ब्रह्मादिक बिबुध-बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥
प्रेम पुलक-तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे॥
चितवहिँ चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥
नगर-नारि-नर रूप-निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥
तिन्हहिँ देखि सब सुर सुरनारी। भये नखत जनु बिधु उँजियारी॥
बिधिहि भयउ आचरज बिसेखी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥
दो०—सिव समुझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय-रघुबीर-बिआहु॥२१४॥
जिन्ह कर नाम लेत जग-माहीँ। सकल अमङ्गल-मूल नसाहीँ॥
करतल होहिँ पदारथ-चारी। तेइ सिय-राम कहेउ कामारी॥
एहि बिधि सम्भु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगे बर-बसह चलावा॥
देवन्ह देखे दसरथ जाता। महा-मोद-मन पुलकित गाता॥
साधु-समाज सङ्ग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिँ सुर सेवा॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनु-धारी॥
मरकत कनक बरन तनु जोरी। देखि सुरन्ह भइ प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहि बिलोकि हिय हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥
दो०—राम रूप नख-सिख-सुभग, बारहि बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि॥२१५॥
केकि-कंठ-दुति स्यामल अङ्गा। तड़ित बिनिन्दक बसन सुरङ्गा।
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाये। मङ्गलमय सब भाँति सुहाये॥

सरद-बिमल-बिधु बदन सुहावन। नयन नवल-राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुन्दरताई। कहि न जाइ मनही मन भाई ॥
बन्धु मनोहर सोहहिँ सङ्गा। जात नचावत चपल तुरङ्गा ॥
राजकुँअर बर बाज देखावहिँ। बंस-प्रसंसक बिरद सुनावहिँ ॥
जेहि तुरङ्ग पर राम बिराजे। गति बिलोकि खगनायक लाजे ॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेष जनु काम बनावा ॥

हरिगीतिका-छन्द।

जनु बाजि-बेष बनाइ मनसिज, राम-हित अति-सोहई ॥
आपने बय-बल-रूप-गुन-गति, सकल भुवन बिमोहई ॥
जगमगत जीन जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किङ्किनि-ललाम लगाम-ललित बिलोकि सुर-नर-मुनि ठगे ॥२१॥

दो०—प्रभु मनसहि लयलीन मन, चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घन, जनु बर बरहि नचाव ॥३१६॥

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदउ न बरनइ पारा ॥
सङ्कर राम-रूप अनुरागे। नयन पञ्चदस अति प्रिय लागे ॥
हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे ॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठै नयन जानि पछिताने ॥
सुरसेनप उर अधिक उछाहू। बिधि तें डेवढ़ सुलोचन लाहू ॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम स्राप परम हित माना ॥
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीँ। आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीँ ॥
मुदित देव गन रामहि देखी। नृप समाज दुहुँ हरष बिसेखी ॥

हरिगीतिका-छन्द।

अति हरष राज-समाज दुहुँ दिसि, दुन्दुभी बाजहिँ घनी।
बरषहिँ सुमन सुर हरषि कहि जय, जयति जय रघुकुलमनी ॥
यहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजहीँ।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मङ्गल साजहीँ ॥२२॥

दो०—सजि आरती अनेक बिधि, मङ्गल सकल सँवारि।
चलीँ मुदित परिछन करन, गज-गामिनि बर नारि ॥३१७॥

बिधु-बदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तनु छबि रति मदमोचनि ॥

पहिरे बरन बरन बर चीरा । सकल विभूषन सजे सरीरा ॥
सकल सुमङ्गल अङ्ग बनाये । करहिँ गान कलकंठ लजाये ॥
कङ्कन किङ्किनि नूपुर बाजहिँ । चाल विलोकि काम गज लाजहिँ ॥
बाजहिँ बाजन विविध प्रकारा । नभ अरु नगर सुमङ्गलचारा ॥
सची सारदा रमा भवानी । जे सुर-तिय सुचि सहज सयानी ॥
कपट नारि बर बेष बनाई । मिली सकल रनिवासहि आई ॥
करहिँ गान कल मङ्गल बानी । हरष बिबस सब काहु न जानी ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

को जान केहि आनन्द-बस सब, ब्रह्म-बर परिछन चलीँ ।
कल गान मधुर-निसान बरषहिँ, सुमन सुर सोभा भलीँ ॥
आनन्द-कन्द बिलोकि दूलह, सकल हिय हरषित भई ।
अम्भोज अम्बक अम्बु उमगि सुअङ्ग पुलकावलि छई ॥२३॥

दो०—जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम बर बेष ।
सो न सकहिँ कहि कलप-सत, सहस-सारदा-सेष ॥३१८॥

नयन नीर हटि मङ्गल जानी । परिछन करहिँ मुदित मन रानी ॥
बेद बिदित अरु कुल आचारू । कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू ॥
पञ्च-सबद धुनि-मङ्गल-गाना । पट पाँवड़े परहिँ बिधि नाना ॥
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा । राम गवन मंडप तब कीन्हा ॥
दसरथ सहित समाज बिराजे । बिभव बिलोकि लोकपति लाजे ॥
समय समय सुर बरसहिँ फूला । सान्ति पढ़हिँ महिसुर अनुकूला ॥
नभ अरु नगर कोलाहल होई । आपन पर कछु सुनइ न कोई ॥
एहि बिधि राम मंडपहि आये । अरघ देइ आसन बैठाये ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

बैठारि आसन आरती करि, निरखि बर सुख पावहीँ ।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिँ, नारि मङ्गल गावहीँ ॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीँ ।
अवलोकि रघुकुल-कमल-रबि-छबि, सुफल जीवन लेखहीँ ॥२४॥

दो०—नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ ।
मुदित असीसहिँ नाइ सिर, हरष न हृदय समाइ ॥३१९॥

मिले जनक दसरथ अति प्रीती। करि बैदिक लौकिक सब रीती॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥
लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जस गावन लागे॥
जग बिरञ्चि उपजावा जब तेँ। देखे सुने ब्याह बहु तब तेँ॥
सकल भाँति सब साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥
देव-गिरा सुनि सुन्दर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची॥
देत पाँवड़े अरघ सुहाये। सादर जनक मंडपहि ल्याये॥

हरिगीतिका-छन्द।

मंडप बिलोकि बिचित्र रचना, रुचिरता मुनि मन हरे।
निज-पानि जनक सुजान सब कहँ-आनि सिंहासन धरे॥
कुल-इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे, बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि, रीति तौ न परै कही॥२५॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय, पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहि, सब सन लही असीस॥३२०॥

बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा, जानि ईस सम भाव न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज-भाग्य बिभव बहुताई॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥
आसन उचित दिये सब काहू। कहउँ कहा मुख एक उछाहू॥
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि-हरि-हर-दिसि पति-दिनराऊ। जे जानहिँ रघुबीर प्रभाऊ॥
कपट बिप्र-बर बेष बनाये। कौतुक देखहिँ अति सचु पाये॥
पूजे जनक देव सम जाने। दिये सुआसन बिनु पहिचाने॥

हरिगीतिका-छन्द।

पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनन्द-कन्द बिलोकि दूलह, उभय-दिसि आनँद मई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे, मानसिक आसन दये।
अवलोकि सील सुभाउ प्रभु को, बिबुध मन प्रमुदित भये॥२६॥

दो०—रामचन्द्र-मुख चन्द्र-छबि, लोचन चारु चकोर।

करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर ॥३२१॥
समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाये। सादर सतानन्द मुनि आये ॥
बेगि कुँवरि अब आनहु जाई। चले मुदित मन आयसु पाई ॥
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी ॥
बिप्रबधू कुलवृद्ध बोलाई। करि कुल रीति सुमङ्गल गाई ॥
नारि बेष जे सुरबर-बामा। सकल सुभाय सुन्दरी स्यामा ॥
तिन्हहिँ देखि सुख पावहिँ नारी। बिनु पहिचानि प्रान तेँ प्यारी ॥
बार बार सनमानहिँ रानी। उमा-रमा-सारद-सम जानी ॥
सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहि चलीँ लेवाई ॥

हरिगीतिका-छन्द।

चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर, सजि सुमङ्गल भामिनी।
नवसप्त साजे सुन्दरी सब, मत्त-कुञ्जर-गामिनी ॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिँ, काम-कोकिल लाजहीँ।
मञ्जीर नूपुर कलित कङ्कन, ताल-गति बर बाजहीँ ॥२७॥

दो०—सोहति बनिता वृन्द महँ, सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु, सुखमा तिय कमनीय ॥३२२॥

सिय सुन्दरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीख बरातिन्ह सीता। रूप-रासि सब भाँति पुनीता ॥
सबहि मनहिँ मन किये प्रनामा। देखि राम भये पूरनकामा ॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता ॥
सुर प्रनाम करि बरिसहिँ फूला। मुनि-असीस-धुनि मङ्गल-मूला ॥
गान-निसान-कोलाहल भारी। प्रेम-प्रमोद-मगन नर-नारी ॥
एहि बिधि सीय मंडपहि आई। प्रमुदित सान्ति पढ़हिँ मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि व्यवहारू। दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू ॥

हरिगीतिका-छन्द।

आचार करि गुरु-गौरि-गनपति, मुदित बिप्र पुजावहीँ।
सुर प्रगटि पूजा लेहिँ देहिँ, असीस अति सुख पावहीँ ॥
मधुपर्क मङ्गल-द्रव्य जो जेहि, समय मुनि मन महँ चहैं।
भरे कनक-कोपर-कलस सो तब लिये परिचारक रहैँ ॥२८॥

कुलरीति प्रीति समेत रवि कहि,-देत सब सादर किये ।
एहि भाँति-देव पुजाइ सीतहि, सुभग सिंहासन दिये ॥
सिय-राम अवलोकनि परसपर, प्रेम काहु न लखि परै ॥
मन-बुद्धि-बर-बानी अगोचर, प्रगट कवि कैसे करै ॥२६॥

दो०—होम समय तनु धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिँ ।
विप्र वेष धरि वेद सब, कहि बिवाह विधि देहिँ ॥३२३॥

जनक-पाटमहिषी जग जानी । सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजस सुकृत सुख सुन्दरताई । सब समेटि बिधि रची बनाई ॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं । सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं ॥
जनक बाम-दिसि सोह सुनयना । हिम-गिरि सङ्ग बनी जनु मयना ॥
कनक-कलस मनि-कोपर रूरे । सुचि-सुगन्ध-मङ्गल-जल पूरे ॥
निज कर मुदित राय अरु रानी । धरे राम के आगे आनी ॥
पढ़हिँ वेद मुनि मङ्गल बानी । गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥
बर बिलोकि दम्पति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

लागे पखारन पाय-पङ्कज, प्रेम तनु पुलकावली ।
नभ नगर गान-निसान-जय धुनि, उमगि जनु चहुँ दिसि चली ॥
जे पद-सरोज मनोज अरि उर,-सर सदैव बिराजहीँ ॥
जे सुकृत सुमिरत विमलता मन, सकल कलिमल भाजहीँ ॥३०॥
जे परसि मुनि-बनिता लही गति, रही जो पातक-मई ।
मकरन्द जिन्ह को सम्भु सिर सुचिता-अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मुनि मन जोगि-जन जे, सेइ अभिमत गति लहैँ ।
ते पद पखारत भाग्य-भाजन, जनक जय जय सब कहैँ ॥३१॥
बर-कुँअरि करतल जोरि साखोच्चार दोउ कुल-गुरु करैं ।
भयो पानि-गहन बिलोकि बिधि-सुर-मनुज-मुनि आनँद भरैं ॥
सुख-मूल-दूलह देखि दम्पति, पुलक तनु हुलस्यो हियो ।
करि लोक-वेद-बिधान कन्यादान नृप-भूषन कियो ॥३२॥
हिमवन्त जिमि गिरिजा महेसहि, हारहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सयि समरपी, बिस्व कल कीरति नई ॥

करइ बिनय बिदेह कियउ बिदेह मूरति साँवरी।
करि होम बिधिवत गाँठि जोरी, होन लागी भाँवरी ॥३३॥

दो०—जय-धुनि बन्दी-बेद-धुनि, मङ्गल-गान निसान।
सुनि हरषहिँ बरषहिँ बिबुध, सुरतरु-सुमन सुजान ॥३२४॥

कुँअर कुँअरि कल भाँवरि देहीँ। नयन लाभ सब सादर लेहीँ॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी॥
राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीँ। जगमगाति मनि खम्भन्ह माहीँ॥
मनहुँ मदन-रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिबाह अनूपा॥
दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥
प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निवेरी॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीँ। सोभा कहि न जाति बिधि केहीँ॥
अरुन-पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुसासन। बर दुलहिन बैठे एक आसन॥

हरिगीतिका-छन्द।

बैठे बरासन राम जानकि, मुदित मन दसरथ भये।
तन पुलक पुनि पुनि देखि अपने, सुकृत-सुरतरु-फल नये॥
भरि भुवन रहा उछाह राम बिबाह भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना, एक यह मङ्गल महा ॥३४॥
तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु, ब्याह साज संवारिकै।
मांडवी स्रुतिकीरति उरमिला, कुँवरि लईं हँकारिकै॥
कुसकेतु-कन्या प्रथम जो गुन, सील-सुख-सोभा मई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो, ब्याहि नृप भरतहि दई ॥३५॥
जानकी लघु भगिनी सकल-सुन्दरि-सिरोमनि जानि कै।
सो जनक दीन्ही ब्याहि लखनहि, सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नाम स्रुतिकीरति सुलोचनि, सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति, रूप सील उजागरी ॥३६॥
अनुरूप बर दुलहिन परसपर, लखि सकुचि हिय हरषहीँ।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिँ, सुमन सुर-गन बरषहीँ॥

सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब, एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था, बिभुन्ह सहित बिराजहीं ॥३७॥
दो०—मुदित अवधपति सकल-सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पायउ महिपाल-मनि, क्रियन्ह सहित फल चारि ॥३२५॥
जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी ॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक-मनि मंडप पूरी ॥
कम्बल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी ॥
बस्तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिँ जिन्ह देखा ॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुख माने ॥
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासहिँ आवा ॥
तब कर जोरि जनक मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी ॥

हरिगीतिका-छन्द।

सनमानि सकल बरात आदर, दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनि-बृन्द बन्दे, पूजि प्रेम लड़ाइ कै ॥
सिर नाइ देव मनाइ सब सन, कहत कर सम्पुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिन्धु कि, तोष जल अञ्जलि दिये ॥३८॥
कर जोरि जनक बहोरि बन्धु-समेत कोसलराय सोँ।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सोँ ॥
सम्बन्ध राजन रावरे हम, बड़े अब सब बिधि भये।
यह राज साज समेत सेवक, जानिबी बिनु गथ लये ॥३९॥
ये दारिका परिचारिका करि, पालबी करुनामई।
अपराध छमिबो बोलि पठये, बहुत हौं ढीठ्यो दई ॥
पुनि भानुकुल-भूषन सकल सनमान निधि समधी कियो।
कहि जात नहिँ बिनती परसपर, प्रेम परिपूरन हियो ॥४०॥
बृन्दारका-गन सुमन बरषहिँ, राउ जनवासहि चले।
दुन्दुभी-जयधुनि बेद-धुनि नभ, नगर कौतूहल भले ॥
तब सखी मङ्गल-गान करत, मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुन्दरि, चलीँ कोहबर ल्याइ कै ॥४१॥

दो०—पुनि पुनि रामहि चितव सिय, सकुचति मन सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि, प्रेम पियासे नैन ॥३२६॥

स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक-जुत पद-कमल सुहाये। मुनि-मन-मधुप रहत जिन्ह छाये॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल-रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटिसूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर॥
पीत जनेउ महाछबि देई। कर-मुद्रिका चोरि चित लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरु भूषन राजे॥
पियर उपरना काँखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन-कमल कल कुंडल काना। बदन सकल-सौन्दर्ज-निधाना॥
सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलक रुचिरता निवासा॥
सोहत मौर मनोहर माथे - मङ्गलमय मुकता-मनि गाथे॥

हरिगीतिका-छन्द।

माथे महामनि मौर मञ्जुल, अङ्ग सब चित चोरहीं।
पुर-नारि सुर-सुन्दरी बरहि बिलोकि सब तृन तोरहीं।
मनि-बसन-भूषन वारि आरति, करहिं मङ्गल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध, बन्दि सुजस सुनावहीं॥४२॥
कोहबरहि आने कुँअर कुँअरि, सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं,-करन मङ्गल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि, सीय सन सादर कहैं।
रनिवास-हास बिलास रस-बस, जनम को फल सब लहैं॥४३॥
निज-पानि-मनि महँ देखि प्रतिमूरति सरूप-निधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि, बिरह भय-बस जानकी॥
कौतुक बिनोद प्रमोद प्रेम न, जाइ कहि जानहिं अली॥
बर-कुँअरि सुन्दरि सकल सखी, लिवाइ जनवासहिं चली॥४४॥
तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ, नगर नभ आनँद महा।
चिरजिअहु जोरी चारु चारिउ, मुदित मन सबही कहा॥
जोगीन्द्र-सिद्ध-मुनीस-देव बिलोकि प्रभु दुन्दुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज, लोक जय जय जय भनी॥४५॥

दो०—सहित बधूटिन्ह कुँअर सब, तब आये पितु पास।
सोभा मङ्गल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास ॥३२७॥
पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठये जनक बोलाइ बराती॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन किय भूपा॥
सादर सब के पाय पखारे। जथाजोग पीढ़न बैठारे॥
धोये जनक अवधपति चरना। सील सनेह जाइ नहिँ बरना॥
बहुरि राम-पद-पङ्कज धोये। जे हर-हृदय-कमल महँ गोये॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोये जनक चरन निज-पानी॥
आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारक सब लीन्हे॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक-कील मनि-पान सँवारे॥
दो०—सूपोदन सुरभी-सरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत।
छन महँ सब के परसिगे, चतुर सुआर बिनीत ॥३२८॥
पञ्चकवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिँ जाहिँ बखाने॥
परसन लगे सुआर सुजाना। बिञ्जन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजन सुति गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥
छरस रुचिर बिञ्जन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥
जेंवत देहिँ मधुर धुनि गारी। लइ लइ नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
एहि बिधि सबही भोजन कीन्हा। आदर सहित आचमन दीन्हा॥
दो०—देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज।
जनवासे गवने मुदित, सकल-भूप-सिरताज ॥३२९॥
नित नूतन मङ्गल पुर माहीँ। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीँ॥
बड़े भोर भूपति-मनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे॥
देखि कुँअर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोद मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीँ। महा प्रमोद प्रेम मन माहीँ॥
करि प्रनाम पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयउँ आजु मैं पूरनकाजा॥
अब सब बिप्र बोलाइ गोसाँई। देहु धेनु सब भाँति बनाई॥

सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठये मुनि वृन्द बोलाई॥
दो०—बामदेव अरु देवरिषि, बालमीक जाबालि।
आये मुनिबर निकर तब, कौसिकादि तप-सालि॥३३०॥
दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर-धेनु मँगाई। कामसुरभि सम सील सुहाई॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन-लाहू॥
पाइ असीस महीस अनन्दा। लिये बोलि पुनि जाचक-वृन्दा॥
कनक बसन मनि हय गय स्यन्दन। दिये बूझि रुचि रविकुल-नन्दन॥
चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर-कुल-नाथा॥
यहि बिधि राम-बिबाह-उछाहू। सकइ न बरनि सहस-मुख जाहू॥
दो०—बार बार कौसिक-चरन, सीस नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तव, कृपा-कटाच्छ प्रभाउ॥३३१॥
जनक सनेह सील करतूती। नृप सब राति सराहत बीती॥
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा। राखहिँ जनक सहित अनुरागा॥
नित नूतन आदर अधिकाई। दिनप्रति सहस-भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनन्द उछाहू। दसरथ गवन सोहात न काहू॥
बहुत दिवस बीते यहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौसिक सतानन्द तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥
अब दसरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाये। कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये॥
दो०—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भये प्रेम-बस सचिव सुनि, बिप्र सभासद राउ॥३३२॥
पुरबासी सुनि चलिहि बराता। पूछत बिकल परसपर बाता॥
सत्य गवन सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥
जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साज न जाइ बखाना॥
भरि भरि बसह अपार कहारा। पठये जनक अनेक सुआरा॥
तुरग-लाख रथ-सहस-पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥

मत्त सहस दस सिन्धुर साजे। जिन्हहिँ देखि दिसि-कुञ्जर लाजे॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु बस्तु विधि नाना॥
दो०—दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोकसम्पदा थोरि॥३३३॥
सब समाज एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥
चलिहि बरात सुनत सब रानी। विकल मीन-गन जनु लघुपानी॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावन देहीं॥
होयेहु सन्तत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी॥
सासु ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखी सयानी। नारि-धरम सिखवहिँ मृदु-बानी॥
सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई॥
बहुरि बहुरि भेंटहिँ महँतारी। कहहिँ विरञ्चि रची कत नारी॥
दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम-भानु कुल-केतु।
चले जनक-मन्दिर मुदित, विदा करावन हेतु॥३३४॥
चारिउ भाइ सुभाय सुहाये। नगर नारि नर देखन धाये॥
कोउ कह चलन चहत हहिँ आजू। कीन्ह विदेह विदा कर साजू॥
लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप-सुत चारी॥
को जानइ केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी॥
मरनसील जिमि पाव पियूखा। सुरतरु लहइ जनम कै भूखा॥
पाव नारकी हरि-पद जैसे। इन्ह कर दरसन हम कहँ तैसे॥
निरखि राम सोभा उर धरहू। निज-मन-फनि मूरति-मनि करहू॥
एहि विधि सबहि नयन फल देता। गये कुँअर सब राज-निकेता॥
दो०—रूप-सिन्धु सब बन्धु लखि, हरषि उठेउ रनिवासु।
करहिँ निछावरि आरती, महा-मुदित-मन सासु॥३३५॥
देखि राम छवि अति अनुरागीँ। प्रेम-विबस पुनि पुनि पद लागीँ॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेह बरनि किमि जाई॥
भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाये। छरस असन अति हेतु जेंवाये॥
बोले राम सुअवसर जानी। सील-सनेह-सकुच मय बानी॥
राउ अवधपुर चहत सिधाये। विदा होन हम इहाँ पठाये॥

मातु मुदित-मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिँ प्रेम-बस सासू॥
हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं॥

हरिगीतिका-छन्द।

करि बिनय सिय रामहिँ समरपी, जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहँ, बिदित गति सब की अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि, प्रान प्रिय सिय जानबी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज, किङ्करी करि मानबी॥४६॥

सो०—तुम्ह परिपूरन-काम, जान-सिरोमनि भाव-प्रिय।
जन-गुन-गाहक राम, दोष-दलन करुनायतन॥३३६॥

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पङ्क जनु गिरा समानी॥
सुनि सनेह सानी बर बानी। बहु बिधि राम सासु सनमानी॥
राम बिदा माँगा कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी॥
पाइ असीस बहुरि सिर नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥
मञ्जु-मधुर-मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥
पुनि धीरज धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेंटहिँ महतारी॥
पहुँचावहिँ फिरि मिलहिँ बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल-बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

दो०—प्रेम-बिबस नर नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करुना-बिरह-निवास॥३३७॥

सुक सारिका जानकी ज्याये। कनक-पिंजरन्हि राखि पढ़ाये॥
ब्याकुल कहहिँ कहाँ बैदेही। सुनि धीरज परिहरइ न केही॥
भये बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसे कहि जाती॥
बन्धु समेत जनक तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि राय उर लाय जानकी। मिटी महा-मरजाद ज्ञान की॥
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचार अनवसर जाने॥
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुन्दर पालकीं मँगाई॥

दो०—प्रेम-बिबस परिवार सब, जानि सुलगन नरेस।

कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्ध गनेस ॥३३८॥
बहु बिधि भूप सुता समुझाई। नारि-धरम कुल-रीति सिखाई॥
दासी दास दिये बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥
सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिँ सगुन सुभ मङ्गल-रासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। सङ्ग चले पहुँचावन राजा॥
समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥
चरन-सरोज-धूर धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मङ्गल-मूल सगुन भये नाना॥
दो०—सुर प्रसून बरषहिँ हरषि, करहिँ अपछरा गान।
चले अवध-पति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान॥३३९॥
नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल माँगने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥
बार बार बिरदावलि भाखी। फिरे सकल रामहिँ उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीँ। जनक प्रेम बस फिरन न चहहीँ॥
पुनि कह भूपति बचन सुहाये। फिरिय महीस दूरि बड़ि आये॥
राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े। प्रेम-प्रवाह बिलोचन बाढ़े॥
तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह-सुधा जनु बोरी॥
करउँ कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्ह बड़ाई॥
दो०—कोसलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलन परसपर बिनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥३४०॥
मुनि-मंडलिहि जनक सिर नावा। आसिरबाद सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप-सील-गुन-निधि सब भ्राता॥
जोरि पङ्करुह-पानि सुहाये। बोले बचन प्रेम जनु जाये॥
राम करउँ केहि भाँति प्रसंसा। मुनि-महेस-मन-मानस हंसा॥
करहिँ जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
ब्यापक ब्रह्म अलख अबिनासी। चिदानन्द निरगुन गुन रासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिँ सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस अहई॥

दो०—नयन विषय मो कहँ भयउ, सो समस्त-सुख-मूल ।
सबइ सुलभ जग जीव कहँ, भये ईस अनुकूल ॥ ३४१ ॥
सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई । निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥
होहिँ सहस-दस सारद सेषा । करहिँ कलप कोटिक भरि लेखा ॥
मोर भाग्य राउर गुन-गाथा । कहि न सिराहिँ सुनहु रघुनाथा ॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरे । तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे ॥
बार बार माँगउँ कर जोरे । मन परिहरै चरन जनि भोरे ॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे । पूरनकाम राम परितोषे ॥
करि बर बिनय ससुर सनमाने । पितु कौसिक वसिष्ठ सम जाने ॥
बिनती बहुत भरत सन कीन्ही । मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही ॥
दो०—मिले लखन रिपुसूदनहि, दीन्हि असीस महीस ।
भये परसपर प्रेम-बस, फिरि फिरि नावहिँ सीस ॥ ३४२ ॥
बार बार करि बिनय बड़ाई । रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई । चरन-रेनु सिर नयनन्हि लाई ॥
सुनु मुनीस बर-दरसन तोरे । अगम न कछु प्रतीत मन मोरे ॥
जो सुख सुजस लोकपति चहहीं । करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥
सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी । सब सिधि तव दरसन अनुगामी ॥
कीन्ह बिनय पुनि पुनि सिर नाई । फिरे महीस आसिषा पाई ॥
चली बरात निसान बजाई । मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥
रामहिँ निरखि ग्राम-नर-नारी । पाइ नयन-फल होहिँ सुखारी ॥
दो०—बीच बीच बर बास करि, मग-लोगन्ह सुख देत ।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥ ३४३ ॥
हने निसान पनव बर बाजे । भेरि संख धुनि हय गय गाजे ॥
झाँझ बीन डिंडिमी सुहाई । सरस-राग बाजहिँ सहनाई ॥
पुरजन आवत अकनि बराता । मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुन्दर सदन सँवारे । हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥
गली सकल अरगजा सिँचाई । जहँ तहँ चौकें चारु पुराई ॥
बना बजारु न जाइ बखाना । तोरन केतु पताक बिताना ॥
सफल पूगफल कदलि रसाला । रोपे बकुल कदंब तमाला ॥

लागे सुभग तरु परसत धरनी। मनि-मय आलबाल कल करनी॥

दो०—बिबिध भाँति मङ्गल कलस, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिँ सब, रघुबर-पुरी निहारि॥३४४॥

भूप भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा॥
मङ्गल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख सम्पदा सुहाई॥
जनु उछाह सब सहज सुहाये। तनु धरि धरि दशरथ गृह आये॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होइ न केही॥
जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निजछबिनिदरहिँ मदन-बिलासिनि॥
सकल सुमङ्गल सजे आरती। गावहिँ जनु बहु बेष भारती॥
भूपति भवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समउ सुख सोई॥
कौसल्यादि राम महँतारी। प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी॥

दो०—दिये दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥३४५॥

मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिँ न चरन सिथिल भये गाता॥
राम-दरस हितअति अनुरागीँ। परिछन साज सजन सब लागीँ॥
बिबिध बिधान बाजने बाजे। मङ्गल मुदित सुमित्रा साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मङ्गल-मूला॥
अच्छत अङ्कुर रोचन लाजा। मञ्जुल-मञ्जरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरट-घट सहज सुहाये। मदन-सकुन जनु नीड़ बनाये॥
सगुन सुगन्ध न जाइ बखानी। मङ्गल सकल सजहिँ सब रानी॥
रची आरती बहुत बिधाना। मुदित करहिँ कल मङ्गल गाना॥

दो०—कनकथार भरि मङ्गलन्हि, कमल करन्हि लिय मातु।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक प्रफुल्लित गात॥३४६॥

धूप-धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन-घमंड जनु ठयऊ॥
सुरतरु-सुमन-माल सुर बरषहिँ। मनहुँ बलाक-अवलि मन करषहिँ॥
मञ्जुल मनि-मय बन्दनवारे। मनहुँ पाकरिपु-चाप सँवारे॥
प्रगटहिँ दुरहिँ अटन्हिपर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिँ दामिनि॥
दुन्दुभि-धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक-दादुर-मोरा॥
सुर सुगन्ध सुचि बरषहिँ बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा । पुर-प्रवेस रघुकुल-मनि कीन्हा ॥
सुमिरि सम्भु गिरिजा-गनराजा । मुदित महीपति सहित समाजा ॥

दो०—होहिं सगुन बरषहिं सुमन, सुर दुन्दुभी बजाइ ।
बिबुध-बधू नाचहिं मुदित, मञ्जुल मङ्गल गाइ ॥३४७॥

मागध सूत बन्दि नट नागर । गावहिं जस तिहुँ लोक उजागर ॥
जय-धुनि बिमल बेद बर बानी । दस दिसि सुनिय सुमङ्गल सानी ॥
बिपुल बाजने बाजन लागे । नभ-सुर नगर-लोग अनुरागे ॥
बने बराती बरनि न जाहीं । महा मुदित मन सुख न समाहीं ॥
पुरबासिन्ह तब राउ जोहारे । देखत रामहिं भये सुखारे ॥
करहिं निछावर मनि-गन चीरा । बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥
आरति करहिं मुदित पुर नारी । हरषहिं निरखि कुँवर बर चारी ॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी । देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ॥

दो०—एहि बिधि सबही देत सुख, आये राज दुआर ।
मुदित मातु परिछनि करहिं, बधुन्ह समेत कुमार ॥३४८॥

करहिं आरति बारहिं बारा । प्रेम प्रमोद कहइ को पारा ॥
भूषन मनि पट नाना जाती । करहिं निछावर अगनित भाँती ॥
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानन्द मगन महतारी ॥
पुनि पुनि सीय-राम छबि देखी । मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥
सखी सीय-मुख पुनि पुनि चाही । गान करहिं निज सुकृत सराही ॥
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा । नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ॥
देखि मनोहर चारिउ जोरी । सारद उपमा सकल ढँढोरी ॥
देत न बनइ निपट लघु लागी । एकटक रही रूप अनुरागी ॥

दो०—निगम-नीति कुल-रीति करि, अरघ पाँवड़े देत ।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लेवाइ निकेत ॥३४९॥

चारि सिंहासन सहज सुहाये । जनु मनोज निज हाथ बनाये ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे । सादर पाय पुनीत पखारे ॥
धूप दीप नैबेद्य बेद-बिधि । पूजे बर-दुलहिनि मङ्गल-निधि ॥
बारहिं बार आरती करहीं । ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं ॥
बस्तु अनेक निछावरि होहीं । भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं ॥

पावा परम-तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु सन्तत रोगी॥
जनमरंक जनु पारस पावा। अन्धहि लोचन लाभ सुहावा॥
मूक-बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई॥
दो०—एहि सुख तें सतकोटि-गुन, पावहिँ मातु अनन्द।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आये रघुकुल-चन्द॥
लोक-रीति जननी करहिँ, बर दुलहिनि सकुचाहिँ।
मोद बिनोद बिलोकि बड़, राम मनहिँ मुसुकाहिँ॥३५०॥
देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजी सकल बासना जी की॥
सबहि बन्दि माँगहिँ बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥
अन्तरहित सुर आसिष देहीँ। मुदित मातु अञ्चल भरि लेहीँ॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥
आयसु पाइ राखि उर रामहिँ। मुदित गये सब निज निज धामहिँ॥
पुर नर नारि सकल पहिराये। घर घर बाजन लगे बधाये॥
जाचक-जन जाचहिँ जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिँ सोइ सोई॥
सेवक सकल बजनियाँ नाना। पूरन किये दान सनमाना॥
दो०—देहिँ असीस जोहारि सब, गावहिँ गुन-गन-गाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवन कीन्ह नरनाथ॥३५१॥
जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्हा। लोक बेद बिधि सादर कीन्हा॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥
पाँय पखारि सकल अन्हवाये। पूजि भली बिधि भूप जेंवाये॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥
बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा॥
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी॥
भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृप रनिवासू॥
पूजे गुरु-पद-कमल बहोरी। कीन्ह बिनय उर प्रीति न थोरी॥
दो०—बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस।
पुनि पुनि बन्दत गुरु चरन, देत असीस मुनीस॥३५२॥
बिनय कीन्ह उर अति अनुरागे। सुत सम्पदा राखि सब आगे॥
नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा। आसिरबाद बहुत बिधि दीन्हा॥

उर धरि रामहिँ सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता॥
बिप्र-वधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं॥
बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं॥
नेगी नेग-जोग सब लेहीँ। रुचि अनुरूप भूप-मनि देहीँ॥
प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने॥
देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥
दो०—चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम-जस, प्रेम न हृदय समाइ॥३५३॥
सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदय भरि पूरि उछाहू॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित वधूटिन्ह कुँअर निहारे॥
लिये गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुख जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरषि दुलारी॥
देखि समाज मुदित रनिवासू। सब के उर अनन्द किय बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरष होइ सब काहू॥
जनकराज गुन सील बड़ाई। प्रीति रीति सम्पदा सुहाई॥
बहु बिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥
दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि बिप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि, घरी पञ्च गइ राति॥३५४॥
मङ्गल गान करहिँ बर भामिनि। भइ सुख-मूल मनोहर जामिनि॥
अँचइ पान सब काहू पाये। स्रग-सुगन्ध-भूषित छबि छाये॥
रामहिँ देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोद बिनोद बड़ाई। समउ समाज मनोहरताई॥
कहि न सकहिँ सत सारद सेसू। बेद बिरञ्चि महेस गनेसू॥
सो मैं कहउँ कवन बिधि बरनी। भूमिनाग सिर धरइ कि धरनी॥
नृप सब भाँति सबहिँ सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाईं रानी॥
बधू लरिकिनी पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥
दो०—लरिका स्रमित उनीद-बस, सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्राम-गृह, राम-चरन चित लाइ॥३५५॥
भूप बचन सुनि सहज सुहाये। जटित कनक-मनि पलँग डसाये॥

सुभग सुरभि पय-फेन समाना । कोमल कलित सुपेती नाना ॥
उपबरहन-बर बरनि न जाहीं । स्रग-सुगन्ध मनि-मन्दिर माहीं ॥
रतन दीप सुठि चारु चँदोवा । कहत न बनइ जान जेहि जोवा ॥
सेज रुचिर रचि राम उठाये । प्रेम-समेत पलँग पौढ़ाये ॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही । निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही ॥
देखि स्याम मृदु मञ्जुल गाता । कहहिँ सप्रेम बचन सब माता ॥
मारग जात भयावनि भारी । केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥
दो०—घोर निसाचर बिकट भट, समर गनहिँ नहिँ काहु ।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥
मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी । ईस अनेक करवरें टारी ॥
मख रखवारी करि दोउ भाई । गुरु-प्रसाद सब बिद्या पाई ॥
मुनि-तिय तरी लगत पग धूरी । कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ-पीठि पबि कूट कठोरा । नृप-समाज महँ सिव-धनु तोरा ॥
बिस्व-बिजय-जस जानकि पाई । आये भवन ब्याहि सब भाई ॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे । केवल कौसिक कृपा सुधारे ॥
आजु सुफल जग जनम हमारा । देखि तात बिधु-बदन तुम्हारा ॥
जे दिन गये तुम्हहिँ बिनु देखे । ते बिरञ्चि जनि पारहिँ लेखे ॥
दो०—राम प्रतोषी मातु सब, कहि बिनीत बर बैन ।
सुमिरि सम्भु-गुरु-बिप्र-पद, किये नींद बस नैन ॥३५७॥
नींदहु बदन सोह सुठि लोना । मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ॥
घर घर करहिँ जागरन नारी । देहिँ परसपर मङ्गल गारी ॥
पुरी बिराजति राजति रजनी । रानी कहहिँ बिलोकहु सजनी ॥
सुन्दर बधू सासु लेइ सोई । फनिकन्ह जनु सिर-मनि उर गोई ॥
प्रात पुनीत-काल प्रभु जागे । अरुनचूड़ बर बोलन लागे ॥
बन्दि मागधन्ह गुन-गन गाये । पुरजन द्वार जोहारन आये ॥
बन्दि बिप्र सुर गुरु पितु माता । पाइ असीस मुदित सब भ्राता ॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे । भूपति सङ्ग द्वार पग धारे ॥
दो०—कीन्ह सौच सब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाइ ।
प्रातक्रिया करि तात पहिँ, आये चारिउ भाइ ॥३५८॥

भूप बिलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥
पुनि बसिष्ठ मुनि कौसिक आये। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाये॥
सुतन्ह समेत पूजि पग लागे। निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे॥
कहहिँ बसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिँ महीस सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥
बोले बामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची॥
सुनि आनन्द भयउ सब काहू। राम-लखन-उर अधिक उछाहू॥
दो०—मङ्गल मोद उछाह नित, जाहिँ दिवस यहि भाँति।
उमगी अवध अनन्द भरि, अधिक अधिक अधिकाति॥३५९॥
सुदिन सोधि कल कङ्कन छोरे। मङ्गल मोद बिनोद न थोरे॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीँ। अवध जनम जाचहिँ बिधि पाहीँ॥
बिस्वामित्र चलन नित चहहीँ। राम-सप्रेम-बिनय-बस रहहीँ॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महा-मुनि-राऊ॥
माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भये आगे॥
नाथ सकल सम्पदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
राम सप्रेम सङ्ग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥
दो०—राम-रूप भूपति-भगति, ब्याह उछाह अनन्द।
जात सराहत मनहिँ मन, मुदित गाधि-कुल-चन्द॥३६०॥
बामदेव रघुकुल-गुरु ज्ञानी। बहुरि गाधि-सुत कथा बखानी॥
सुनि सुनि सुजस मनहिँ मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥
बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गयऊ॥
जहँ तहँ राम ब्याह सब गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा॥
आये ब्याहि राम घर जब तें। बसै अनन्द अवध सब तब तें॥
प्रभु बिवाह जस भयउ उछाहू। सकहिँ न बरनि गिरा अहिनाहू॥
कबि-कुल-जीवन पावन जानी। राम-सीय-जस मङ्गल-खानी॥

तेहि तें मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥

हरिगीतिका-छन्द।

निज गिरा पावनि करन कारन, राम जस तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि, पार कबि कवने लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मङ्गल, सुनि जे सादर गावहीं।
वैदेहि-राम-प्रसाद तें जन, सर्वदा सुख पावहीं॥४७॥

सो०—सिय रघुबीर बिबाह, जे सप्रेम गावहिँ सुनहिँ।
तिन्ह कहँ सदा उछाह, मङ्गलायतन राम जस॥३६१॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषबिध्वंसने
बिमलसन्तोषसम्पादनो नाम प्रथमः
सोपानः समाप्तः।

(शुभमस्तु मङ्गलमस्तु)

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# रामचरित मानस

## द्वितीय सोपान

## अयोध्याकाण्ड

शार्दूलविक्रीड़ित-वृत्त ।

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बाल-विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ॥
सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातुमाम् ॥१॥

वंशस्थविलम्-वृत ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गल प्रदा ॥२॥

इन्द्रवज्रा-वृत ।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥३॥

दो०—श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज-मन-मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस, जो दायक फल-चारि ॥

जब तें राम ब्याहि घर आये । नित नव मङ्गल मोद बधाये ॥
भुवन चारि-दस भूधर भारी । सुकृत मेघ बरषहिँ सुख-बारी ॥
रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई । उमगि अवध-अम्बुधि कहँ आई ॥
मनि-गन पुर-नर-नारि-सुजाती । सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती ॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती । जनु एतनिअ बिरञ्चि करतूती ॥
सब बिधि सब पुर-लोग सुखारी । रामचन्द्र मुख-चन्द निहारी ॥
मुदित मातु सब सखी सहेली । फलित बिलोकि मनोरथ बेली ॥
राम-रूप-गुन-सील-सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥

दो०—सब के उर अभिलाष अस, कहहिँ मनाइ महेस।
आपु अछत जुबराज-पद, रामहिँ देउ नरेस ॥१॥
एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज बिराजा॥
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू। राम-सुजस-सुनि अतिहि उछाहू॥
नृप सब रहहिँ कृपा अभिलाखे। लोकप करहिँ प्रीति रुख राखे॥
तिभुवन तीन काल जग माहीँ। भूरि भाग दसरथ सम नाहीँ॥
मङ्गल-मूल राम सुत जासू। जो कछु कहिय थोर सब तासू॥
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठ-पन अस उपदेसा॥
नृप जुबराज राम कहँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥
दो०—यह बिचार उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ।
प्रेम-पुलकि-तन मुदित मन, गुरुहिँ सुनायउ जाइ॥२॥
कहइ भुआल सुनिय मुनि नायक। भये राम सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥
सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाँई। करहिँ छोहु सब रौरहि नाँई॥
जे गुरुचरन-रेनु सिर धरहीँ। ते जनु सकल बिभव बस करहीँ॥
मोहि सम यह अनुभयउ न दूजे। सब पायउँ रज-पावनि पूजे॥
अब अभिलाष एक मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज-सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥
दो०—राजन राउर नाम जस, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप-मनि, मनि अभिलाष तुम्हार॥३॥
सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ बिहँसि मृदु-बानी॥
नाथ राम करियहि जुबराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू॥
मोहि अछत यह होइ उछाहू। लहहिँ लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीँ। यह लालसा एक मन माहीँ॥
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाये। मङ्गल-मोद-मूल मन भाये॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीँ। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीँ॥

भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। राम पुनीत प्रेम अनुगामी॥
दो०—बेगि बिलम्ब न करिय नृप, साजिय सबै समाज।
सुदिन सुमंगल तबहिँ जब, राम होहिँ जुबराज॥४॥
मुदित महीपति मन्दिर आये। सेवक सचिव सुमन्त्र बोलाये॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमङ्गल बचन सुनाये॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहिँ राय देहु जुबराजू॥
जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहिँ टीका॥
मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिँ कर जोरी। जियहु जगतपति बरिस करोरी॥
जग मङ्गल भल काज बिचारा। बेगिय नाथ न लाइय बारा॥
नृपहिँ मोद सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥
दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम-राज-अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ॥५॥
हरषि मुनीस कहेउ मृदु-बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मङ्गल नाना॥
चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनि-गन मङ्गल-बस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका॥
बेद-बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध-बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥
रचहु मञ्जु मनि चौकइ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति-गुरु कुल देवा। सब बिधि करहु भूमिसुर-सेवा॥
दो०—ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सब, निज निज काजहि लाग॥६॥
जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मङ्गल-काजा॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम-सीय-तन सगुन जनाये। फरकहिँ मङ्गल अङ्ग सुहाये॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीँ। भरत आगमन सूचक अहहीँ॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । इहइ सगुन फल दूसर नाहीं ॥
रामहिँ बन्धु सोच दिन राती । अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती ॥
दो० —एहि अवसर मङ्गल परम, सुनि रहँसेउ रनिवास ।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलास ॥७॥
प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाये । भूषन बसन भूरि तिन्ह पाये ॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं । मङ्गल कलस सजन सब लागीं ॥
चौकइ चारु सुमित्रा पूरी । मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ॥
आनँद-मगन राम-महतारी । दिये दान बहु बिप्र हँकारी ॥
पूजी ग्रामदेवि-सुर-नागा । कहेउ बहोरि देन बलि-भागा ॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू । देहु दया करि सो बरदानू ॥
गावहिँ मङ्गल कोकिल-बयनी । बिधु-बदनी मृग-सावक-नयनी ॥
दो०—राम राज अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर-नारि ।
लगे सुमङ्गल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥
तब नर नाह बसिष्ठ बोलाये । राम-धाम सिख देन पठाये ॥
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय-सहित बहोरी । बोले राम कमल कर जोरी ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू । मङ्गल मूल अमङ्गल-दमनू ॥
तदपि उचित जन बोलि सप्रीती । पठइय काज नाथ असि नीती ॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आजु यह गेहू ॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाँईं । सेवक लहइ स्वामि सेवकाई ॥
दो०—सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहिँ प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंस बंस अवतंस ॥९॥
बरनि राम गुन सील सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक-समाजू । चाहत देन तुम्हहिँ जुबराजू ॥
राम करहु सब संजम आजू । जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिँ गयऊ । राम हृदय अस बिसमय भयऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बियाहा । सङ्ग सङ्ग सब भयउ उछाहा ॥

बिमल-बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़िहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥
दो०—तेहि अवसर आये लखन, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव-चन्द॥१०॥
बाजहिँ बाजन बिबिध बिधाना। पुर-प्रमोद नहिँ जाय बखाना॥
भरत आगमन सकल मनावहिँ। आवहु बेगि नयन फल पावहिँ॥
हाट बाट घर गली अथाई। कहहिँ परसपर लोग लोगाई॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाष हमारा॥
कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिँ राम होइ चित चेता॥
सकल कहहिँ कब होइहि काली। बिघन मनावहिँ देव कुचाली॥
तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चन्दिनि-राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिँ बार पाँय लै परहीं॥
दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ आजु।
राम जाहिँ बन राज तजि, होइ सकल सुर काजु॥११॥
सुनि सुर-बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज-बिपिन हिम-राती॥
देखि देव पुनि कहहिँ निहोरी। मातु तोहि नहिँ थोरिउ खोरी॥
बिसमय-हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम-बस सुख-दुख-भागी। जाइय अवध देव-हित लागी॥
बार बार गहि चरन सकोची। चली बिचारि बिबुध-मति पोची॥
ऊँच निवास नीचि करतूती। देखि न सकहिँ पराइ बिभूती॥
आगिल काज बिचारि बहोरी। करिहहिँ चाह कुसल-कबि मोरी॥
हरष हृदय दशरथ-पुर आई। जनु ग्रह-दशा दुसह दुखदाई॥
दो०—नाम मन्थरा मन्द-मति, चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥१२॥
दीख मन्थरा नगर बनावा। मञ्जुल मङ्गल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम-तिलक सुनि भा उर दाहू॥
करइ बिचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥
भरत-मातु पहिँ गइ बिलखानी। का अनमनि हँसि कह हँसि रानी॥

ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥

दो०—सभय रानि कह कहसि किन, कुसल राम महिपाल।
लखन भरत रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर साल॥१३॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई॥
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहिं जनेस देइ जुबराजू॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा॥
पूत बिदेस न सोच तुम्हारे। जानति हहु बस नाह हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मन जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

दो०—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत-मातु मुसुकानि॥१४॥

प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोप न मोही॥
सुदिन सुमङ्गल-दायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर-कुल-रीति सुहाई॥
राम तिलक जौं साँचेहुँ काली। देउँ माँगु मन-भावत आली॥
कौसल्या सम सब महँतारी। रामहिं सहज सुभाय पियारी॥
मो पर करहिं सनेह बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनम देइ करि छोहू। होहु रामसिय पूत-पतोहू॥
प्रान तें अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभ कस तोरे॥

दो०—भरत सपथ तोहि साँच कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ॥१५॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरइ जोग कपार अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती॥

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥
जारइ जोग सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ता तें कछुक बात अनुसारी । छमिय देबि बड़ि चूक हमारी ॥

दो०—गूढ़-कपट प्रिय-बचन सुनि, तीय-अधर-बुधि रानि ।
सुर-माया-बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि ॥१६॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥
सजि प्रतीति बहु-बिधि गढ़ि छोली । अवध साढ़साती तब बोली ॥
प्रिय सिय राम कहा तुम्ह रानी । रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते ॥
भानु कमल-कुल पोषनिहारा । बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥

दो०—तुम्हहिं न सोच सोहाग बल, निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुँह-मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ ॥१७॥

चतुर गँभीर राम-महँतारी । बीच पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरत भूप ननिऔरे । राम-मातु मत जानब रौरे ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके । गरबित भरत-मातु बल पी के ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई । कपट चतुर नहिं परइ लखाई ॥
राजहि तुम्ह पर प्रेम बिसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपञ्च भूपहि अपनाई । राम-तिलक-हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहँ टीका । सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फल ओही ॥

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिल-पन, कीन्हेसि कपट प्रबोध ।
कहसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोध ॥१८॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूछहु तुम्ह अबहुँ न जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥
भयउ पाख दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥

खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिँ दोष हमारे॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ विधि देइहि हमहिँ सजाई॥
रामहिँ तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहँ विपतिबीज विधि बयऊ॥
रेख खचाइ कहउँ बल भाखी। भामिनि भइहु दूध कै माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥
दो०—कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख, तुम्हहिँ कौसिला देव।
भरत बन्दिगृह सेइहहिँ, लखन राम के नेव॥१९॥
कैकय-सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठि कुकाठू॥
फिरा करम प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥
दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दइय दुसह दुख दीन्ह॥२०॥
नैहर जनम भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई॥
अरि बस दैव जियावत जाही। मरन नीक तेहि जीव न चाही॥
दीन बचन कह बहु बिधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहाग तुम्ह कहँ दिन दूना॥
जेहि राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फल परिपाका॥
जब तेँ कुमति सुना मैँ स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥
पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिँ यह साँची॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। है तुम्हरी सेवा बस राऊ॥
दो०—परउँ कूप तव बचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित लागि॥२१॥
कुबरी करि कबुली कैकेई। कपट-छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित त्रिन बलि-पशु जैसे॥

सुनत बात मृदु अन्त कठोरी। देत मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ वरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राज रामहिं वनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति राम-सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि वचन न टरई॥
होइ अकाज आजु निसि बीते। वचन मोर प्रिय मानहु जी ते॥

दो०—बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोप-गृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु॥ २२॥

कुबरी रानि प्रान-प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हित न मोहि संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा॥
जौं बिधि पुरब मनोरथ काली। करउँ तोहि चखपूतरि आली॥
बहु बिधि चेरिहि आदर देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥
बिपति बीज बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकेई केरी॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥
कोप-समाज साज सब सोई। राज करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहल होई। यह कुचाल कछु जान न कोई॥

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमङ्गलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार॥२३॥

बालसखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनि हारा॥
जेहि जेहि जोनि करम-बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईस देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सिय-नाहू। होउ नात यहि ओर निबाहू॥
अस अभिलाष नगर सब काहू। कैकय-सुता हृदय अति दाहू॥
को न कुसङ्गति पाइ नसाई। रहइ न नीच-मते चतुराई॥

दो०—साँझ समय सानन्द नृप, गयउ कैकई गेह।
गवननिठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह॥२४॥

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय-बस अगहुँड़ परइ न पाऊ॥

सुरपति बसइ बाँह-बल जाके। नरपति सकल रहहिँ रुख ताके॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनि हारे। ते रतिनाथ सुमन-सिर मारे॥
सभय नरेस प्रिया पहिँ गयऊ। देखि दसा दुख दारुन भयऊ॥
भूमि सयन पट मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना॥
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अन-अहिवात सूच जनु भावी॥
जाइ निकट नृप कह मृदु बानी। प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी॥

हरिगीतिका-छन्द।

केहि हेतु रानि रिसानि परसत, पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअङ्ग भामिनि, विषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना-रसना दसन बर, मरम ठाहर देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यता बस, काम कौतुक लेखई॥

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-बचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गज गामिनि निज कोप कर॥२५॥

अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा॥
कहु केहि रङ्कहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर सुभाव बरोरू। मन तव आनन-चन्द चकोरू॥
प्रिया प्रान सुत सरबस मोरे। परिजन-प्रजा-सकल बस तोरे॥
जौं कछु कहउँ कपट करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥
बिहँसि माँगु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मति मन्द॥
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फन्द॥२६॥

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि मृदु मञ्जुल बानी॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनन्द बधावा॥
रामहिँ देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मङ्गल-साजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥
पेसिउ पीर बिहँसि तेहिँ गोई। चोर-नारि जिमि प्रगटि न रोई॥

लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई॥
जद्यपि नीति-निपुन नर-नाहू। नारि-चरित जलनिधि अवगाहू॥
कपट-सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी॥

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु॥२७॥

जानेउँ मरम राउ हँसि कहई। तुम्हहिँ कोहाब परम-प्रिय अहई॥
थाती राखि न माँगेहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥
झूठेहु हमहिँ दोस जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू॥
रघुकुल-रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचन न जाई॥
नहिँ असत्य सम पातक-पुञ्जा। गिरि सम होहिँ कि कोटिक गुञ्जा॥
सत्य-मूल सब सुकृत सुहाये। बेद पुरान बिदित मनु गाये॥
तेहि पर राम-सपथ करि आई। सुकृत-सनेह-अवधि रघुराई॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत-कुबिहँग कुलह जनु खोली॥

दो०—भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुबिहङ्ग समाज।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयङ्कर बाज॥२८॥

सुनहु प्रान-प्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
माँगउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस-बेष बिसेष उदासी। चौदह बरिस राम बन-बासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससि-कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
गयउ सहमि नहिँ कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोच लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथ सुरतरु-फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हेसि अचल बिपति कै नेईं॥

दो०—कवने अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास।
जोग-सिद्धि-फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास॥२९॥

एहि बिधि राउ मनहिँ मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥
भरत कि राउर पूत न होहीँ। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीँ॥
जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचन सँभारे॥

देहु उतर अरु करहु कि नाहीं। सत्यसन्ध तुम्ह रघुकुल माहीं॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजस लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाखा। तनु धन तजेउ बचन पन राखा॥
अति कटु-बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥
दो०—धरम-धुरन्धर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि,—मारेसि मोहि कुठाय॥३०॥
आगे दीख जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तलवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवन लेइहि मोरा॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि सङ्कर साखी॥
अवसि दूत मैं पठइब प्राता। अइहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सब साज सजाई। देउँ भरत कहँ राज बजाई॥
दो०—लोभ न रामहिँ राज कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचार जिय, करत रहेउँ नृप-नीति॥३१॥
राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राम मातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। तेहि ते परेउ मनोरथ छूछे॥
रिस परिहरु अब मङ्गल साजू। कछु दिन गये भरत युवराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमञ्जस माँगा॥
अजहुँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा॥
कहु तजि रोष राम अपराधू। सब कोउ कहइ राम सुठि साधू॥
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ सन्देहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥
दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेक।
जेहि देखउँ अब नयन भरि, भरत राज-अभिषेक॥३२॥
जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥

समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। जीवन राम-दरस आधीना॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपञ्च सोहाहीं॥
राम-साधु तुम्ह साधु सयाने। राम-मातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फल उन्हहिँ देउँ करि साका॥

दो०—होत प्रात मुनि बेष धरि, जौं न राम बन जाहिँ।
मोर मरन राउर अजस, नृप समुझिय मन माहिँ॥३३॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष-तरङ्गिनि बाढ़ी॥
पाप-पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध-जल जाइ न जोई॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी-बचन-प्रचारा॥
ढाहत भूप-रूप-तरु मूला। चली बिपति-बारिधि अनुकूला॥
लखी नरेस बात सब साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाँची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम-बिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिँ त जरिहि जनम भर छाती॥

दो०—देखी ब्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ॥३४॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलप तरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु पानी॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाव महँ माहुर देई॥
जौं अन्तहु अस करतब रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ॥
दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल-रौताई॥
छाड़हु बचन कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धाम धन धरनी। सत्यसन्ध कहँ तृन सम बरनी॥

दो०—मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, काल कहावत मोर॥३५॥

चहत न भरत भूपतहि भोरे। बिधि बस कुमति बसी उर तोरे॥

सो सब मोर पाप-परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिँ भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लागु करु सोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई॥
जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाइ न हारू लागी॥
दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदान।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसान॥३६॥
राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पङ्ख बिहँग बेहालू॥
हृदय मनाव भोर जनि होई। रामहिँ जाइ कहइ जनि कोई॥
उदय करहु जनि रवि रघुकुल-गुरु। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूप-प्रीति कैकइ-कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना-बेनु-सङ्ख-धुनि द्वारा॥
पढ़हिँ भाट गुन गावहिँ गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिँ सायक॥
मङ्गल सकल सोहाहिँ न कैसे। सहगामिनिहि बिभूषन जैसे॥
तेहि निसि नींद परी नहिँ काहू। राम-दरस लालसा उछाहू॥
दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिँ उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारण कवन बिसेखि॥३७॥
पछिले पहर भूप नित जागा। आजु हमहिँ बड़ अचरज लागा॥
जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पाई॥
गये सुमन्त्र तब राउर माहीँ। देखि भयावन जात डेराहीँ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा॥
पूछे कोउ न ऊतरु देई। गय जेहि भवन भूप-कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकइ नहिँ पूछी। बोली असुभ-भरी सुभ-छूछी॥
दो०—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम राम रटि भोर किय, कहइ न मरम महीस॥३८॥

आनहु रामहिँ बेगि बोलाई। समाचार तब पूछेहु आई॥
चलेउ सुमन्त्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥
सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहिँ बोलि कहिहिँ का राऊ॥
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूछहिँ सकल देखि मन मारे॥
समाधान करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर-कुल-टीका॥
राम सुमन्त्रहि आवत देखा। आदर कीन्ह पिता सम लेखा॥
निरखि बदन कहि भूप-रजाई। रघुकुल-दीपहि चलेउ लेवाई॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीँ। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीँ॥

दो०—जाइ दीख रघुबंस-मनि, नरपति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराज॥३९॥

सूखहिँ अधर जरहिँ सब अङ्गू। मनहुँ दीन मनि-हीन भुअङ्गू॥
सरुख समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई॥
करुना-मय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूछी मधुर बचन महतारी॥
मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिय जतन जेहि होइ निवारन॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिँ तुम्हार सकोचू॥

दो०—सुत सनेह इत बचन उत, सङ्कट परेउ नरेस।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेस॥४०॥

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥
जनु कठोर-पन धरे सरीरू। सिखइ धनुष-बिद्या बर बीरू॥
सब प्रसङ्ग रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसुकाइ भानुकुल-भानू। राम सहज आनन्द-निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मञ्जुल जनु बाग-बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़-भागी। जो पितु-मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

दो०—मुनि-गन मिलन बिसेष बन, सबहि भाँति हित मोर।

तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ॥४१॥
भरत प्रान-प्रिय पावहिँ राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौँ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा॥
सेवहिँ अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिँ बिष माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीँ। देखु बिचारि मातु मन माहीँ॥
अम्ब एक दुख मोहि बिसेखी। निपट बिकल नर-नायक देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउ धीर गुन-उदधि अगाधू। भा मोहि तेँ कछु बड़ अपराधू॥
जा तेँ मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥
दो०—सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जौँक जल बक्र-गति, जद्यपि सलिल समान ॥४२॥
रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट-सनेह जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराध जोग नहिँ ताता। जननी जनक बन्धु सुख दाता॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू। तुम्ह पितु-मातु बचन-रत अहहू॥
पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथे-पन जेहि अजस न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जहि दीन्हे। उचित न तासु निरादर कीन्हे॥
लागहिँ कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिँ मातु बचन सब भाये। जिमि सुरसरि-गत सलिल सुहाये॥
दो०—गइ मुरछा रामहिँ सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम-आगमन कहि, बिनय समय सम कीन्ह ॥४३॥
अवनिप अकनि राम पग धारे। धरि धीरज तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप राम निहारे॥
लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहिँ चितइ रहेउ नर नाहू। चला बिलोचन बारि प्रवाहू॥
सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिँ बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीँ। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीँ॥
सुमिरि महेसहि कहइ बहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर-दानी। आरति हरहु दीन जन जानी॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सब के हृदय, सो मति रामहिँ देहु ।
बचन मोर तजि रहहिँ घर, परिहरि सील सनेहु ॥४४॥

अजस होउ जग सुजस नसाऊ । नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊ ॥
सब दुख-दुसह सहावहु मोहीँ । लोचन ओट राम जनि होहीँ ॥
अस मन गुनइ राउ नहिँ बोला । पीपर पात सरिस मन डोला ॥
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ॥
देस काल अवसर अनुसारी । बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥
अति लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइँहि पूछेउँ माता । सुनि प्रसङ्ग भये शीतल गाता ॥

दो०—मङ्गल समय सनेह-बस, सोच परिहरिय तात ।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ता के । प्रिय पितु-मातु प्रान सम जाके ॥
आयसु पालि जनम-फल पाई । अइहउँ बेगिहि होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवउँ माँगी । चलिहउँ बनहिँ बहुरि पग लागी ॥
अस कहि राम गवन तब कीन्हा । भूप सोक-बस उतर न दीन्हा ॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥
सुनि भये बिकल सकल नर नारी । बेलि बिटप जिमि देखि दवारी ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई । बड़ बिषाद नहिँ धीरज होई ॥

दो०—मुख सुखाहिँ लोचन स्रवहिँ, सोक न हृदय समाइ ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी । जहँ तहँ देहिँ कैकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहिँ बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावक धरेऊ ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिष चाहत चीखा ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस-बेनु-बन आगी ॥
पालव बैठि पेड़ एहि काटा । सुख महँ सोक-ठाट धरि ठाटा ॥
सदा राम एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिल-पन ठाना ॥
सत्य कहहिँ कबि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगह अगाध दुराऊ ॥

निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

दो०—काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ॥४७॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥
जो हठि भयउ सकल-दुख-भाजन। अबला-बिवस ज्ञान-गुन-गाजन॥
एक धरम-परमिति पहिचाने। नृपहि दोस नहिं देहिं सयाने॥
सिबि दधीचि हरिचन्द कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर सम्मत कहहीं। एक उदास-भाय सुनि रहहीं॥
कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान-पियारे॥

दो०—चन्द चवइ बरु अनल-कन, सुधा होइ बिष-तूल।
सपनेहुँ कबहुँ कि करहिं किछु, भरत राम-प्रतिकूल॥४८॥

एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिष जेहीं॥
खरभर नगर सोच सब काहू। दुसह दाह उर मिटा उछाहू॥
बिप्र-बधू कुल-मान्य-जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
लगीं देन सिख सील सराही। बचन बान सम लागहिं ताही॥
भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आज बन देहू॥
कबहुँ न कियेहु सवतिया रेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू॥
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥

दो०—सीय कि पिय सँग परिहरिहि, लखन कि रहिहहिं धाम।
राज कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जिइहि बिनु राम॥४९॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलङ्क कोठि जनि होहू॥
भरतहि अवसि देहु जुवराजू। कानन काह राम कर काजू॥
नाहिं न राम राज के भूखे। धरम-धुरीन बिषय-रस रूखे॥
गुरु गृह बसहु राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू॥
जौं नहिं लगिहहु कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥

राम अविसि सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहँ लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोक-कलङ्क नसाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

जेहि भाँति सोक कलङ्क जाइ, उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहिँ जात बन, जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिन प्रान बिनु तनु, चन्द बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास-प्रभु बिनु, समुझि धौं जिय भामिनी॥

सो०—सखिन्ह सिखावन्ह दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥५०॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मति-मन्द अभागी॥
राज करत यह दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिँ पुर-नर-नारी। देहिँ कुचालिहि कोटिक गारी॥
जरहिँ बिषम-जर लेहिँ उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥
अति बिषाद-बस लोग लोगाई। गये मातु पहिँ राम गोसाँई॥
मुख प्रसन्न चित-चौगुन चाऊ। मिटा सोच जनि राखइ राऊ॥

दो०—नव गयन्द रघुबीर मन, राज अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि, उर अनन्द अधिकान॥५१॥

रघुकुल-तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु-पद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन-बसन निछावरि कीन्हे॥
बार बार मुख चुम्बति माता। नयन-नेह-जल पुलकित-गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम-रस पयद सुहाये॥
प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रङ्क धनद-पदवी जनु पाई॥
सादर सुन्दर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महँतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिँ लगन मुद-मङ्गलकारी॥
सुकृत-सील सुख-सीँव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, बृष्टि सरद-रितु स्वाति॥५२॥

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥
मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख-मकरन्द भरे श्रिय-मूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला॥
धरम-धुरीन धरम-गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिता दीन्ह मोहि कानन-राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद-मङ्गल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँद अम्ब अनुग्रह तोरे॥
दो०—बरष चारि-दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान॥५३॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि-नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु मापी॥
धरि धीरज सुत-बदन निहारी। गदगद-बचन कहति महँतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राज देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर-कुल भयउ कृसानू॥
दो०—निरखि राम रुख सचिव-सुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसङ्ग रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ॥५४॥
राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुन्दरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बन्धु-बिरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। सङ्कट-सोच बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय-धरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राम महँतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका॥
दो०—राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेस।

तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेस ॥ ५५ ॥

जौं केवल पितु-आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥
पितु-बन देव मातु बन-देवी । खग-मृग चरन-सरोरुह सेवी ॥
अन्तहु उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ॥
बड़ भागी बन अवध अभागी । जो रघुबंस-तिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहउँ सङ्ग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदय होइ सन्देहू ॥
पूत परम-प्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥

दो०—यह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५६॥

देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाईं ॥
अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरम-धुरीना ॥
अस बिचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई ॥
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ । करि अनाथ पुर परिजन गाऊँ ॥
सब कर आजु सुकृत फल बीता । भयउ कराल-काल बिपरीता ॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ॥
दारुन दुसह दाह उर ब्यापा । बरनि न जाहिं बिलाप-कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु पद-कमल जुग, बन्दि बैठि सिर नाइ ॥५७॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता । रूप-रासि पति-प्रेम पुनीता ॥
चलन चहत बन जीवन नाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु-प्रान कि केवल प्राना । बिधि करतब कछु जाइ न जाना ॥
चारु चरन नख लेखति धरनी । नूपुर-मुखर मधुर कबि बरनी ॥
मनहुँ प्रेम-बस बिनती करहीं । हमहिं सीय-पद जनि परिहरहीं ॥
मञ्जु बिलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम-महँतारी ॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी । सासु ससुर परिजनहिं पिआरी ॥

दो०—पिता जनक भूपाल-मनि, ससुर भानुकुल-भानु।
पति रविकुल-कैरव-विपिन, विधु गुन-रूप-निधानु ॥५८॥

मैँ पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप-रासि गुन-सील सुहाई॥
नयन-पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाई॥
कलप बेलि जिमि बहु विधि लाली। सीँचि सनेह-सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ विधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँग पीठ तजि गोद हिँडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जागवत रहऊँ। दीप-बाति नहिँ टारन कहऊँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चन्द किरन-रस रसिक चकोरी। रवि-रुख नयन सकइ किमि जोरी॥

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिँ, दुष्ट जन्तु बन भूरि।
विष-बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि-मूरि ॥५९॥

बन हित कोल-किरात किसोरी। रची बिरञ्चि विषय-सुख भोरी॥
पाहन-कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिँ कलेस न कानन काऊ॥
कै तापस-तिय कानन-जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥
सुर-सर सुभग बनज-बनचारी। डाबर जोग कि हंस कुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैँ सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौँ सिय भवन रहइ कह अम्बा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलम्बा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय-बानी। सील-सनेह-सुधा जनु सानी॥

दो०—कहि प्रिय बचन विवेक-मय, कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि विपिन गुन-दोष ॥६०॥

मातु समीप कहत सकुचाहीँ। बोले समउ समुझि मन माहीँ॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौँ चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि तेँ अधिक धरम नहिँ दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझायेहु मृदुबानी॥

कहउँ सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु-हित राखउँ तोही॥

दो०—गुरु-स्रुति-सम्मत धरम-फल, पाइय बिनहिं कलेस।
हठ बस सब सङ्कट सहे, गालव नहुष-नरेस॥६१॥

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवनि सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेम-बस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा॥
कानन कठिन भयङ्कर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पदत्राना॥
चरन-कमल-मृदु-मञ्जु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥

दो०—भूमि-सयन बलकल-बसन, असन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल॥६२॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट-बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल-कराल बिहग बन घोरा। निसिचर-निकर नारि-नर-चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये॥
हंस-गवनि तुम्ह कानन जोगू। सुनि अपजस मोहि देइहि लोगू॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन-पयोधि मराली॥
नव-रसाल-बन बिहरन-सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चन्द-बदनि दुख कानन भारी॥

दो०—सहज सुहृद-गुरु-स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि॥६३॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल-सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद-चन्द-निसि जैसे॥
उतर न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रान पति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर-नरक समान ॥६४॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक-समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु बदन निहारे ॥
दो०—खग मृग-परिजन नगर-बन, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन सम, परन-साल सुख-मूल ॥६५॥
बन-देवी बन-देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु सँग मञ्जु मनोज तुराई ॥
कन्द-मूल-फल अमिय अहारू। अवध-सौध सत सरिस पहारू ॥
छिन छिन प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपा निधाना ॥
अस जिय जानि सुजान-सिरोमनि। लेइअ सङ्ग मोहि छाड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुना-मय उर-अन्तरजामी ॥
दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत न जानिये प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥६६॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिन छिन चरन-सरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग-जनित सकल स्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
स्रमकन-सहित स्याम-तनु देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु-मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघ-बधुहि जिमि ससक सियारा ॥

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥
दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु विषम-बियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर प्रान॥६७॥
अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन-बियोग न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना॥
कहेउ कृपाल भानुकुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन-गमन समाजू॥
कहि प्रिय-बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु-पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन-बिधु जोइहि॥
दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखिहौं गात॥६८॥
लखि सनेह कातर महँतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेह न जाइ बखाना॥
तब, जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
तजब छोभ जनि छाड़िअ छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहउँ बखानी॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गङ्ग-जमुन-जलधारा॥
दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद-पदुम सिर, अतिहित बारहि बार॥६९॥
समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलपि बदन उठि धाये॥
कम्प-पुलक-तन, नयन-सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल तें काढ़े॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा॥
राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे

बोले बचन राम नय-नागर । सील सनेह सरल सुख-सागर ॥
तात प्रेम-बस जनि कदराहू । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय ॥७०॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु-पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं । राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहँ परइ दुसह दुख-भारू ॥
रहहु करहु सब कर परतोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति बिचारी । सुनत लखन भये ब्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

दो०—उतर न आवत प्रेम-बस, गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ ॥७१॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाँई । लागि अगम अपनी कदराई ॥
नर-बर धीर धरम-धुर-धारी । निगम नीति कहँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला । मन्दर मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निपुनाई ॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबन्धु उर-अन्तरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरन रत होई । कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ॥

दो०—करुनासिन्धु सुबन्धु के, सुनि मृदु बचन बिनीत ।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥७२॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी । भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥
हरषित बदन मातु पहिं आये । मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये ॥
जाइ जननि-पग नायउ माथा । मन रघुनन्दन-जानकि साथा ॥
पूछे मातु मलिन-मन देखी । लखन कही सब कथा बिसेखी ॥

गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह-बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ सङ्ग बिधि कहिहि कि नाहीं॥
दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय, रूप-सुसील-सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ॥७३॥
धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता-राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू। तहइँ दिवस जहँ भानु-प्रकासू॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साँई। सेइअहि सकल प्रान की नाँई॥
राम प्रान-प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥
अस जिय जानि सङ्ग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
दो०—भूरि भाग भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन राम-पद ठाउँ॥७४॥
पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति-भगति जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम-बिमुख सुत ते हित जानी॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम-सीय पद सहज सनेहू॥
राग रोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। संग पितु-मातु राम-सिय जासू॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

हरिगीतिका-छन्द।

उपदेस यह जेहि तात तुम्हरे, राम-सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख, सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहि सिख देइ आयसु, दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय-रघुबीर-पद नित नित नई॥
सो०—मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत सङ्कित हृदय।

बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भाग-बस ॥७५॥
गये लषन जहँ जानकि नाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बन्दि राम-सिय-चरन सुहाये । चले सङ्ग नृप-मन्दिर आये ॥
कहहिँ परसपर पुर-नर नारी । भलि बनाय बिधि बात बिगारी ॥
तन-कृस मन-दुख बदन-मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥
कर मीजहिँ सिर धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पङ्ख बिहँग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषाद अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन राम पगु धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥
दो०—सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिँ बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ ॥७६॥
सकइ न बोलि बिकल नर नाहू । सोक-जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीस पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीस आयसु मोहि दीजै । हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू । जस जग जाइ होइ अपबादू ॥
सुनि सनेह-बस उठि नरनाहा । बैठारे रघुपति गहि बाहा ॥
सुनहु तात तुम्ह कहँ सुनि कहहीं । राम चराचर-नायक अहहीं ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईस देइ फल हृदय बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सब कोई ॥
दो०—और करइ अपराध कोउ, और पाव फल-भोग ।
अति बिचित्र भगवन्त गति, को जग जानइ जोग ॥७७॥
राय राम राखन हित लागी । बहुत उपाय किये छल त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने । धरम धुरन्धर धीर सयाने ॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाये । सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥
सचिव-नारि गुरु-नारि सयानी । सहित सनेह कहहिँ मृदु बानी ॥
तुम्ह कहँ तो न दीन्ह बनबासू । करहु जो कहहिँ ससुर-गुरु-सासू ॥
दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि ।
सरद-चन्द्र-चन्दिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥

सीय सकुच बस उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥
नृपहि प्रान-प्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहिँ जान बन कहिहि न काऊ ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहि बचन बान सम लागे। करहिँ न प्रान पयान अभागे ॥
लोग बिकल मुरछित नरनाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू ॥
राम तुरत मुनि-बेष बनाई। चले जनक जननिहि सिर नाई ॥
दो०—सजि बन-साज-समाज सब, बनिता बन्धु समेत।
बन्दि बिप्र गुरु-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥७९॥
निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े।
कहि प्रिय बचन सकल समुझाये। बिप्र बृन्द रघुबीर बोलाये ॥
गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर-दान-बिनय बस कीन्हे ॥
जाचक दान मान सन्तोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥
दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरुहि सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै सार सँभार गोसाँई। करबि जनक-जननी की नाँई ॥
बारहिँ बार जोरि जुग पानी। कहत राम सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि ते रहइ भुआल सुखारी ॥
दो०—मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होहिँ दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब; पुरजन परम प्रबीन ॥८०॥
यहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुरु-पद-पदुम हरषि सिर नावा ॥
गनपति गौरि गिरीस मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ॥
राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लङ्क अवध अति सोकू। हरष-बिषाद बिबस सुरलोकू ॥
गइ मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमन्त्र कहन अस लागे ॥
राम चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥
एहि ते कवन ब्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजिहि तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लेइ रथ सङ्ग सखा तुम्ह जाहू ॥
दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनक-सुता सुकुमारि।

रथ चढ़ाइ देखराइ बन, फिरेहु गये दिन चारि ॥८१॥
जौं नहिँ फिरहिँ धीर दोउ भाई। सत्यसन्ध दृढ़व्रत रघुराई ॥
तब तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस-किसोरी ॥
जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसर पाई ॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिय बन बहुत कलेसू ॥
पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदम्बा। फिरइ त होइ प्रान अवलम्बा ॥
नाहिँ त मोर मरन परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा ॥
अस कहि मुरछि परे महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ ॥

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिर, रथ अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाइ ॥८२॥

तब सुमन्त्र नृप-बचन सुनाये। करि बिनती रथ राम चढ़ाये ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहि सिर नाई ॥
चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिन्धु बहुबिधि समुझावहिँ। फिरहिँ प्रेम-बस पुनि फिरि आवहिँ ॥
लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी ॥
घोर जन्तुसम पुर-नर-नारी। डरपहिँ एकहि एक निहारी ॥
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥

दो०—हय गय कोटिन्ह केलि-मृग, पुर-पसु चातक मोर।
पिक रथाङ्ग सुक सारिका, सारस हंस चकोर ॥८३॥

राम-बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ॥
नगर सफल-बन-गहबर भारी। खग-मृगबिपुल सकल नर नारी ॥
बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही ॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी ॥
सबहिँ बिचार कीन्ह मन माहीं। राम-लखन सिय बिनु सुख नाहीं ॥
जहाँ राम तहँ सबइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिँ काजू ॥
चले साथ अस मन्त्र दृढ़ाई। सुर-दुर्लभ सुख-सदन बिहाई ॥
राम-चरन-पङ्कज प्रिय जिन्हहीं। बिषयभोग-बस करहिँ कि तिन्हहीं ॥

दो०—बालक बृद्ध बिहाय गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥८४॥
रघुपति प्रजा प्रेम-बस देखी। सदय हृदय दुख भयउ बिसेखी ॥
करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइ अहि पीर पराई ॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाये। बहु बिधि राम लोग समुझाये ॥
किये धरम-उपदेस घनेरे। लोग प्रेम-बस फिरहिँ न फेरे ॥
सील-सनेह छाड़ि नहिँ जाई। असमञस-बस भे रघुराई ॥
लोग सोग-स्रम-बस गये सोई। कछुक देव-माया मति मोई ॥
जबहिँ जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिँ बाता ॥
दो०—राम-लखन-सिय जान चढ़ि, सम्भु-चरन सिर नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥८५॥
जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिँ पावहिँ। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिँ ॥
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक-समाजू ॥
एकहि एक देहिँ उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू ॥
निन्दहिँ आपु सराहहिँ मीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा ॥
एहि बिधि करत प्रलाप-कलापा। आये अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिँ प्राना ॥
दो०—राम-दरस-हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक-कोकी-कमल, दीन बिहीन तमारि ॥८६॥
सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरष बिसेखी ॥
लखन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिँ सहित सुख पायउ रामा ॥
गङ्ग सकल मुद-मङ्गल-मूला। सब सुख-करनि हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथा-प्रसङ्गा। राम बिलोकहिँ गङ्ग-तरङ्गा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुधनदी महिमा अधिकाई ॥
मज्जन कीन्ह पन्थ स्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ ॥

सुमिरत जाहि मिटइ स्रम-भारू । तेहि स्रम यह लौकिक ब्यवहारू ॥
दो०—सुद्ध सच्चिदानन्द-मय, कन्द भानुकुल-केतु ।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु ॥८७॥
यह सुधि गुह-निषाद जब पाई । मुदित लिये प्रिय-बन्धु बोलाई ॥
लिय फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हिय हरष अपारा ॥
करि दंडवत भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज-सनेह-बिबस रघुराई । पूछी कुसल निकट बैठाई ॥
नाथ कुसल पद-पङ्कज देखे । भयउँ भाग-भाजन जन लेखे ॥
देव धरनि-धन-धाम तुम्हारा । मैं जन नीच सहित परिवारा ॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ । थापिय जन सब लोग सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥
दो०—बरष चारि-दस बास बन, मुनि-ब्रत-बेष-अहार ।
ग्राम-बास नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख-भार ॥८८॥
राम-लखन-सिय रूप निहारी । कहहिं सप्रेम ग्राम नर-नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा । लोयन लाहु हमहिं बिधि दीन्हा ॥
तब निषाद-पति उर अनुमाना । तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥
लेइ रघुनाथहि ठाँउ देखावा । कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहार घर आये । रघुबर सन्ध्या करन सिधाये ॥
गुह सँवारि साथरी डसाई । कुस-किसलय-मय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल-मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि आनी ॥
दो०—सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कन्द-मूल-फल खाइ ।
सयन कीन्ह रघुबंस-मनि, पाय पलोटत भाइ ॥८९॥
उठे लखन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥
गुह बुलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भयउ प्रेम-बस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जल लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥

भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर पावा॥
मनि-मय रचित चारु चौबारे। जनु रति-पति निज-हाथ सँवारे॥
दो०—सुचि सुबिचित्र सुभोग-मय, सुमन सुगन्ध सुबास।
पलँग-मञ्जु मनि-दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥९०॥
बिबिध बसन उपधान तुराई। छीर-फेन मृदु बिसद सुहाई॥
तहँ सिय-राम सयन निसि करहीं। निज छबि रति-मनोज मदहरहीं॥
ते सिय-राम साथरी सोये। स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाँई। महि सोवत तेइ राम गोसाँई॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस-सखा रघुराऊ॥
रामचन्द्र पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम-प्रधान सत्य कह लोगू॥
दो०—कैकय-नन्दिनि मन्द-मति, कठिन कुटिल-पन कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन-जानकिहि, सुख अवसर दुख दीन्ह॥९१॥
भइ दिनकर-कुल-बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥
भयउ बिषाद निषादहि भारी। रामसीय महि-सयन निहारी॥
बोले लखन मधुर मृदु-बानी। ज्ञान-बिराग-भगतिरस-सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज-कृत-करम-भोग सुनु भ्राता॥
जोग बियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा॥
जनम मरन जहँ लगि जग-जालू। सम्पति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह-मूल परमारथ नाहीं॥
दो०—सपने होइ भिखारि नृप, रङ्क नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपञ्च जिय जोइ॥९२॥
अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोह-निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग-जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपञ्च-बियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास बिरागा॥
होइ बिबेक मोह-भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

सखा परम-परमारथ एहू । मन-क्रम-बचन राम-पद नेहू ॥
राम-ब्रह्म परमारथ-रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गत भेदा । कहि नित नेति निरूपहिँ बेदा ॥
दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिँ जग जाल ॥९३॥
सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय-रघुबीर चरन-रत होहू ॥
कहत राम-गुन भा भिनुसारा । जागे जग-मङ्गल-सुख-दाता ॥
सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बट-छीर मँगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये । देखि सुमन्त्र नयन-जल छाये ॥
हृदय दाह अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रथ जाहु राम के साथा ।
बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखन-राम-सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सकोच निबेरी ॥
दो०—नृप अस कहेउ गोसाँइ जस, कहिय करउँ बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥
तात कृपा करि कीजिय सोई । जातें अवध अनाथ न होई ॥
मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम-मत तुम्ह सब सोधा ॥
सिबि दधीच हरिचन्द नरेसा । सहे धरम-हित कोटि कलेसा ॥
रन्तिदेव बलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि सङ्कट नाना ॥
धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ-पुर अपजस छावा ॥
सम्भावित कहँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिये उतर फिरि पातक लहऊँ ॥
दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि ।
चिन्ता कवनिहुँ बात कै, तात करिय जनि मोरि ॥९५॥
तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे । बिनती करउँ तात कर जोरे ॥
सब बिधि सोइ करतव्य तुम्हारे । दुख न पाव पितु सोच हमारे ॥
सुनि रघुनाथ सचिव सम्बादू । भयउ सपरिजन बिकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटुबानी । प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेस कहिय जनि जाई॥
कह सुमन्त्र पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहिं करनीया॥
नतरु निपट अवलम्ब बिहीना। मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥
दो०—मइके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मन मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान॥९६॥
बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु सँदेस सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥
सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटइ खभारू॥
सुनि पति-बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥
प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द तजि जाई॥
पतिहि प्रेम-मय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु-ससुर-सरिस हितकारी। उतर देउँ फिरि अनुचित भारी॥
दो०—आरति-बस सनमुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरज-सुत-पद-कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥९७॥
पितु-बैभव-बिलास मैं डीठा। नृप-मनि-मुकुट मिलत पदपीठा॥
सुख-निधान अस पितु-गृह मोरे। पिय बिहीन मन भाव न भोरे॥
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारि-दस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध-सिंहासन आसन देई॥
ससुर एतादृस अवध-निवासू। प्रिय परिवार मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद-पदुम-परागा। मोहि कोउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥
अगम पन्थ बन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरङ्ग बिहङ्गा। मोहि सब सुखद प्रानपति सङ्गा॥
दो०—सासु ससुर सन मोरि हुति, बिनय करबि परि पाय।
मोरि सोच जनि करिय कछु, मैं बन सुखी सुभाय॥९८॥
प्राननाथ प्रिय-देवर साथा। बीर-धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग स्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिय जनि भोरे॥
सुनि सुमन्त्र सिय-सीतल-बानी। भयउ बिकल जनु फनि-मनि-हानी॥

नयन सूझ नहिँ सुनइ न काना । कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ॥
राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती । तदपि होति नहिं सीतलि छाती ॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे । उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे ॥
मेटि जाइ नहिँ राम-रजाई । कठिन करम-गति कछु न बसाई ॥
राम-लखन-सिय-पद सिर नाई । फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई ॥

दो०—रथ हाँकेउ हय राम-तन, हेरि हेरि हिहिनाहिँ ।
देखि निषाद विषाद-बस, धुनहिँ सीस पछिताहिँ ॥ ९९ ॥

जासु वियोग विकल पसु ऐसे । प्रजा मातु पितु जीहहिँ कैसे ॥
बरबस राम सुमन्त्र पठाये । सुरसरि-तीर आप तब आये ॥
माँगी नाव न केवट आना । कहइ तुम्हार मरम मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहँ सब कहई । मानुष-करनि-मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउँ मुनि-घरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू । नहिँ जानउँ कछु अउर कबारू ।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद-पदुम पखारन कहहू ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

पद-कमल धोइ चढ़ाइ नाव न, नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि-आन दसरथ-सपथ सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहु लखन पै जब,-लगि न पाय पखारिहौं ।
तबलगि न तुलसीदास-नाथ कृपाल पार उतारिहौं ॥ ४ ॥

सो०—सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहँसे करुना-अयन, चितइ जानकी-लखन तन ॥ १०० ॥

कृपासिन्धु बोले मुसुकाई । सोइ करु जेहि तव नाव न आई ॥
बेगि आनु जल पाय पखारू । होत बिलम्ब उतारहि पारू ॥
जासु नाम सुमिरत एकबारा । उतरहिँ नर भव सिन्धु अपारा ॥
सोइ कृपाल केवटहि निहोरा । जेहिजगकियतिहु पगहु ते थोरा ॥
पद-नख निरखि देवसरि हरषी । सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट राम-रजायसु पावा । पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा । चरन-सरोज पखारन लागा ॥

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य-पुञ्ज कोउ नाहीं॥
दो०—पद पखारि जल पानि करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारि करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार॥१०१॥
उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जानन-हारी। मनि-मुंदरी मन-मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा॥
दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहि कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बर देइ॥१०२॥
तब मज्जन करि रघुकुल-नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर-सग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सिय बिनय प्रेम-रस-सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥
सुनु—रघुबीर-प्रिया बैदेही। तब प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहि बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे॥
तुम्ह जो हमहिं बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देवि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥
दो०—प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना, सुजस रहिहि जग छाइ॥१०३॥
गङ्ग बचन सुनि मङ्गल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उर दाहू॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुल-मनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पन्थ देखाई। करि दिन चारि चरन-सेवकाई॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परन-कुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देव रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर-दोहाई॥

गङ्गा-तरण ।

सहज-सनेह राम लखि तासू । सङ्ग लीन्ह गुह हृदय-हुलासू ॥
पुनि गुह ज्ञाति बोलि सब लीन्हे । करि परितोष बिदा तब कीन्हे ॥
दो०—तब गनपति-सिव-सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ ।
सखा-अनुज-सिय सहित बन, गवन कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥
तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू । लखन-सखा सब कीन्ह-सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराज दीख प्रभु जाई ॥
सचिव-सत्य श्रद्धा-प्रिय-नारी । माधव-सरिस-मीत हितकारी ॥
चारि-पदारथ भरा भँडारू । पुन्य-प्रदेस देस अति चारू ॥
छेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा । सपनेहुँ नहिँ प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल-तीरथ बर-बीरा । कलुष-अनीक-दलन रनधीरा ॥
सङ्गम-सिंहासन सुठि सोहा । छत्र-अखयबट मुनि-मन-मोहा ॥
चँवर जमुन अरु गङ्ग तरङ्गा । देखि होहिँ दुख-दारिद भङ्गा ॥
दो०—सेवहिँ सुकृती साधु सुचि, पावहिँ सब मन-काम ।
बन्दी बेद-पुरान-गन, कहहिँ बिमल गुन-ग्राम ॥१०५॥
को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ । कलुष-पुञ्ज-कुञ्जर मृगराऊ ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा । सुखसागर रघुबर सुख पावा ॥
कहि सिय लखनहिँ सखहि सुनाई । श्रीमुख तीरथराज बड़ाई ॥
करि प्रनाम देखत बन बागा । कहत महातम अति अनुरागा ॥
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी । सुमिरत सकल सुमङ्गल—देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव-सेवा । पूजि जथा-बिधि तीरथ-देवा ॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिँ आये । करत दंडवत मुनि उर लाये ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई । ब्रह्मानन्द-रासि जनु पाई ॥
दो०—दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनन्द अस जानि ।
लोचन-गोचर सुकृत-फल, मनहुँ किये बिधि आनि ॥१०६॥
कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे । पूजि प्रेम-परिपूरन कीन्हे ॥
कन्द मूल फल अङ्कुर नीके । दिये आनि मुनि मनहुँ अमी के ॥
सीय लखन जन सहित सुहाये । अति रुचि राम मूल फल खाये ॥
भये बिगत-स्रम राम सुखारे । भरद्वाज मृदु-बचन उचारे ॥
आजु सुफल तप तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥

सफल सकल सुभ-साधन-साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू॥
लाभ-अवधि सुख-अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज-पद-सरसिज सहज सनेहू॥
दो०—करम बचन मन छाड़ि-छल, जबलगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किये कोटि उपचार॥ १०७॥
सुनि मुनि बचन राम सकुचाने। भाव भगति आनन्द अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥
सो बड़ सो सब गुन-गन-गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन-अगोचर सुख अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयाग-निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आस्रम सब आये। देखन दसरथ सुअन सुहाये॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन-लाहू॥
देहिं असीस परम-सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥
दो०—राम कीन्ह बिस्रामनिसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन-जन, मुदित मुनिहिं सिर नाइ॥१०८॥
राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मग दीख हमारा॥
मुनि बटु चारि सङ्ग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनाम रिषि-आयसु पाई। प्रमुदित-हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट निकसहिं जब जाई। देखहिं दरस-नारि-नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम-फल पाई। फिरहिं दुखित मन सङ्ग पठाई॥
दो०—बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाइ मनकाम।
उतरि नहाये जमुन-जल, जो सरीर सम स्याम॥ १०९॥
सुनत तीर-बासी नर-नारी। धाये निज निज काज बिसारी॥
लखन-राम-सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महँ बय-बिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने॥

सकल कथा तिन्ह सबहिँ सुनाई। बनहिँ चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्हि भल नाहीं॥
तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज-पुञ्ज लघु-बयस सुहावा॥
कबि-अलखित-गति वेष बिरागी। मन क्रम बचन राम-अनुरागी॥
दो०—सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल, दसा न जाइ बखानि॥११०॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रङ्क जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन कह सब कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय-चरन-धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम-सनेही॥
पियत नयन-पुट रूप-पियूषा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥
राम-लखन-सिय रूप निहारी। होहिँ सनेह बिकल नर-नारी॥
दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावन दीन्ह।
राम-रजायसु सीस धरि, भवन गवन तेइँ कीन्ह॥१११॥
पुनि सिय-राम-लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनाम बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥
पथिक अनक मिलहिँ मग जाता। कहहिँ सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राज-लच्छन सब अङ्ग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहि पाये। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाये॥
अगम पन्थ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि बन,जाइ न जोई। हम सँग चलहिँ जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहिँ सिर नाई॥
दो०—एहि बिधि पूछहिँ प्रेम-बस, पुलक-गात जल नैन॥
कृपासिन्धु फेरहिँ, तिन्हहिँ, कहि बिनीत मृदु-बैन॥११२॥
जे पुर गाँव बसहिँ मग माहीँ। तिन्हहिँ नाग-सुर नगर सिहाहीँ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्य-मय परम सुहाये॥
जहँ जहँ राम-चरन चलि जाहीँ। तिन्ह समान अमरावति नाहीँ॥

पुन्य-पुञ्ज मग-निकट-निवासी । तिन्हहिँ सराहहिँ सुरपुर-बासी ॥
जे भरि नयन बिलोकहिँ रामहिँ । सीता-लखन-सहित घन-स्यामहिँ ॥
जे सर-सरित राम अवगाहहिँ । तिन्हहिँ देव-सर-सरित सराहहिँ
जेहि तरु तर प्रभु बैठहिँ जाई । करहिँ कल्प तरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम-पद-पदुम-परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा ॥

दो०—छाँह करहिँ घन बिबुध-गन, बरषहिँ सुमन सिहाहिँ ।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, राम चले मग जाहिँ ॥११३॥

सीता-लखन-सहित रघुराई । गाँव निकट जब निकसहिँ जाई ॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर-नारी । चलहिँ तुरत गृह-काज बिसारी ॥
राम-लखन-सिय रूप निहारी । पाइ नयन फल होहिँ सुखारी ॥
सजल-बिलोचन पुलक सरीरा । सब भये मगन देखि दोउ बीरा ॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रङ्कन्ह सुरमनि-ढेरी ॥
एकन्हि एक बोलि सिख देहीं । लोचन लाहु लेहु छन एहीं ॥
रामहिँ देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहिँ सँग लागे ॥
एक नयन-मग छबि उर आनी । होहिँ सिथिल तन-मन-बरबानी ॥

दो०—एक देखि बट-छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिँ गँवाइय छिनक स्रम, गवनब अबहिँ कि प्रात ॥११४॥

एक कलस भरि आनहिँ पानी । अँचइय नाथ कहहिँ मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपाल सुसील बिसेखी ॥
जानी स्रमित सीय मन माहीं । घरिक बिलम्ब कीन्ह बट-छाहीं ॥
मुदित नारि नर देखहिँ सोभा । रूप अनूप नयन मन लोभा ॥
एक-टक सब सोहहिँ चहुँ ओरा । रामचन्द्र-मुख-चन्द्र चकोरा ॥
तरुन-तमाल-बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मन मोहा ॥
दामिनि-बरन लखन सुठि नीके । नख-सिख सुभग भावते जी के ॥
मुनि-पट कटिन्ह कसे तूनीरा । सोहहिँ कर-कमलनि धनु-तीरा ॥

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर-भुज-नयन बिसाल ।
सरद-परब-बिधु-बदन बर, लसत स्वेद-कन-जाल ॥११५॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन सिय सुन्दरताई । सब चितवहिँ चित मन मति लाई ॥

थके नारि-नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी-मृग देखि दिया से॥
सीय समीप ग्राम-तिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिँ पाये। कहहिँ बचन मृदु सरलसुभाये॥
राजकुमारि बिनय हम करहीँ। तिय-सुभाय कछु पूछत डरहीँ॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलग न मानबि जानि गँवारी॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तेँ लहि दुति मरकत सोने॥

दो०—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा-अयन।
सरद-सर्बरीनाथ-मुख, सरद-सरोरुह-नयन॥११६॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिँ तुम्हारे॥
सुनि सनेह-मय मञ्जुल-बानी। सकुची सिय मन महँ मुसुकानी॥
तिन्हहिँ बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बर-बरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नयनी। बोली मधुर बचन पिक-बयनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन-बिधु अञ्चल ढाँकी। पिय-तन चितइ भौँह करि बाँकी॥
खञ्जन मञ्जु तिरीछे नयननि। निज-पति कहेउ तिन्हहिँ सिय सयननि॥
भईं मुदित सब ग्राम-बधूटी। रङ्कन्ह राय-रासि जनु लूटी॥

दो०—अति सप्रेम सिय पाय परि, बहु बिधि देहिँ असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि-सीस॥११७॥

पारबती सम पति प्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिय कर जोरी। जौँ एहि मारग फिरिय बहोरी॥
दरसन देब जानि निज-दासी। लखी सीय सब प्रेम-पियासी॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी॥
तबहिँ लखन रघुबर रुख जानी। पूछेउ मग लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि-नर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥
मिटा मोद मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥
समुझि करम-गति धीरज कीन्हा। सोधि सुगम मग तिन्ह कहि दीन्हा॥

दो०—लखन-जानकी-सहित तब, गवन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥११८॥

फिरत नारि नर अति पछिताहीँ। दइहि दोष देहिँ मन माहीँ॥

सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥
निपट निरङ्कुस निठुर निसङ्कू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलङ्कू ॥
रूख-कल्पतरु सागर-खारा। तेहि पठये बन राजकुमारा ॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्हि बादि बिधि भोग-बिलासू ॥
ये बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥
ये महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग-सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुबर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल-धाम रचि रचि स्रम कीन्हा ॥

दो०—जौं ये मुनि-पट-धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार ॥११९॥

जौं ये कन्द मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहहिं ये सहज सुहाये। आपु प्रगट भय बिधि न बनाये ॥
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु खोजि भुअन दस-चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी ॥
इन्हहिं देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावन लागा ॥
कीन्ह बहुत स्रम ऐक न आये। तेहि इरिषा बन आनि दुराये ॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि पुन्य पुञ्ज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ॥

दो०—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥१२०॥

नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं ॥
मृदु पद-कमल कठिन मग जानी। गहबरि हृदय कहहिं बर-बानी ॥
परसत मृदुल-चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जौं जगदीस इन्हहिं बन दीन्हा। कस न सुमन-मय मारग कीन्हा ॥
जौं माँगा पाइय बिधि पाहीं। ये रखियहि सखि आँखिन्ह माहीं ॥
जे नर-नारि न अवसर आये। तिन्ह सिय राम न देखन पाये ॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनम-फल पाई ॥

दो०—अबला-बालक-बृद्धजन, कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेम-बस लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं ॥१२१॥

गाँव गाँव अस होइ अनन्दू। देखि भानुकुल-कैरव-चन्दू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिँ। ते नृप-रानिहि दोष लगावहिँ॥
कहहिँ एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिँ जेइ लोचन लाहू॥
कहहिँ परसपर लोग लोगाई। बातैं सरल सनेह सुहाई॥
ते पितु-मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगर जहाँ ते आये॥
धन्य सो देस-सैल-बन-गाऊँ। जहँ जहँ जाहिँ धन्य सोइ ठाऊँ॥
सुख पायउ बिरञ्चि रचि तेही। ये जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम-लखन-पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥
दो०—एहि बिधि रघुकुल-कमल-रबि, मग-लोगन्ह सुख देत।
जाहिँ चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत॥१२२॥
आगे राम लखन बने पाछे। तापस-बेष बिराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु-मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध-बिधु बिच रोहिनि सोही॥
प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय-राम-पद अङ्क बराये। लखन चलहिँ मग दाहिन लाये॥
राम-लखन-सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग-मृग-मगन देखि छबि होहीँ। लिये चोरि चित राम बटोही॥
दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक-प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव-मग अगम अनन्द तेइ, बिनु स्रम रहे सिराइ॥१२३॥
अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहिँ लखन-सिय-राम बटाऊ॥
राम-धाम-पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥
तब रघुबीर स्रमित सिय जानी। देखि निकट बट सीतल पानी॥
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥
देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकि आस्रम प्रभु आये॥
राम दीख मुनि-बास सुहावन। सुन्दर गिरि कानन जल पावन॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुञ्जत मञ्जु मधुप रस भूले॥
खग-मृग-बिपुल कोलाहल करहीँ। बिरहित बैर मुदित मन चरहीँ॥
दो०—सुचि सुन्दर आस्रम निरखि, हरषे राजिव-नैन।

सुनि रघुबर आगमन मुनि, आगे आयउ लेन ॥ १२४ ॥
मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्रवर दीन्हा॥
देखि राम-छबि नयन जुड़ाने। करि सनमान आस्रमहिँ आने॥
मुनिबर अतिथि प्रान-प्रिय पाये। तब मुनि आसन दिये सुहाये॥
कन्द मूल फल मधुर मँगाये। सिय-सौमित्र-राम फल खाये॥
बालमीकि मन आनँद भारी। मङ्गल-मूरति नयन निहारी॥
तब कर-कमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन सुखदाई॥
तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी॥

दो०—तात-बचन पुनि मातु-हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य प्रभाउ॥ १२५॥

देखि पाय मुनि-राय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेग न पावइ कोई॥
मुनि-तापस जिन्ह तेँ दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मङ्गल-मूल बिप्र-परितोषू। दहइ कोटि-कुल भूसुर रोषू॥
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला। बास करउँ कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि-ज्ञानी॥
कस न कहहु अस रघुकुल-केतू। तुम्ह पालक सन्तत स्रुति-सेतू॥

हरिगीतिका-छन्द।

स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख, पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस-सीस-अहीस महि-धर, लखन सचराचर-धनी।
सुर-काज धरि नर-राज तनु चले, दलन खल-निसिचर-अनी॥५॥

सो०—राम सरूप तुम्हार, बचन-अगोचर बुद्धि-पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥ १२६॥

जग-पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि-हरि-सम्भु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिँ मरम तुम्हारा। अउर तुम्हहिँ को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिँ तुम्हइ होइ जाई॥

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिँ रघुनन्दन। जानहिँ भगत-भगत-उर-चन्दन॥
चिदानन्द-मय देह तुम्हारी। बिगत-बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेउ सन्त-सुर-काजा। कहहु करहु जस प्राकृत-राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिँ बुध होहिँ सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा॥

दो०—पूछेहु मोहि कि रहउ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिँ देखावउँ ठाउँ॥१२७॥

सुनि मुनि बचन प्रेम-रस-साने। सकुचि राम मन महँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिँ बहोरी। बानी मधुर अमिय-रस बोरी॥
सुनहु राम अब कहहुँ निकेता। जहाँ बसहु सिय-लखन समेता॥
जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिँ निरन्तर होहिँ न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिँ दरस-जलधर अभिलाखे॥
निदरहिँ सरित-सिन्धु-सर भारी। रूप-बिन्दु-जल होहिँ सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बन्धु-सिय-सह रघुनायक॥

दो०—जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन-गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु॥१२८॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहिं निबेदित भोजन करहीं। प्रभु-प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिँ सुर-गुरु-द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिँ राम-पद-पूजा। राम-भरोस हृदय नहिँ दूजा॥
चरन राम-तीरथ चलि जाहीँ। राम बसहु तिन्ह के मन माहीँ॥
मन्त्रराज नित जपहिँ तुम्हारा। पूजहिँ तुम्हहिँ सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिँ बिधि नाना। बिप्र जेँवाइ देहिँ बहु दाना॥
तुम्ह तेँ अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भाय सेवहिँ सनमानी॥

दो०—सब करि माँगहिँ एक फल, राम-चरन-रति होउ।
तिन्ह के मन-मन्दिर बसहु, सिय-रघुनन्दन दोउ॥१२९॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिँ माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय-बचन-बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं पर-नारी। धन पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी। दुखित होहिं पर-बिपति-बिसेषी ॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान-पियारे। तिन्ह के मन सुभ-सदन-तुम्हारे ॥

दो०—स्वामि-सखा-पितु-मातु-गुरु- जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन-मन्दिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र-धेनु-हित सङ्कट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धन धरम बड़ाई। प्रिय-परिवार सदन-सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउ लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥
सरग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ॥
करम-बचन-मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

दो०—जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज-गेह ॥१३१॥

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये ॥
कह मुनि सुनहु भानुकुल-नायक। आस्रम कहउँ समय-सुख-दायक ॥
चित्रकूट-गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ॥
सैल सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू ॥
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि-प्रिया निज तप-बल आनी ॥
सुरसरि-धार नाउँ मन्दाकिनि। जो सब पातक-पोतक-डाकिनि ॥
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं ॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू ॥

दो०—चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाने सरित-बर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अवठाहर ठाटू ॥

लखन दीख पय उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष-कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठभेरी॥
अस कहि लखन ठाउँ देखरावा । थल बिलोकि रघुवर सुख पावा॥
रमेउ राम मन देवन्ह जाना । चले सहित सुर थपति-प्रधाना॥
कोल-किरात-वेष सब आये । रचे परन-तृन-सदन सुहाये॥
बरनि न जाहिँ मञ्जु दुइ साला । एक ललित लघु एक विसाला॥

दो०—लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत ।
सोह मदन मुनि वेष जनु, रति-रितुराज-समेत ॥१३३॥

अमर नाग किन्नर दिसिपाला । चित्रकूट आये तेहि काला॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू । मुदित देव लहि लोचन लाहू॥
बरषि सुमन कह देव-समाजू । नाथ सनाथ भये हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये । हरषित निज निज सदन सिधाये॥
चित्रकूट रघुनन्दन छाये । समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनि-वृन्दा । कीन्ह दण्डवत रघुकुल-चन्दा॥
मुनि रघुबरहिँ लाइ उर लेहीँ । सुफल होन हित आसिष देहीँ॥
सिय-सौमित्रि-राम छबि देखहिँ । साधन सकल सफल करि लेखहिँ॥

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किये मुनि-वृन्द ।
करहिँ जोग जप जाग तप, निज आस्रमनि सुछन्द ॥१३४॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नव-निधि घर आई॥
कन्द मूल फल भरि भरि दोना । चले रङ्क जनु लूटन सोना॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहिँ पूछहिँ मग जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई । आइ सबन्हि देखे रघुराई॥
करहिँ जोहारि भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकहिँ अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । पुलक-सरीर नयन जल बाढ़े॥
राम सनेह मगन सब जाने । कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी । बचन बिनीत कहहिँ कर जोरी॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय ।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३५॥

धन्य भूमि बन पन्थ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहंग मृग कानन चारी। सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरस भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बास भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करबि सेवकाई। करि-केहरि-अहि-बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कन्दर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जहँ तहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब। सर निरझर भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

दो०—बेद-बचन मुनि-मन-अगम, ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक-बयन॥१३६॥

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किये सिर नाइ सिधाये। प्रभु गुन कहत सुनत घर आये॥
यहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर-मुनि-सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायक। तब तें भयउ बन मङ्गलदायक॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मञ्जु-बलित-बर-बेलि-बिताना॥
सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये॥
गुञ्ज मञ्जु-तर मधुकर-स्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥

दो०—नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, स्रवन-सुखद चित-चोर॥१३७॥

करि केहरि कपि कोल कुरङ्गा। बिगत बैर बिचरहिं सब सङ्गा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग-बृन्द बिसेखी॥
बिबुध-बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि राम बन सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर-कन्या। मेकल-सुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिन्धु नदी नद नाना। मन्दाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय-अस्त-गिरि अरु कैलासू। मन्दर मेरु सकल-सुर-बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहिं तेते॥
बिन्धि मुदित मन सुख न समाई। स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

दो०—चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन-जाति।

पुन्य-पुञ्ज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

नयनवन्त रघुवरहि बिलोकी । पाइ जनम-फल होहिं बिसोकी ॥
परसि चरन-रज अचर सुखारी । भये परम-पद के अधिकारी ॥
सो बन सैल सुभाय सुहावन । मङ्गल-मय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिय कवनि बिधि तासू । सुख-सागर जहँ कीन्ह निवासू ॥
पय-पयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय-लखन-राम रहे आई ॥
कहि न सकहिं सुखमा जसि कानन । जौं सत-सहस होहिं सहसानन ॥
सो मैं बरनि कहउँ बिधि केहीं । डाबर कमठ कि मन्दर लेहीं ॥
सेवहिं लखन करम-मन-बानी । जाइ न सील सनेह बखानी ॥

दो०—छिन छिन लखि सिय-राम-पद, जानि आपु पर नेह ।
करत न सपनेहुँ लखन चित, बन्धु-मातु-पितु-गेह ॥१३९॥

राम सङ्ग सिय रहति सुखारी । पुर-परिजन-गृह-सुरति बिसारी ॥
छिन छिन प्रिय बिधु-बदन निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर-कुमारी ॥
नाह नेह नित बढ़त बिलोकी । हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मन राम-चरन-अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रिय लागा ॥
परन-कुटी प्रिय प्रियतम सङ्गा । प्रिय-परिवार कुरङ्ग बिहङ्गा ॥
सासु-ससुर-सम मुनि-तिय मुनिबर । असन अमिय सम कन्द मूल फर ॥
नाथ साथ साथरी सुहाई । मयन-सयन-सय-सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू । तेहि कि मोहि सक विषय-बिलासू ॥

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृन सम विषय-बिलासु ।
राम-प्रिया जग जननि-सिय, कछु न आचरज तासु ॥१४०॥

सीय-लखन जेहि बिधि सुख लहहीं । सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लखन सिय अति सुख मानी ॥
जब जब राम अवध सुधि करहीं । तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत सनेह-सील-सेवकाई ॥
कृपा सिन्धु प्रभु होहिं दुखारी । धीरज धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सिय-लखन बिकल होइ जाहीं । जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ॥
प्रिया-बन्धु गति लखि रघुनन्दन । धीर कृपाल भगत-उर-चन्दन ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता । सुनि सुख लहहिं लखन अरु सीता ॥

दो०—राम-लखन-सीता सहित, सोहत परन-निकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची जयन्त समेत ॥१४१॥

जोगवहिँ प्रभु सिय लखनहिँ कैसे । पलक बिलोचन-गोलक जैसे ॥
सेवहिँ लखन सीय-रघुबीरहि । जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ॥
यहि बिधि प्रभु बन बसहिँ सुखारी । खग-मृग-सुर तापस हितकारी ॥
कहेउँ राम-बन-गवन सुहावा । सुनहु सुमन्त्र अवध जिमि आवा ॥
फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई । सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
मन्त्री बिकल बिलोकि निषादू । कहि न जाइ जस भयउ बिषादू ॥
राम राम सिय लखन पुकारी । परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पङ्ख बिहँग अकुलाहीं ॥

दो०—नहिँ तृन चरहिँ न पियहिँ जल, मोचहिँ लोचन बारि ।
ब्याकुल भयउ निषाद सब, रघुबर-बाजि निहारि ॥१४२॥

धरि धीरज तब कहइ निषादू । अब सुमन्त्र परिहरहु बिषादू ॥
तुम्ह पंडित परमारथ-ज्ञाता । धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदुबानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक-सिथिल रथ सकइ न हाँकी । रघुबर-बिरह-पीर उर बाँकी ॥
चरफराहिँ मग चलहिँ न घोरे । बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढ़ुकि परहिँ फिरि हेरहिँ पीछे । राम-बियोग बिकल दुख तीछे ॥
जो कह राम लखन बैदेही । हिकरि हिकरि हित हेरहिँ तेही ॥
बाजिबिरह-गति किमि कहि जाती । बिनमनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥

दो०—भयउ निषाद बिषाद बस, देखत सचिव तुरङ्ग ।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी सङ्ग ॥१४३॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई । बिरह बिषाद बरनि नहिँ जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा । होहिँ छनहिँ छन मगन बिषादा ॥
सोच सुमन्त्र बिकल दुख-दीना । धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
रहिहि न अन्तहु अधम सरीरू । जस न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भये अजस-अघ-भाजन प्राना । कवन हेतु नहिँ करत पयाना ॥
अहह मन्द-मन अवसर चूका । अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥
मीँजि हाथ सिर धुनि पछिताई । मनहुँ कृपन धन-रासि गँवाई ॥

बिरद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥
दो०—बिप्र बिबेकी बेद-बिद, सम्मत-साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोच तेहि भाँति॥१४४॥
जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम-मन-बानी॥
रहइ करम-बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू॥
लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥
बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महँतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर-पन्थ सोच जिमि पापी॥
बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥
दो०—धाइ पूछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतर देब मैं सबहि तब, हृदय बज्र बैठारि॥१४५॥
पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता॥
पूछिहि जबहि लखन महँतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥
राम-जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई॥
पूछत उतर देब मैं तेही। गे बन राम-लखन-बैदेही॥
जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यह सुख लेबा॥
पूछिहि जबहि राउ दुख दीना। जिवन जासु रघुनाथ अधीना॥
देहउँ उतर कवन मुँह लाई। आयउँ कुसल कुँअर पहुँचाई॥
सुनत लखन-सिय-राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥
दो०—हृदय न बिदरेउ पङ्क जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि, यह जातना सरीर॥१४६॥
एहि बिधि करत पन्थ पछितावा। तमसा-तीर तुरत रथ आवा॥
बिदा किये करि बिनय निषादा। फिरे पाँय परि बिकल बिषादा॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु-बाँभन-गाई॥
बैठि बिटप तर दिवस गँवावा। साँझ समय तब अवसर पावा॥
अवध प्रबेस कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथ राखि दुआरे॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूपद्वार रथ देखन आये॥

हय पहिचानि बिकल लखि घोरे । जरहिँ गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि-नर ब्याकुल कैसे । निघटत नीर मीन-गन जैसे ॥
दो०—सचिव आगमन सुनत सब, बिकल भयउ रनिवास ।
भवन भयङ्कर लाग तेहि, मानहुँ प्रेत-निवास ॥ १४७ ॥
अति आरति सब पूछहिँ रानी । उतर न आव बिकल भइ बानी ॥
सुनइ न स्रवन नयन नहिँ सूझा । कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ॥
दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई । कौसल्या-गृह गईं लेवाई ॥
जाइ सुमन्त्र दीख कस राजा । अमिय रहित जनु चन्द बिराजा ॥
आसन सयन बिभूषन हीना । परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसास सोच एहि भाँती । सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती ॥
लेत सोच भरि छिन छिन छाती । जनु जरि पङ्ख परेउ सम्पाती ।
राम राम कह राम-सनेही । पुनि कह राम-लखन-बैदेही ॥
दो०—देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनाम ।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहँ राम ॥१४८॥
भूप सुमन्त्र लीन्ह उर लाई । बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी । पूछत राउ नयन भरि बारी ॥
राम कुसल कहु सखा-सनेही । कहँ रघुनाथ लखन बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहिँ सिधाये । सुनत सचिव लोचन जल छाये ॥
सोक बिकल पुनि पूछ नरेसू । कहु सिय राम लखन सन्देसू ॥
राम-रूप-गुन-सील-सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥
राज सुनाइ दीन्ह बन-बासू । सुनि मन भयउ न हरष हरासू ॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ॥
दो०—सखा राम-सिय-लखन जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ ।
नाहिँ त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥
पुनि पुनि पूछत मन्त्रिहि राऊ । प्रियतम-सुअन संदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ । राम-लखन-सिय नयन देखाऊ ॥
सचिव धीर धरि कह मृदु बानी । महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी ॥
बीर सुधीर-धुरन्धर देवा । साधु-समाज सदा तुम्ह सेवा ॥
जनम मरन सब दुख-सुख-भोगा । हानि लाभ प्रिय-मिलन बियोगा ॥

काल-करम-बस होहिँ गोसाँई। बरबस राति-दिवस की नाँई॥
सुख हरषहिँ जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिँ मन माहीं॥
धीरज धरहु बिबेक बिचारी। छाड़िय सोच सकल-हितकारी॥
दो०—प्रथम बास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जल पान करि, सिय समेत दोउ बीर॥१५०॥
केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाई॥
होत प्रात बट-छीर मँगावा। जटा-मुकुट निज सीस बनावा॥
राम सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लखन बान-धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तात प्रनाम तात सन कहेहु। बार बार पद-पङ्कज गहेहु॥
करबि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिय जनि चिन्ता मोरी॥
बन-मग मङ्गल-कुसल हमारे। कृपा-अनुग्रह पुन्य तुम्हारे॥
हरिगीतिका-छन्द।
तुम्हरे अनुग्रह तात कानन, जात सब सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन, पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोषि परि परि, पाँय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहि कुसली रहहिँ कोसल-धनी॥६॥
सो०—गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पद-पदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति॥१५१॥
पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेउ बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा तेँ रह नरनाह सुखारी॥
कहब सँदेस भरत के आये। नीति न तजिय राज-पद पाये॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥
अवर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु,मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥
लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन-लरिकाई॥
दो०—कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।

थकित-बचन लोचन-सजल, पुलक-पल्लवित-देह ॥ १५२ ॥
तेहि अवसर रघुबर-रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघुकुल-तिलक चले यहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जियत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि-गलानि-सोच-बस भयऊ॥
सूत बचन सुनतहि नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत विषम-मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा ॥
करि बिलाप सब रोवहिँ रानी। महाबिपति किमि जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा ॥
दो०—भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप-राउर सोर।
बिपुल बिहँग-बन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर ॥१५३॥
प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि-बिहीन जनु व्याकुल व्यालू॥
इन्द्री सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर-सरसिज-बन बिनु बारी॥
कौसल्या नृप दीख मलाना। रबिकुल-रबि अथयउ जिय जाना॥
उर धरि धीर राम-महँतारी। बोली बचन समय अनुसारी ॥
नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम-बियोग-पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध-जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय-पथिक-समाजू॥
धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिँ त बूड़िहि सब परिवारू ॥
जौँ जिय धरिय बिनय पिय मोरी। राम-लखन-सिय मिलहिँ बहोरी॥
दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृप। चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि ॥ १५४ ॥
धरि धीरज उठि बैठि भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम-कृपालू ॥
कहाँ लखन कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय-पुत्रबधू बैदेही ॥
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस-अन्ध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करबि मैं काहा। जेहि न प्रेम-पन मोर निबाहा ॥
हा रघुनन्दन प्रान-पिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु-हित-चित-चातक जलधर॥

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥ १५५ ॥

जियत मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा॥
जियत राम-बिधु-बदन निहारा। राम-बिरह करि मरन सँवारा॥
सोक बिकल सब रोवहिँ रानी। रूप सील बल तेज बखानी॥
करहिँ बिलाप अनेक प्रकारा। परहिँ भूमितल बारहिँ बारा॥
बिलपहिँ बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिँ पुरबासी॥
अथयउ आजु भानुकुल-भानू। धरम-अवधि गुन-रूप-निधानू॥
गारी सकल कैकइहि देहीँ। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीँ॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आये सकल महामुनि ज्ञानी॥

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि कर, निज बिज्ञान प्रकास ॥ १५६ ॥

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा॥
धावहु बेगि भरत पहिँ जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥
एतनेइ कहेउ भरत सन जाई। गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाये। चले बेगि बर-बाजि लजाये॥
अनरथ अवध अरम्भेउ जब तेँ। कुसगुन होहिँ भरत कहँ तब तेँ॥
देखहिँ राति भयानक सपना। जागि करहिँ कटु कोटि कलपना॥
बिप्र जेँवाइ देहिँ दिन दाना। सिव अभिषेक करहिँ बिधि नाना॥
माँगहिँ हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

दो०—एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु-अनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेस मनाइ ॥१५७॥

चले समीर-बेग हय हाँके। नाँघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिँ जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर नियराई॥
असगुन होहिँ नगर पैठारा। रटहिँ कुभाँति कुखेत करारा॥
खर सियार बोलहिँ प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेष भयावन लागा॥
खग मृग हय गय जाहिँ न जोये। राम-बियोग-कुरोग बिगोये॥

नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब सम्पति हारी॥
दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गँवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय बिषाद मन माहिं॥१५८॥
हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी॥
आवत सुत सुनि कैकयनन्दिनि। हरषी रबिकुल-जलरुह-चन्दिनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहि भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवार निहारा। मानहुँ तुहिन बनज-बन मारा॥
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मन मारे। पूछति नैहर कुसल हमारे॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय-राम-लखन प्रिय भ्राता॥
दो०—सुनि सुत-बचन सनेहमय, कपट नीर भरि नयन।
भरत स्रवन-मन-सूल-सम, पापिनि बोली बयन॥१५९॥
तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मन्थरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति-पुर पगुधारेउ॥
सुनत भरत भये बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल ब्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महँतारी॥
सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरम पाछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥
दो०—भरतहि बिसरेउ पितु-मरन, सुनत राम-बन-गौन।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन॥१६०॥
बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोन लगावति॥
तात राउ नहिं सोचइ-जोगू। बिढ़इ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू॥
जीवत सकल जनम-फल पाये। अन्त अमरपति सदन सिधाये॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही ॥
पेड़ काटि तैं पालव सींचा। मीन जियन निति बारि उलीचा ॥
दो०—हंस-बंस दसरथ-जनक, राम-लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥
जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरनकाल विधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहु न नारि-हृदय-गति जानी। सकल कपट-अघ-अवगुन-खानी ॥
सरल सुसील धरम-रत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ ॥
अस को जीव-जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं ॥
भे अति अहित राम तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं ॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥
दो०—राम-बिरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि ॥१६२॥
सुनि सत्रुघन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥
लखि रिस भरेउ लखन-लघु-भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा ॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित-दसन मुख रुधिर-प्रचारू ॥
आह दइव मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा ॥
सुनि रिपुहन लखि नख-सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी ॥
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥
दो०—मलिन-बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भार।
कनक-कलप-बर-बेलि-बन, मानहुँ हनी तुसार ॥ १६३ ॥
भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई ॥
देखत भरत बिकल भये भारी। परे चरन तन दसा बिसारी ॥
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय-राम-लखन दोउ भाई ॥
कइकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमति भइ काहे न बाँझा ॥
कुल-कलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस-भाजन प्रिय जन-द्रोही ॥

को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुबर-केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयउँ बेनु-बन-आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥
दो०—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि॥१६४॥
सरल सुभाय माय हिय लाये। अति हित मनहुँ राम फिरि आये॥
भेंटेउ बहुरि लखन-लघु-भाई। सोक सनेह न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहत सब कोई। राम-मातु अस काहे न होई॥
माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल-करम-गति अघटित जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहु दुख मोहि जियावा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥
दो०—पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर॥१६५॥
मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम-चरन-अनुरागी॥
सुनतहि लखन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिर नाई। चले सङ्ग सिय अरु लघु भाई॥
तब रघु-पति सबही सिर नाई। चले सङ्ग सिय अरु लघु भाई॥
राम-लखन-सिय बनहिं सिधाये। गइउँ न सङ्ग न प्रान पठाये॥
यह सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥
मोहि न लाज निज नेह निहारी। राम-सरिस-सुत मैं महँतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस-समाना॥
दो०—कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवास।
ब्याकुल बिलपत राज-गृह, मानहुँ सोक-निवास॥१६६॥
बिलपहिं भरत बिकल दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि बिबेक-मय बचन सुहाये॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान-स्रुति कथा सुहाई॥

कुल-बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥
जे अघ मातु-पिता-सुत मारे। गाइगोठ महिसुर-पुर जारे॥
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे। मीत-महीपति माहुर दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीँ। करम बचन मन भव कबि कहहीँ॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौँ यह होइ मोर मत माता॥
दो०—जे परिहरि हरि-हर-चरन, भजहिँ भूत-गन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि, जौँ जननी मत मोर॥१६७॥
बेचहिँ बेद धरम दुहि लेहीँ। पिसुन पराय पाप कहि देहीँ॥
कपटी कुटिल कलह-प्रिय क्रोधी। बेद-बिदूषक बिस्व-बिरोधी॥
लोभी लम्पट लोलुप-चारा। जे ताकहिँ पर-धन पर-दारा॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौँ जननी यह सम्मत मोरा॥
जे नहिँ साधु सङ्ग अनुरागे। परमारथ-पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर-तनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर-सुजस सुहाई॥
तजि स्रुति-पन्थ बाम-पथ चलहीँ। बञ्चक बिरचि बेष जग छलहीँ॥
तिन्ह कइ गति मोहि सङ्कर देऊ। जननी जौँ यह जानउँ भेऊ॥
दो०—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति राम-प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन काय॥१६८॥
राम प्रान तेँ प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थन पय स्रवहिँ नयन जल छाये॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती॥
बामदेउ बसिष्ठ तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये॥
मुनि बहु-भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥
दो०—तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आज।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सब साज॥१६९॥
नृप-तनु बेद-बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा॥
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं राम-दरसन अभिलाषी॥

चन्दन अगर भार बहु आये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाये॥
सरजु-तीर रचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई॥
एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलाञ्जलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दस गात बिधाना॥
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा॥
भये बिसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥
दो०—सिंहासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन-काम॥१७०॥
पितु-हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिँ बरनी।
सुदिन सोधि मुनिबर तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये॥
बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई॥
भरत बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय बचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जस करनी॥
भूप धरम-ब्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा॥
कहत राम-गुन-सील-सुभाऊ। सजल-नयन पुलके मुनिराऊ॥
बहुरि लखन-सिय-प्रीति बखानी। सोक-सनेह-मगन मुनि-ज्ञानी॥
दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधि हाथ॥१७१॥
अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यर्थ काहि पर कीजिय रोसू॥
तात बिचार करहु मन माहीं। सोच जोग दसरथ-नृप नाहीं॥
सोचिय बिप्र जो बेद-बिहीना। तजि निज-धरम बिषय लयलीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिय बयस कृपन धनवानू। जो न अतिथि-सिव-भगति सुजानू॥
सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान-प्रिय ज्ञान-गुमानी॥
सोचिय पुनि पति-बञ्चक नारी। कुटिल कलह-प्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निज-ब्रत परिहरई। जो नहिँ गुरु आयसु अनुसरई॥
दो०—सोचिय गृही जो मोह बस, करइ करम-पथ त्याग।
सोचिय जती प्रपञ्च-रत, बिगत बिबेक बिराग॥१७२॥
बैखानस सोइ सोचइ जोगू। तप बिहाइ जेहि भावन भोगू॥

सोचिय पिसुन अकारन-क्रोधी। जननि जनक गुरु बन्धु बिरोधी॥
सब बिधि सोचिय पर-अपकारी। निज-तनु-पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरिजन होई॥
सोचनीय नहिँ कोसलराऊ। भुवन चारि-दस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिँ सब दसरथ गुन-गाथा॥
दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ, करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥१७३॥
सब प्रकार भूपति बड़ भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राज-रजायसु करहू॥
राय राज-पद तुम्ह कहँ दीन्हा। पिता-बचन फुर चाहिय कीन्हा॥
तजे राम जेहि बचनहिँ लागी। तनु परिहरेउ राम-बिरहागी॥
नृपहि बचन-प्रिय नहिँ प्रिय प्राना। करहु तात पितु-बचन प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप-रजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई॥
परसुराम पितु-अज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितु-अज्ञा अघ अजस न भयऊ॥
दो०—अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिँ पितु बयन।
ते भाजन सुख-सुजस के, बसहिँ अमरपति-अयन॥१७४॥
अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोक परिहरहू॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू। तुम्ह कहँ सुकृत सुजस नहिँ दोषू॥
बेद-बिदित सम्मत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावै टीका॥
करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥
सुनि सुख लहब राम बैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही॥
कौसल्यादि सकल महँतारी। तेउ प्रजा-सुख होहिँ सुखारी॥
परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राज राम के आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये॥
दो०—कीजिय गुरु आयसु अवसि, कहहिँ सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस, तस तब करब बहोरि॥१७५॥
कौसल्या धरि धीरज कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई॥

सो आदरिय करिय हित मानी। तजिय बिषाद काल-गति जानी॥
बन-रघुपति सुरपुर-नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा। तुम्हहीं सुत सब कहँ अवलम्बा॥
लखि बिधि बाम काल कठिनाई। धीरज धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू॥
गुरु के वचन सचिव अभिनन्दन। सुने भरत हिय हित जनु चन्दन॥
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥

हरिगीतिका-छन्द।

सानी सरल रस मातु बानी, सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत, बिरह उर अङ्कुर नये॥
सो दसा देखत समय तेहि, बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर, सींव सहज सनेह की॥७॥

सो०—भरत कमल-कर जोरि, धीर-धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि॥१७६॥

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव सम्मत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥
गुरु-पितु-मातु-स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोष न जी के॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू॥
ऊतर देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष-गुन गनहिं न साधू॥

दोहा०—पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥१७७॥

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु-कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक समाज-राज केहि लेखे। लखन-राम-सिय-पद बिनु देखे॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म-बिचारू॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा॥

जाय जीव विनु देह सुहाई । वादि मोर सव विनु रघुराई ॥
जाउ राम पहिँ आयसु देहू । एकहि आँक मोर हित एहू ॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू । सोउ सनेह-जड़ता-वस कहहू ॥
दो०—कैकइ सुअन कुटिल-मति, राम-विमुख गत-लाज ।
तुम्ह चाहत सुख मोह वस, मोहि से अधम को राज ॥१७८॥
कहउँ साँच सव सुनि पतियाहू । चाहिय धरम-सील नरनाहू ॥
मोहि राज हठि देइहहु जवहीं । रसा रसातल जाइहि तवहीं ॥
मोहि समान को पाप-निवासू । जेहि लगि सीय-राम-वनवासू ॥
राय राम कहँ कानन दीन्हा । विछुरत गमन अमरपुर कीन्हा ॥
मैं सठ सव अनरथ कर हेतू । वैठ वात सव सुनउँ सचेतू ॥
विनु रघुवीर विलोकि अवासू । रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥
राम पुनीत विषय-रस रूखे । लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहँ लगि कहउँ हृदय कठिनाई । निदर कुलिस जेहि लही वड़ाई ॥
दो०—कारन तें कारज कठिन, होइ दोस नहिँ मोर ।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥
कैकेई भव-तनु अनुरागे । पाँवर प्रान अघाइ अभागे ॥
जौं प्रिय-विरह प्रान प्रिय लागे । देखव सुनव वहुत अव आगे ॥
लखन-राम-सिय कहँ वन दीन्हा । पठइ अमरपुर पति-हित कीन्हा ॥
लीन्ह विधवपन अपजस आपू । दीन्हेउ प्रजहि सोक सन्तापू ॥
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू । कीन्ह कैकई सव कर काजू ॥
यहि तें मोर काह अव नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥
कैकइ जठर जनमि जग माहीँ । यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीँ ॥
मोरि वात सव विधिहि वनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥
दो०—ग्रह-ग्रहीत पुनि वात-वस, तेहि पुनि वीछी मार ।
ताहि पिआइय वारुनी, कहहु कवन उपचार ॥१८०॥
कैकइ सुअन जोग जग जोई । चतुर विरञ्चि दीन्ह मोहि सोई ॥
दसरथ तनय राम लघु भाई । दीन्हि मोहि विधि वादि वड़ाई ॥
तुम्ह सव कहहु कढ़ावन टीका । राय-रजायसु सव कहँ नीका ॥
उतर देउँ केहि विधि केहि केही । कहहु सुखेन जथारुचि जेही ॥

ओहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय-राम प्रान-प्रिय नाहीं॥
परम-हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू॥
संसय-सील-प्रेम-बस अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू॥
दो०—राम-मातु सुठि सरल-चित, मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि॥१८१॥
गुरु बिबेक-सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्व कर-बदर-समाना॥
मो कहँ तिलक-साज सज सोऊ। भये बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ॥
परिहरि राम-सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अन्तहु कीच तहाँ जहँ पानी॥
डर न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिं न सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय-राम दुखारी॥
जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥
दो०—आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ॥१८२॥
आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी॥
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ
अरिहु का अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु-सेवक जद्यपि बामा
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी।
जेहि सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी।
दो०—जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥१८३॥
भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम-सनेह-सुधा जनु पागे।
लोग बियोग-बिषम-बिष दागे। मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे॥
मातु सचिव गुरु पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी॥

भरतहि कहहिँ सराहि सराही । राम-प्रेम-मूरति तनु आही ॥
तात भरत अस काहे न कहहू । प्रान समान राम प्रिय अहहू ॥
जो पाँवर अपनी जड़ताई । तुम्हहिँ सुगाइ मातु कुटिलाई ॥
सो सठ कोटिक-पुरुष समेता । बसहिँ कलप-सत नरक-निकेता ॥
अहि-अघ-अवगुन नहिँ मनि गहई । हरइ गरल दुख-दारिद दहई ॥

दो०—अवसि चलिय बन राम जहँ, भरत मन्त्र भल कीन्ह ।
सोक-सिन्धु बूड़त सबहि, तुम्ह अवलम्बन दीन्ह ॥१८४॥

भा सब के मन मोद न थोरा । जनु घन धुनि सुनि चातक-मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके । भरत प्रान-प्रिय भे सबही के ॥
मुनिहिँ बन्दि भरतहि सिर नाई । चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवन जग माहीं । सील सनेह सराहत जाहीं ॥
कहहिँ परसपर भा बड़ काजू । सकल चलइ कर साजहिँ साजू ॥
जेहि राखहिँ रहु घर रखवारी । सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न चहइ जग जीवन-लाहू ॥

दो०—जरउ सो सम्पति सदन-सुख, सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम-पद, करइ न सहज सहाइ ॥१८५॥

घर घर साजहिँ बाहन नाना । हरष हृदय परभात पयाना ॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू । नगर बाजि गज भवन भंडारू ॥
सम्पति सब रघुपति कै आही । जौं बिनु जतन चलउँ तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई । पाप सिरोमनि साइँ-दोहाई ॥
करइ स्वामि हित सेवक सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि-सेवक बोले । जे सपनेहुँ निज धरम न डोले ॥
कहि सब मरम धरम भल भाखा । जो जेहि लायक सो तहँ राखा ॥
करि सब जतन राखि रखवारे । राम-मातु पहिँ भरत सिधारे ॥

दो०—आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान ।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन जान ॥१८६॥

चक्क चक्कि जिमि पुर-नर-नारी । चहत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना । भरत बोलाये सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सब तिलक-समाजू । बनहिँ देब मुनि रामहिँ राजू ॥

बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥
अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥
बिप्रबृन्द चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥
दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकनि, सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब, चले भरत दोउ भाइ॥१८७॥
राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय-राम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय-गय-रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम-मातु मृदु बानी बोली॥
तात चढ़हु रथ बलि महँतारी। होइहि प्रिय परिवार दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिर नाई। रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई॥
तमसा प्रथम-दिवस करि बासू। दूसर गोमति-तीर निवासू॥
दो०—पय-अहार फल-असन एक, निसि-भोजन एक लोग।
करत राम-हित नेम-ब्रत, परिहरि भूषन भोग॥१८८॥
सई तीर बसि चले बिहाने। सृङ्गबेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करइ सबिषादा॥
कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौं पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह सङ्ग कटकाई॥
जानहिं सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राज सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलङ्क अब जीवन हानी॥
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा॥
का आचरज भरत अस करहीं। नहिं बिषबेलि अमिय फल फरहीं॥
दो०—अस बिचारि गुह ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु॥१८९॥
होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

समर-मरन पुनि सुरसरि-तीरा। राम-काज छनभङ्ग-सरीरा॥
भरत-भाइ-नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइय मीचू॥
स्वामि-काज करिहउँ रनरारी। जस धवलिहउँ भुवन दस-चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद-मोदक मोरे॥
साधु-समाज न जा कर लेखा। रामभगत महँ जासु न रेखा॥
जाय जियत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥
दो०—बिगत बिषाद निषाद-पति, सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु॥१९०॥
बेगहि भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिँ सहरषा। एकहि एक बढ़ावहिँ करषा॥
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम-पद-पङ्कज पनहीँ। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीँ॥
अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीँ। फरसा बाँस सेल सम करहीँ॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिँ गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥
निज निज साज समाज बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥
दो०—भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहि॥१९१॥
राम-प्रताप नाथ बल तोरे। करहिँ कटक बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउँ न पाछे धरहीँ। रुंड-मुंड-मय मेदिनि करहीँ॥
देखि निषाद-नाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बाये। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये॥
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिय न होइहि रारी॥
रामहिँ भरत मनावन जाहीँ। सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीँ॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिँ बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सील बिनु बूझे। बड़ि हित-हानि जानि बिनु जूझे॥
दो०—गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र-अरि-मध्य-गति, तब तस करिहउँ आइ॥१९२॥
लखब सनेह सुभाय सुहाये। बैर प्रीति नहिँ दुरइ दुराये॥

अस कहि भेँट सँजोवन लागे। कन्द मूल फल खग मृग माँगे॥
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साज सजि मिलन सिधाये। मङ्गल-मूल सगुन सुभ पाये॥
देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड-प्रनामू॥
जानि राम-प्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
राम-सखा सुनि स्यन्दन त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहार माथ महि लाई॥
दो०—करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेँट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥१६३॥
भेँटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिँ प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मङ्गल-मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिँ फूला॥
लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि-भरि अङ्क राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीँ। तिन्हहि न पाप-पुञ्ज समुहाहीँ॥
यहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा॥
करमनास-जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिँ धरई॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥
दो०—स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥१६४॥
नहि अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध-लोग सुख लहहीं॥
राम सखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमङ्गल खेमा॥
देखि भरत कर सील-सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥
सकुचि सनेह मोद मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरज पद बन्दि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥
कुसल-मूल पद-पङ्कज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम-अनुग्रह तोरे। सहित कोटि-कुल-मङ्गल मोरे॥
दो०—समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघुबीर-पद, जग बिधि बञ्चित सोइ॥१६५॥

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन-भूषन तबही तें॥
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि लखन लघु भाई॥
कहि निषाद निज-नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लखन सम देहिं असीसा। जियहु सुखी सय-लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर-नर-नारी। भये सुखी जनु लखन निहारी॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन-लाहू। भेंटेउ राम-भद्र भरि बाहू॥
सुनि निषाद निज-भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई॥

दो०—सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु-तर सर बाग बन, बास बनायन्हि जाइ॥१९६॥

सृङ्गबेर पुर भरत दीख जब। भे सनेह-बस अङ्ग सिथिल तब॥
सोहत दिये निषादहि लागू। जनु तनु धरे बिनय अनुरागू॥
एहि बिधि भरत सेन सब सङ्गा। दीख जाइ जग-पावनि गङ्गा॥
राम घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मन मगन मिले जनु रामू॥
करहिं प्रनाम नगर नर-नारी। मुदित ब्रह्म-मय-बारि निहारी॥
करि मज्जन माँगहिं कर जोरी। रामचन्द्र-पद प्रीति न थोरी॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि बर माँगउ एहू। सीय-राम-पद सहज सनेहू॥

दो०—एहि बिधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लेवाइ॥१९७॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोध सबही कर लीन्हा॥
गुरु सेवा करि आयसु पाई। राम-मातु पहिँ गे दोउ भाई॥
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातु—सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥
चले सखा कर सौं कर जोरे। सिथिल सरीर सनेह न थोरे॥
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊँ। नेकु नयन-मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय-राम-लखन निसि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लेइ गयउ निषादू॥

दो०—जहँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिस्राम।

अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड-प्रनाम ॥१९८॥
कुस साथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ॥
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥
कनक-बिन्दु दुइ-चारिक देखे । राखे सीस सीय सम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ॥
श्रीहत सीय-बिरह दुति-हीना । जथा अवध नर-नारि मलीना ॥
पिता जनक देउँ पटतर केही । करतल भोग जोग जग जेही ॥
ससुर भानुकुल-भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावति-पालू ॥
प्राणनाथ रघुनाथ गुसाँई । जो बड़ होत सो राम बड़ाई ॥
दो०—पति देवता सुतीय-मनि, सीय साथरी देखि ।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पवि ते कठिन बिसेखि ॥१९९॥
लालन जोग लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु-मातु दुलारे । सिय-रघुबीरहि प्रान-पियारे ॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । ताति बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहि बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस पहि छाती ॥
राम जनमि जग कीन्ह उजागर । रूप-सील-सुख सब गुन सागर ॥
परिजन पुरजन गुरु पितु माता । राम सुभाउ सबहि सुख-दाता ॥
बैरिउ राम बड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा । करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन लेखा ॥
दो०—सुख-सरूप रघुबंस-मनि, मङ्गल-मोद-निधान ।
ते सोवत कुश डासि महि, बिधि-गति अति बलवान ॥२००॥
राम सुना दुख कानन काऊ । जीवन-तरु जिमि जोगवइ राऊ ॥
पलक-नयन फनि-मनि जेहि भाँती । जोगवहिँ जननि सकल दिन राती ॥
ते अब फिरत बिपिन पद-चारी । कन्द-मूल-फल-फूल-अहारी ॥
धिग कैकई अमङ्गल-मूला । भइसि प्रान-प्रियतम-प्रतिकूला ॥
मैं धिग धिग अघ-उदधि अभागी । सब उतपात भयउ जेहि लागी ॥
कुल-कलङ्क करि सृजेउ बिधाता । साँइ-दोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू । नाथ करिय कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिँ । यह निरजोस दोस बिधि बामहिँ ॥

हरिगीतिका-छन्द

बिधि बाम की करनी कठिन जेहि, मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिँ प्रभु, सादर सरहना रावरी ॥
तुलसी न तुम्ह सोँ राम प्रीतम, कहत हौँ सौहैँ किये ।
परिनाम मङ्गल जानि अपने, आनिये धीरज हिये ॥८॥

सो०—अन्तरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिय करिय विश्राम, यह विचारि दृढ़ आनि मन ॥२०१॥

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा । बास चले सुमिरत रघुबीरा ॥
यह सुधि पाइ नगर नर-नारी । चले बिलोकन आरत भारी ॥
परदछिना करि करहिँ प्रनामा । देहिँ कैकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीँ । बाम बिधातहि दूषन देहीँ ॥
एक सराहहिँ भरत सनेहू । कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निन्दहिँ आपु सराहि निषादहिँ । को कहि सकइ बिमोह बिषादहिँ ॥
एहि बिधि राति लोग सब जागा । भा भिनुसार गुदारा लागा ॥
गुरुहि सुनाव चढ़ाइ सुहाई । नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥
दंड चारि महँ भा सब पारा । उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥

दो०—प्रातक्रिया करि मातु-पद, बन्दि गुरुहि सिर नाइ ।
आगे किये निषाद-गन, दीन्हेउ कटक चलाइ ॥२०२॥

कियेउ निषादनाथ अगुआई । मातु पालकी सकल चलाई ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा । बिप्रन्ह सहित गवन गुरु कीन्हा ॥
आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लखन सहित सिय रामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाये । कोतल सङ्ग जाहिँ डोरिआये ॥
कहहिँ सुसेवक बारहिँ बारा । होइय नाथ अस्व असवारा ॥
राम पयादेहि-पाय सिधाये । हम कहँ रथ गज बाजि बनाये ॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तेँ सेवक-धरम कठोरा ॥
देखि भरत-गति सुनि मृदु बानी । सब सेवक-गन गरहिँ गलानी ॥

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेस प्रयाग ।
कहत रामसिय रामसिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

झलका झलकत पायन्ह कैसे । पङ्कज-कोस ओस-कन जैसे ॥

भरत पयादेहि आये आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये । कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहि आये ॥
सबिधि सितासित-नीर नहाने । दिये दान महिसुर सनमाने ॥
देखत स्यामल-धवल हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम-प्रद तीरथराऊ । बेद-बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
माँगउँ भीख त्यागि निज-धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिँ जग जाचक बानी ॥

दो०—अरथ न धरम न काम-रुचि, गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम-पद, यह बरदान न आन ॥ २०४ ॥

जानहु राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुरु-साहिब-द्रोही ॥
सीता-राम-चरन रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ॥
जलद जनम-भरि सुरति बिसारउ । जाचत जल पबि पाहन डारउ ॥
चातक-रटनि घटे घटि जाई । बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे । तिमि प्रियतम-पद नेम निबाहे ॥
भरत बचन सुनि माँझ त्रिबेनी । भइ मृदु-बानि सुमङ्गल देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम-चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीँ । तुम्ह सम रामहिँ कोउ प्रिय नाहीँ ॥

दो०—तनु पुलकेउ हिय हरष सुनि, बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिँ फूल ॥ २०५ ॥

प्रमुदित तीरथराज-निवासी । बैखानस बटु गृही उदासी ॥
कहहिँ परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेह-सील सुचि साँचा ॥
सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये । भरद्वाज मुनिबर पहिँ आये ॥
दंड प्रनाम करत मुनि देखे । मूरतिवन्त भाग्य निज लेखे ॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे ॥
आसन दीन्ह नाइ सिर बैठे । चहत सकुच-गृह जनु भजि पैठे ॥
मुनि पूछब कछु यह बड़ सोचू । बोले रिषि लखि सील-सकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । बिधि करतब पर किछु न बसाई ॥

दो०—तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति ।
तात कैकइहि दोष नहिं; गई गिरा मति धूति ॥ २०६ ॥

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोक-बेद बुध सम्मत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल-जस गाई। पाइहि लोकहु बेद बड़ाई॥
लोक बेद सम्मत सब कहई। जेहि पितु देइ राज सो लहई॥
राउ सत्य-ब्रत तुम्हहिँ बोलाई। देत राज-सुख धरम बड़ाई॥
राम-गवन-बन अनरथ-मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी-बस रानि अयानी। करि कुचाल अन्तहु पछितानी॥
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राज त तुम्हहिँ न दोसू। रामहिँ होत सुनत सन्तोसू॥

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहिँ उचित मत एहु॥
सकल सुमङ्गल-मूल जग, रघुबर चरन सनेहु॥२०७॥

सो तुम्हार धन जीवन प्राना। भूरि-भाग को तुम्हहिँ समाना॥
यह तुम्हार आचरज न ताता। दसरथ-सुअन राम-प्रिय-भ्राता॥
सुनहु भरत रघुबर मन माहीँ। प्रेमपात्र तुम्ह सम कोउ नाहीँ॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहिँ सराहत बीती॥
जाना मरम नहात प्रयागा। मगन होहिँ तुम्हरे अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेह रघुबर के। सुख जीवन जग जस जड़ नर के॥
यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत-कुटुम्ब-पाल, रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम-सनेहू॥

दो०—तुम्ह कहँ भरत कलङ्क यह, हम सब कहँ उपदेस।
रामभगति-रस सिद्धि-हित, भा यह समउ गनेस॥२०८॥

नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर-किङ्कर-कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥
कोक तिलोक प्रीति अति करिहीँ। प्रभु प्रताप-रबि छबिहिँ न हरिहीँ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू॥
पूरन राम सुप्रेम पियूषा। गुरु-अपमान दोष नहिँ दूषा॥
रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमङ्गल-खानी॥
दसरथ-गुन-गन बरनि न जाहीँ। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीँ॥

दो०—जासु सनेह सकोच बस, राम प्रगट भये आइ।

जे हर-हिय-नयननि कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ ॥ २०९ ॥

कीरति-बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा । जहँ बस राम-प्रेम मृग-रूपा ॥
तात गलानि करहु जिय जाये । डरहु दरिद्रहि पारस पाये ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन-राम-सिय दरसन पावा ॥
तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जग जस जयऊ । कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ ॥
सुनि मुनि बचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा ॥

दो०—पुलक-गात हिय-रामसिय, सजल सरोरुह नयन ।
करि प्रनाम मुनि-मंडलिहिं, बोले गदगद बयन ॥ २१० ॥

मुनि-समाज अरु तीरथराजू । साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
एहि थल जौं किछु कहिय बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥
तुम्ह सर्बज्ञ कहउँ सतिभाऊ । उर-अन्तरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिँ दुख जिय जग जानहि पोचू ॥
नाहिँ न डर बिगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाये । लछिमन राम सरिस सुत पाये ॥
राम-बिरह तजि तनु छनभङ्गू । भूप सोच कर कवन प्रसङ्गू ॥
राम-लखन-सिय बिनु पग-पनहीँ । करि मुनि बेष फिरहिँ बन बनहीँ ॥

दो०—अजिन-बसन फल-असन महि,—सयन डासि कुस पात ।
बसि तरु-तर नित सहत हिम, आतप बरषा बात ॥ २११ ॥

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥
एहि कुरोग कर औषध नाहीँ । सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीँ ॥
मातु कुमत बढ़ई अघ-मूला । तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजन्त्रू । गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमन्त्रू ॥
मोहि लगि यह कुठाट तेहि ठाटा । घालेसि सब जग बारहबाटा ॥
मिटइ कुजोग राम फिरि आये । बसइ अवध नाहिँ आन उपाये ॥
भरत बचन सुनि मुनि सुख पाई । सबहि कीन्हि बहु भाँति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोच बिसेखी । सब दुख मिटिहि राम-पग देखी ॥

दो०—करि प्रबोध मुनिबर कहेउ, अतिथि प्रेम-प्रिय होहु ।
कन्द मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु ॥ २१२ ॥
सुनि मुनि बचन भरत हिय सोचू । भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी । चरन-बन्दि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परम-धरम यह नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिबर मन भाये । सुचि सेवक सिष निकट बोलाये ॥
चाहिय कीन्हि भरत पहुनाई । कन्द मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये । प्रमुदित निज निज काज सिधाये ॥
मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता । तसि पूजा चाहिय जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं । आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥
दो०—राम-बिरह ब्याकुल भरत, सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनिराज ॥ २१३ ॥
रिधि-सिधि सिर धरि मुनिबर बानी । बड़भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥
मुनि-पद बन्दि करिय सोइ आजू । होइ सुखी सब राज-समाजू ॥
अस कहि रचे रुचिर गृह नाना । जो बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥
भोग-बिभूति भूरि भरि राखे । देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साज सब लीन्हे । जोगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हे ॥
सब समाज सजि सिधि पल माहीं । जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं ॥
प्रथमहिं बास दिये सब केही । सुन्दर सुखद जथारुचि जेही ॥
दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहँ, रिषि अस आयसु दीन्ह ।
बिधि-बिसमय-दायक-बिभव, मुनिबर तप बल कीन्ह ॥२१४॥
मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख-समाज नहिं जाइ बखानी । देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥
आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहँग मृग नाना ॥
सुरभि-फूल फल-अमिय समाना । बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥
असन पान सुचि अमिय अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर-सुरभी सुरतरु सबही के । लखि अभिलाष सुरेस-सची के ॥
रितु-बसन्त बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥

स्रक चन्दन बनितादिक भोगा। देखि हरष-बिसमय बस लोगा॥

दो०—सम्पति चकई भरत चक, मुनि-आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिञ्जरा, राखे भा भिनुसार॥२१५॥

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिर सहित समाजा॥
रिपि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाखी॥
पथ-गति-कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चित दीन्हे॥
राम-सखा कर दीन्हे लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥
नहिँ पदत्रान सीस नहिँ छाया। प्रेम नेम ब्रत धरम अमाया॥
लखन-राम-सिय पन्थ-कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी॥
राम-बास-थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिँ रोके॥
देखि दसा सुर बरिसहिँ फूला। भइ मृदु महि मग मङ्गल मूला॥

दो०—किये जाहिँ छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात॥२१६॥

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भये परम-पद-जोगू। भरत-दरस मेटा भव रोगू॥
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीँ। सुमिरत जिन्हहिँ राम मन माहीँ॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन-तारन नर तेऊ॥
भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मङ्गल-दाता॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीँ। भरतहि निरखि हरष हिय लहहीँ॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जग भल भलेहि पोच कहँ पोचू॥
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई। रामहिँ भरतहि भेँट न होई॥

दो०—राम सकोची प्रेम-बस, भरत सुप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति, करिय यतन छल-सोधि॥२१७॥

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहस-नयन बिनु लोचन जाने॥
कह गुरु बादि छोभ छल छाँड़ू। इहाँ कपट करि होइय भाँड़ू॥
मायापति-सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥
सब किछु कीन्ह राम-रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिँ न काऊ॥
जो अपराध भगत कर करई। राम-रोष-पावक सो जरई।

लोकहु बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिँ दुरबासा॥
भरत सरिस को राम-सनेही। जग जप राम राम जप जेही।

दो॰—मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुबर-भगत अकाज।
अजस-लोक परलोक-दुख, दिन दिन सोक-समाज॥२१८॥

सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहि सेवक परम पियारा॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक-बैर बैर-अधिकाई॥
जद्यपि सम नहिँ राग न रोषू। गहहिँ न पाप पुन्य गुन दोषू॥
करम-प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥
तदपि करहिँ सम बिषम बिहारा। भरत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेप अमान एकरस। राम सगुन भये भगत-प्रेम-बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत-पद-प्रीति सुहाई॥

दो॰—रामभगत परहित-निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत-सिरोमनि भरत तेँ, जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

सत्यसन्ध प्रभु सुर-हितकारी। भरत राम-आयसु अनुसारी॥
स्वारथ-बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोष नहिँ राउर मोहू॥
सुनि सुरबर सुरगुरु बर-बानी। भा प्रमोद मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥
एहि बिधि भरत चले मग जाहीँ। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीँ॥
जबहिँ राम कहि लेहिँ उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥
द्रवहिँ बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिँ आये। निरखि नीर लोचन जल छाये॥

दो॰—रघुबर-बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े बिबेक जहाज॥२२०॥

जमुन-तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू॥
रातिहि घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिँ न बरनी॥
प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥
आगे मुनिबर बाहन आछे। राज-समाज जाइ सब पाछे॥

तेहि पाछे दोउ बन्धु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे ॥
सेवक सुहृद सचिव-सुत साथा। सुमिरत लखन-सीय-रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम बास बिस्रामा। तहँ तहँ करहिँ सप्रेम प्रनामा ॥
दो०—मग-बासी नर-नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह बस, मुदित जनम फल पाइ ॥२२१॥
कहहिँ सप्रेम एक एक पाहीँ। राम-लखन सखि होहिँ कि नाहीँ ॥
बय बपु बरन रूप सोइ आली। सील-सनेह-सरिस सम-चाली ॥
बेष न सो सखि सीय न सङ्गा। आगे अनी चली चतुरङ्गा ॥
नहिँ प्रसन्न-मुख मानस-खेदा। सखि सन्देह होइ एहि भेदा ॥
तासु तरक तिय-गन मन मानी। कहहिँ सकल तेहि सम न सयानी
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥
कहि सप्रेम सब कथा-प्रसङ्गू। जेहि बिधि राम-राज-रस-भङ्गू ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ॥
दो०—चलत पयादे खात फल, पिता-दीन्ह तजि राज।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरिस को आज ॥२२२॥
भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन-हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम-बन्धु अस काहे न होई ॥
हम सब सानुज भरतहि देखे। भइन्ह धन्य जुवती-जन लेखे ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीँ। कैकइ जननि जोग सुत नाहीँ ॥
कोउ कह दूषन रानिहि नाहिन। बिधि सब कीन्हि हमहिँ जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक-बेद-बिधि हीनी। लघु-तिय कुल-करतूति मलीनी ॥
बसहिँ कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरस पुन्य-परिनामा ॥
अस अनन्द अचरज प्रति-ग्रामा। जनु मरु-भूमि कलप तरु जामा ॥
दो०—भरत दरस देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भाग।
जनु सिंहल-बासिन्ह भयउ, बिधि-बस सुलभ प्रयाग ॥२२३॥
निज गुन सहित राम-गुन-गाथा। सुनत जाहिँ सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि-आस्रम सुर-धामा। निरखि निमज्जहिँ करहिँ प्रनामा ॥
मनही मन माँगहिँ बर एहू। सीय-राम-पद-पदुम सनेहू ॥
मिलहिँ किरात कोल बन-बासी। बैखानस बटु जती उदासी ॥

करि प्रनाम पूछहिँ जेहि तेही। केहि बन लखन-राम-बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीँ। भरतहि देखि जनम-फल लहहीँ॥
जे जन कहहिँ कुसल हम देखे। ते प्रिय राम-लखन-सम लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम-बनबास कहानी॥
दो०—तेहि बासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम-दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ॥२२४॥
मङ्गल सगुन होहिँ सब काहू। फरकहिँ सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिँ राम मिटिहि दुख-दाहू॥
करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिँ सनेह सुरा सब छाके॥
सिथिल-अङ्ग पग मग डगि डोलहिँ। बिहबल बचन प्रेम-बस बोलहिँ॥
राम-सखा तेहि समय देखावा। सैल-सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित-पय-तीरा। सीय समेत बसहिँ दोउ बीरा॥
देखि करहिँ सब दंड-प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज-समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥
दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अहमम मलिन जनेषु॥२२५॥
सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गये कोस दुइ दिनकर ढरके॥
जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीते॥
उहाँ राम रजनी-अवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आये। नाथ बियोग ताप तन ताये॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भये सोच-बस सोच-बिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥
हरिगीतिका-छन्द।
सनमानि सुर मुनि-बृन्द बैठे, उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे, बिकल प्रभु आस्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारन, काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि, आइ तेहि अवसर कहे॥३॥

सो०—सुनत सुमङ्गल बैन, मन-प्रमोद तन-पुलक-भर ।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह-जल ॥२२६॥

बहुरि सोच बस भे सिय-रवनू । कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन सङ्ग चतुरङ्ग न थोरी ॥
सो सुनि रामहिँ भा अति सोचू । इत पितु बच उत बन्धु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीँ । प्रभु-चित हित-थिति पावत नाहीँ ॥
समाधान तब भा यह जाने । भरत कहे महँ साधु सयाने ॥
लखन लखेउ प्रभु हृदय खभारू । कहत समय सम नीति-बिचारू ॥
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाँई । सेवक समय न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सर्वज्ञ-सिरोमनि स्वामी । आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल-चित, सील-सनेह-निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान ॥ २२७ ॥

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोह-बस होहिँ जनाई ॥
भरत नीति-रत साधु सुजाना । प्रभु-पद-प्रेम सकल जग जाना ॥
तेऊ आज राज-पद पाई । चले धरम-मरजाद मिटाई ॥
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी । जानि राम बन-बास एकाकी ॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू । आये करइ अकण्टक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आये दल बटोरि दोउ भाई ॥
जौँ जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली ॥
भरतहि दोष देइ को जाये । जग बौराइ राज-पद पाये ॥

दो०—ससि गुरु-तिय-गामी नहुष, चढ़ेउ भूमिसुर-जान ।
लोक बेद तेँ बिमुख भा, अधम न बेन समान ॥२२८॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसङ्कू । केहि न राजमद दीन्ह कलङ्कू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रञ्च न राखब काऊ ॥
एक कीन्ह नहिँ भरत भलाई । निदरे राम जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी । समर सरोष राम-मुख पेखी ॥
एतना कहत नीति-रस भूला । रन-रस-बिटप पुलक मिस फूला ॥
प्रभु-पद बन्दि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाखी ॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहिँ उपचार न थोरा ॥

कहँ लगि सहिय रहिय मनमारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥

दो०—छत्रि जाति रघुकुल-जनम, राम-अनुज जग जान।
लातहु मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥२२९॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा॥
आजु राम-सेवक जस लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर-सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर सङ्कर आई। तौ मारउँ रन राम-दोहाई॥

दो०—अति सरोष माखे लखन, लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥२३०॥

जग भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु-बल बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिँ बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर-बचन लखन सकुचाने। राम-सीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राज-मद भाई॥
जो अँचवत माँतहिँ नृप तेई। नाहिँ न साधु सभा जेहि सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपञ्च महँ सुना न दीसा॥

दो०—भरतहि होइ न राजमद, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर-सिन्धु बिनसाइ॥२३१॥

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई॥
गो-पद जल बूड़हिँ घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप-मद भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिँ भरत समाना॥
सगुन-छीरु अवगुन-जल ताता। मिलइ रचइ परपञ्च बिधाता॥
भरत हंस रबि-बंस-तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन-दोष-बिभागा॥

गहिं गुन-पय तजि अवगुन-बारी । निज जस जगत कीन्हि उँजियारी ।
कहत भरत गुन-सील-सुभाऊ । प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ ॥
दो०—सुनि रघुबर-बानी विबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सोँ, प्रभु को कृपानिकेतु ॥ २३२ ॥
जौँ न होत जग जनम भरतको । सकल धरम-धुर-धरनि धरत को ॥
कवि-कुल-अगम भरत-गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लखन-राम-सिय सुनि सुर-बानी । अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरत सब सहित सहाये । मन्दाकिनी पुनीत नहाये ॥
सरित समीप राखि सब लोगा । माँगि मातु गुरु सचिव नियोगा ॥
चले भरत जहँ सिय-रघुराई । साथ निषादनाथ लघु भाई ॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीँ । करत कुतरक कोटि मन माहीँ ॥
राम-लखन-सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिँ तजि ठाऊँ ॥
दो०—मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु करहिँ सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिँ, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥
जौँ परिहरहिँ मलिन मन जानी । जौँ सनमानहिँ सेवक मानी ॥
मोरे सरन राम की पनहीँ । राम सुस्वामि दोष सब जनहीँ ॥
जग जस-भाजन चातक मीना । नेम प्रेम निज निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहिँ मातु-कृत खोरी । चलत भगति-बल धीरज-धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल-प्रवाह जल-अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोच सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
दो०—लगे होन मङ्गल सगुन, सुनि गुनि कहत निषाद ।
मिटिहि सोच होइहि हरष, पुनि परिनाम विषाद ॥ २३४ ॥
सेवक बचन सत्य सब जाने । आस्रम निकट जाइ नियराने ॥
भरत दीख बन-सैल-समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति-भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी । होहिँ भरत गति तेहि अनुहारी ॥
राम-बासः बन सम्पति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥

सचिव-विराग विवेक-नरेसू। विपिन सुहावन पावन देसू॥
भट जम-नियम सैल-रजधानी। सान्ति सुमति सुचि सुन्दर रानी॥
सकल अङ्ग सम्पन्न सुराऊ। राम-चरन-आश्रित चित चाऊ॥
दो०—जीति मोह-महिपाल-दल, सहित विवेक भुआल।
करत अकंटक राज्य-पुर, सुख सम्पदा सुकाल॥ २३५॥
बन प्रदेस मुनि-बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ-गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजा-समाज न जाइ बखाना॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साज सराहा॥
बयर बिहाय चरहिँ एक सङ्गा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरङ्गा॥
झरना झरहिँ मत्त गज गाजहिँ। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिँ॥
चक्र चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मञ्जु मराल मुदित मन॥
अलि-गन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मङ्गल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाज मुद-मङ्गल-मूला॥
दो०—राम-सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥ २३६॥
तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखियहि बिटप बिसाला। पाकर जम्बु रसाल तमाला॥
तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बट सोहा। मञ्जु बिसाल देखि मन मोहा॥
नील-सघन-पल्लव फल-लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला॥
मानहुँ तिमिर-अरुन-मय रासी। बिरचीं बिधि सकेलि सुखमा सी॥
ये तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परन-कुटी जहँ छाई॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाये। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये॥
बट-छाया बेदिका बनाई। सिय निज-पानि-सरोज सुहाई॥
दो०—जहाँ बैठि मुनि-गन सहित, नित सिय राम सुजान।
सुनहिँ कथा इतिहास सब, आगम-निगम-पुरान॥ २३७॥
सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिँ निरखि राम-पद-अङ्का। मानहुँ पारस पायउ रङ्का॥
रजसिर धरि हिय नयनन्हि लावहिँ। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिँ॥

देखि भरत-गति अकथ अतीवा। प्रेम-मगन खग-मृग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह-बिबस मग भूला। कहि सुपन्थ सुर बरषहिँ फूला॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेह सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥
दो०—प्रेम-अमिय मन्दर-बिरह, भरत-पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु हित, कृपासिन्धु रघुबीर॥ २३८॥
सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आस्रम पावन। सकल सुमङ्गल-सदन सुहावन॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे॥
सीस-जटा कटि-मुनि-पट बाँधे। तून कसे कर सर धनु-काँधे॥
बेदी पर मुनि-साधु-समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥
बलकल-बसन जटित तनु स्यामा। जनु मुनि बेष कीन्ह रति कामा॥
कर-कमलनि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥
दो०—लसत मञ्जु मुनि-मंडली, मध्य सीय-रघुचन्द।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानन्द॥२३९॥
सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाँई। भूतल परे लकुट की नाँई॥
बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने॥
बन्धु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बरजोरा॥
मिलि न जाइ नहिँ गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चङ्ग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनु तीरा॥
दो०—बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरा सबहि अपान॥२४०॥
मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि-कुल-अगम-करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अह मिति बिसराई॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥

कविहिँ अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाँचा॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि-हरि-हर को॥
सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुर-गन सभय धकधकी धर की॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥
दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिँ, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥२४१॥
भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनि-गन दुहुँ भाइन्ह बन्दे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा। सिर धरि सिय-पद-पदुम-परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर कर-कमल-परसि बैठाये॥
सीय असीस दीन्हि मन माहीँ। मगन सनेह देह सुधि नाहीँ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूछा। प्रेम भरा मन निज-गति छूछा॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि॥
दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये बिकल बियोग॥२४२॥
सीलसिन्धु सुनि गुरु आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरम-धुर दीनदयाला॥
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दंड-प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड-प्रनामू॥
राम-सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
रघुपति-भगति सुमङ्गल-मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिँ फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
दो०—जेहि लखि लखनहुँ ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति-भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ॥२४३॥
आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥

सानुज मिलि पल महँ सब काहू । कीन्ह दूरि दुख-दारुन-दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं । जिमि घट-कोटि एक रवि छाहीं ॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहिँ भागा ॥
देखी राम दुखित महँतारी । जनु सुबेलि-अवलीहिम मारी ॥
प्रथम राम भेँटी कैकेई । सरल सुभाय भगति मति भेई ॥
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी । काल करम बिधि सिरधरिखोरी ॥
दो०—भेँटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोष ।
अम्ब ईस आधीन जग, काहु न देइय दोष ॥२४४॥
गुरु तिय पद बन्दे दुहुँ भाई । सहित बिप्र-तिय जे सँग आई ॥
गङ्ग-गौरि सम सब सनमानी । देहिँ असीस मुदित मृदु बानी ॥
गहि पद लगे सुमित्रा अङ्का । जनु भेँटी सम्पति अति रङ्का ॥
पुनि जननी चरनन्हि दोउ भ्राता । परे प्रेम ब्याकुल सब गाता ॥
अति अनुराग अम्ब उर लाये । नयन सनेह सलिल अन्हवाये ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू । किमिकबिकहइ मूकजिमिस्वादू ॥
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ । गुरु सन कहेउ कि धारिय पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू । जल थल तकि तकि उतरे लोगू ॥
दो०—महिसुर मन्त्री मातु गुरु, गने लोग लिय साथ ।
पावन-आस्रम गवन किय, भरत लखन रघुनाथ ॥२४५॥
सीय आइ मुनिवर पग लागी । उचित असीस लही मन माँगी ॥
गुरु-पतिनिहि मुनि-तियन्ह समेता । मिली प्रेम कहि जाइ न जेता ॥
बन्दि बन्दि पग सिय सबही के । आसिरबचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारी । मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥
परी बधिक बस मनहुँ मराली । काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा । सो सब सहिय जो दैउ सहावा ॥
जनक-सुता तब उर धरि धीरा । नील-नलिन-लोयन भरि नीरा ॥
मिलीसकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥
दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेँटति अति अनुराग ।
हृदय असीसहिँ प्रेम-बस, रहिहहु भरी सोहाग ॥२४६॥
बिकल सनेह सीय सब रानी । बैठन सबहि कहेउ गुरु ज्ञानी ॥

कहि जग-गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ-गाथा ॥
नृप कर सुरपुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा ॥
मरन-हेतु निज-नेह विचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी ॥
कुलिस-कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी ॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू ॥
मुनिवर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुसरित नहाये ॥
व्रत निरम्बु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा ॥
दो०—भोर भये रघुनन्दनहिँ, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥ २४७ ॥
करि पितु क्रिया वेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक-तम-तरनी ॥
जासु नाम-पावक अघ-तूला। सुमिरत सकल सुमङ्गल-मूला ॥
सुद्ध सो भयउ साधु-सम्मत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते ॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कन्द मूल फल अम्बु अहारी ॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥
सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गोसाँई ॥
दो०—धरम-सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहुँ बिस्राम ॥ २४८ ॥
राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुरु गिरा सुमङ्गल-मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ-ओघ नसाहीं ॥
मङ्गल-मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिँ हरषि दंडवत करि करि ॥
राम-सैल-बन देखन जाहीँ। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीँ ॥
झरना झरहिँ सुधा सम बारी। त्रिबिध ताप-हर त्रिबिध बयारी ॥
बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥
दो०—सरनि-सरोरुह जल-बिहँग, कूजत गुञ्जत भृङ्ग।
बैर-बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहङ्ग बहु रङ्ग ॥ २४९ ॥

कोल किरात भिल्ल वन-वासी। मधु शुचि सुन्दर स्वाद सुधा सी॥
भरि भरि परन-पुटी रचि रूरी। कन्द मूल फल अङ्कुर-जूरी॥
सबहि देहिँ करि विनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिँ लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिँ सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसन राम प्रसादा॥
हमहिँ अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरु-धरनि देवधुनि-धारा॥
राम-कृपाल गरीब नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिय जस राजा॥

दो०—यह जिय जानि सकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु।
हमहिँ कृतारथ करन लगि, फल-तृन-अङ्कुर लेहु॥ २५०॥

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पग धारे। सेवा जोग न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहिँ गोसाँई। ईंधन पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिँ न बासन बसन चोराई॥
हम जड़-जीव जीव-गन-घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि-बासर जाहीं। नहिँ पट कटि नहिँ पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम-बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दन-दरस प्रभाऊ॥
जब ते प्रभु-पद-पदुम निहारे। मिटे दुसह-दुख-दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

हरिगीतिका-छन्द।

लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन सनेह लखि सुख पावहीं॥
नर-नारि निदरहिँ नेह-निज सुनि, कोल-भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंस-मनि की, लोह ले लौका तिरा॥१०॥

सो०—बिहरहिँ बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्योँ दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम॥२५१॥

पुरजन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिँ पलक सम बीती।
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई।
लखा न मरम राम बिनु काहूँ। माया सब सिय-माया माहूँ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही॥

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाँचति कैकेई। महि न बीच बिधि मीचु न देई॥
लोकहु वेद विदित कवि कहहीं। राम-बिमुख थल नरक न लहहीं॥
यह संसउ सब के मन माहीं। राम गवन बिधि अवध कि नाहीं॥

दो०—निसि न नींद नहिँ भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल सँकोच॥२५२॥

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम-अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिँ गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहु बहुरहिँ रघुराऊ। राम-जननि हठ करबि कि काऊ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौँ हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तेँ गुरु सेवक धरमू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठये रिषय बोलाई॥

दो०—गुरु-पद-पदुम प्रनाम करि, बैठे आयसु पाइ।
बिप्र-महाजन-सचिव सब, जुरे सभासद आइ॥२५३॥

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम-धुरीन भानुकुल-भानू। राजा राम स्वबस भगवानू॥
सत्यसन्ध पालक-स्रुतिसेतू। राम-जनम जग-मङ्गल-हेतू॥
गुरु-पितु-मातु बचन अनुसारी। खल-दल-दलन देव-हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ॥
बिधि हरि हर ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग-सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जिय देखहु नीके। राम-रजाइ सीस सबही के॥

दो०—राखे राम-रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि सम्मत सोइ॥२५४॥

सब कहँ सुखद राम-अभिषेकू। मङ्गल-मोद-मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिँ रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिय उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय-परमारथ-स्वारथ सानी॥

उतर न आव लोग भये भोरे। तब सिर नाइ भरत कर जोरे॥
भानु-बंस भय भूप घनेरे। अधिक एक तेँ एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु-माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। असि असीस राउरि जग जाना॥
सो गोसाँइ बिधि-गति जेहि छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

दो०—बूझिय मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेह-मय बचन गुरु, उर उमगा अनुराग॥२५५॥

तात बात फुरि राम कृपाहीँ। राम-बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीँ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिँ बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरियहि लखन-सीय-रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिँ रानी॥
कहहिँ भरत मुनि कहा सो कीन्हे। फल जग जीवन अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तेँ अधिक न मोर सुपासू॥

दो०—अन्तरजामी राम-सिय, तुम्ह सर्वज्ञ-सुजान।
जौँ फुर कहहु त नाथ निज, कीजिय बचन प्रवान॥२५६॥

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयउ बिदेहू॥
भरत महा-महिमा जलरासी। मुनिमति ठाढ़ि तीर अबलासी॥
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥
और करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिन्धु समाई॥
भरत मुनिहिँ मन भीतर भाये। सहित समाज राम पहिँ आये॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासन॥
बाले मुनिवर बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबज्ञ सुजाना। धरम-नीति-गुन-ज्ञान निधाना॥

दो०—सब के उर-अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी भरत-हित, होइ सो कहिय उपाउ॥२५७॥

आरत कहहिँ बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

सब कर हित रुख राउरि राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे॥
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाँई। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा। भरत सनेह बिचार न राखा॥
तेहि तेँ कहउँ बहोरि बहोरी। भरत-भगति-बस भइ मति मोरी॥
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी॥

दो०—भरत बिनय सादर सुनिय, करिय बिचार बहोरि।
करब साधु-मत लोक-मत, नृप-नय निगम निचोरि॥२५८॥

गुरु अनुराग भरत पर देखी। राम-हृदय आनन्द बिसेखी॥
भरतहि धरम-धुरन्धर जानी। निज-सेवक-तन-मानस-बानी॥
बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मञ्जु मृदु मङ्गल-मूला॥
नाथ सपथ पितु-चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई॥
जे गुरु-पद-अम्बुज अनुरागी। ते लोकहु बेदहु बड़ भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
लखि लघु-बन्धु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरत कहहिँ सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सकोच तजि तात।
कृपासिन्धु प्रियबन्धु सन, कहहु हृदय के बात॥ २५९॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सब छरभारू। कहि न सकहिँ कछु करहिँ बिचारू॥
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरज-नयन नेह-जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तेँ अधिक कहउँ मैँ काहा॥
मैँ जानउँ निज-नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तेँ परिहरेउ न सङ्गू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भङ्गू॥
मैं प्रभु कृपा-रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिँ मोही॥

दो०—महूँ सनेह-सकोच-बस, सनमुख कहे न बयन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नयन॥ २६०॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥

कहउ कहब मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥
मातु मन्द मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता-प्रसव कि सम्बुक काली॥
सपनेहुँ दोस कलेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुरु-गोसाइँ साहिब सिय-रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥
दो०—साधु-सभा गुरु-प्रभु-निकट, कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपञ्च कि झूठ फुर, जानहिँ मुनि रघुराउ॥२६१॥
भूपति मरन प्रेम पन राखी। जननी कुमति जगत सब साखी॥
देखि न जाहिँ बिकल महँतारी। जरहिँ दुसह जर पुर-नर-नारी॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला॥
सुनि बन-गवन कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन-सिय साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाये। सङ्कर साखि रहेउँ एहि घाये॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जियत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहिँ निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिँ बिषम बिष तामसतीछी॥
दो०—तेइ रघुनन्दन-लखन-सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि॥२६२॥
सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति-प्रीति-बिनय-नयसानी॥
सोक मगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमल-बन परेउ तुसारू॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोध कीन्ह मुनि-ज्ञानी॥
बोले उचित बचन रघुनन्दू। दिनकर-कुल-कैरव-बन-चन्दू॥
तात जाय जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीन-काल तिभुवन मत मोरे। पुन्यसिलोक तात तर तोरे॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक-परलोक नसाई॥
दोस देहिँ जननिहिँ जड़ तेई। जिन्ह गुरु-साधु-सभा नहिँ सेई॥
दो०—मिटिहहिँ पाप प्रपञ्च सब, अखिल अमङ्गल भार।
लोक-सुजस परलोक-सुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥२६३॥

कहउँ सुभाव सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाये। बैर प्रेम नहिँ दुरइ दुराये॥
मुनि-गन निकट बिहँग मृग जाहीँ। बाधक बधिक बिलोकि पराहीँ॥
हित-अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन-ज्ञान निधाना॥
तात तुम्हहि मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमञ्जस जी के॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम-पन-लागी॥
तासु बचन मेटत बड़ सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू॥
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥
दो०—मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आज।
सत्यसन्ध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाज॥२६४॥
सुर-गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिँ चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीँ। राम-सरन सब गे मन माहीँ॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीँ। रघुपति भगत-भगति बस अहहीँ॥
सुधि करि अम्बरीष दुरवासा। भे सुर-सुरपति निपट निरासा॥
सहे सुरन्ह बहु काल बिपादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिँ धुनि माथा। अब सुर-काज भरत के हाथा॥
आन उपाउ न देखिय देवा। मानत राम सुसेवक सेवा॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। निज-गुन-सील राम बस करतहि॥
दो०—सुनि सुर-मत सुर गुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़ भाग।
सकल सुमङ्गल-मूल जग, भरत-चरन-अनुराग॥२६५॥
सीतापति-सेवक-सेवकाई। कामधेनु-सय-सरिस सुहाई॥
भरत-भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच बिधि बात बनाई॥
देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभाय बिबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डर नाहीँ। भरतहि जानि राम-परिछाहीँ॥
सुनि सुरगुरु-सुर-सम्मत सोचू। अन्तरजामी प्रभुहि सकोचू॥
निज सिर भार भरत जिय जाना। करत कोटि बिधि मन अनुमाना॥
करि बिचार मन दीन्ही ठीका। राम-रजायसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिँ थोरा॥
दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।

साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे॥
दो०—सुनत जनक आगवन, हरषेउ अवध-समाज।
रघुनन्दनहिं सकोच बड़, सोच बिबस सुर-राज॥२७२॥
गरइँ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषन देई॥
अस मन आनि मुदित नर-नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥
एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रातनहान लाग सब कोऊ॥
करि मज्जन पूजहिँ नर-नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥
रमा-रमन पदबन्दि बहोरी। बिनवहिँ अञ्जलि अञ्चल जोरी॥
राजा राम जानकी रानी। आनँद-अवधि अवध-रजधानी॥
सुबस बसउ फिर सहित समाजा। भरतहि राम करहु जुबराजा॥
यहि दुख-सुधा सीँचि सब काहू। देव देहु जग-जीवन लाहू॥
दो०—गुरु-समाज भाइन्ह सहित, राम राज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय माँग सब कोउ॥२७३॥
सुनि सनेह-मय पुरजन बानी। निन्दहिँ जोग बिरति मुनि ज्ञानी॥
एहि बिधि नित्य-करम करि पुरजन। रामहिँ करहिँ प्रनाम पुलकितन॥
ऊँच नीच मध्यम नर-नारी। लहहिँ दरस निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिँ। सकल सराहत कृपा निधानहिँ॥
लरिकाइहि तेँ रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील सकोच, सिन्धु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरलसुभाऊ॥
कहत राम-गुन-गन अनुरागे। सब निज भाग सराहनलागे॥
हम सम पुन्य-पुञ्ज जग थोरे। जिन्हहिँ राम जानत करि मोरे॥
दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब; सुनि आवत मिथिलेस॥
सहित सभा सम्भ्रम उठेउ, रबिकुल-कमल-दिनेस॥२७४॥
भाइ सचिव गुरु पुर जनसाथा। आगे गवन कीन्ह रघुनाथा॥
गिरि-वर दीख जनक पति जबहीँ। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीँ॥
राम-दरस लालसा उछाहू। पथ-स्रम लेस कलेस न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख-सुख सुधि केही॥
आवत जनक चले यहि भाँती। सहित समाज प्रेम-मति-माँती॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परस पर लागे॥

लगे जनक मुनिजन पद बन्दन। रिषिन्ह प्रनाम कीन्ह रघुनन्दन॥
भाइन्ह सहित राम मिलि राजहि। चले लेवाइ समेत समाजहि॥
दो०—आस्रम-सागर सान्तरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना-सरित, लिये जाहिँ रघुनाथ॥२७५॥
बोरति ज्ञान-बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरङ्गा। धीरज तट तरुवर कर भङ्गा॥
विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा॥
केवट-बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिँ न खेइ अइक नहिँ आवा॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे॥
आस्रम-उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अम्बुधि अकुलाई॥
सोक बिकल दोउ राज-समाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा॥
भूप-रूप-गुन-सील सराही। रोवहिँ सोक-सिन्धु अवगाही॥
हरिगीतिका-छन्द।
अवगाहि सोक-समुद्र सोचहिँ, नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिँ, बाम बिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगि-जन मुनि, देखि दसा विदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि,-सकइ सरित सनेह की॥११॥
सो०—किये अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिवरन्ह॥
धीरज धरिय नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥२७६॥
जासु ज्ञान रवि भव-निसि नासा। बचन किरन मुनि-कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय-राम-सनेह बड़ाई॥
विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम-सनेह-सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू॥
सोह न राम-प्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥
मुनि बहु बिधि बिदेह समुझाये। रामघाट सब लोग नहाये॥
सकल सोक-सङ्कुल नर नारी। सो बासर बीतेउ बिनु बारी॥
पसु-खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन बिचारू॥
दो०—दोउ समाज निमिराज रघु,-राज नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन-मलीन कृस-गात॥२७७॥

जे महिसुर दसरथ-पुर-बासी। जे मिथिलापति नगर-निवासी ॥
हंस-बंस-गुरु जनक-पुरोधा। जिन्ह जग मग परमारथ सोधा ॥
लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम-नय-बिरति-बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥
रिषिरुख लखि कह तिरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिँ असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहि सुहाना। पाइ रजायसु चले नहाना ॥

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लइ आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥२७८॥

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा ॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनंद अनुरागा ॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥
जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम-जनक-मुनि आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कन्द बिधि नाना। पावन सुन्दर सुधा समाना ॥

दो०—सादर सब कहँ राम-गुरु, पठये भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु, लगे करन फलहार ॥२७९॥

एहि बिधि बासर बीते चारी। राम निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीँ। बिनु सिय-राम फिरब भल नाहीँ॥
सीताराम सङ्ग बन-बासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लखन-राम-बैदेही। जेहि घर भाव बाम बिधि तेही ॥
दाहिन दइउ होइ जब जबहीँ। राम समीप बसिय बन तबहीँ ॥
मन्दाकिनि मज्जन तिहुँ काला। राम-दरस मुद-मङ्गल-माला ॥
अटन-राम-गिरि बन तापस थल। असन अमिय सम कन्द मूल फल॥
सुख समेत सम्बत दुइ साता। पल सम होहिँ न जनियहि जाता॥

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिँ कहाँ अस भाग।

सहज सुभाय समाज दुहुँ, राम-चरन अनुराग ॥२८०॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीय-मातु तेहि समय पठाईं। दासी देखि सुअवसर आईं॥
सावकास सुनि सब सिय-सासू। आयउ जनकराज-रनिवासू॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिये समय सम आनी॥
सील-सनेह सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिँ देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥
सब सिय-राम प्रेम कि सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय-मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय-फेन फोर पबि टाँकी॥

दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥२८१॥

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि-गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥
कौसल्या कह दोष न काहू। करम-बिबस दुख-सुख छति-लाहू॥
कठिन करम-गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता॥
ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के॥
देबि मोह-बस सोचिय बादी। बिधि प्रपञ्च अस अचल अनादी॥
भूपति जियब मरब उर आनी। सोचिय सखि लखि निज हित हानी॥
सीय-मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती-अवधि अवधपति-रानी॥

दो०—लखन-राम-सिय जाहु बन, भल परिनाम न पोच।
गहबरि हिय कह कौसिला, मोहि भरत कर सोच ॥२८२॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुत-बधू देवसरि-बारी॥
राम सपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप-भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीपि कि जाहिँ उलीचे॥
जानउँ सदा भरत कुल-दीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसे कनक मनि पारिखि पाये। पुरुष परखियहि समय सुभाये॥
अनुचित आज कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेसि ।
को बिबेक-निधि-बल्लभहि, तुम्हहिं सकइ उपदेसि ॥२८३॥

रानि राय सन अवसर पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ॥
रखिअहि लखन भरत गवनहिं बन । जौं यह मत मानइ महीप मन ॥
तौ भल जतन करब सुबिचारी । मोरे सोच भरत कर भारी ॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं । रहे नीक मोहि लागत नाहीं ॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी । सब भइँ मगन करुनरस सानी ॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि । सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि ॥
सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ । तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती । राम-मातु सुनि उठी सप्रीती ॥

दो०—बेगि पाउ धारिय थलहि, कह सनेह सति भाय ॥
हमरे तौ अब ईस-गति, कै मिथिलेस सहाय ॥२८४॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता । जनक प्रिया गहि पाय पुनीता ॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी । दसरथ-घरनि राम महतारी ॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अगिन-धूम गिरि-सिर-तृन धरहीं ॥
सेवक राउ करम-मन बानी । सदा सहाय महेस भवानी ॥
रउरे अंग जोग जग को है । दीप सहाय कि दिन कर सो है ॥
राम जाइ बन करि सुर काजू । अचल अवध पुर करिहहिं राजू ॥
अमर नाग नर राम-बाहु बल । सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
यह सब जाग बलिक कहि राखा । देबि न होइ मुधा मुनि भाखा ॥

दो०—अस कहि पग परि प्रेम अति, सिय हित बिनय सुनाय ।
सिय समेत सियमातु तब, चली सु आयसु पाय ॥२८५॥

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही । जो जेहि जोग भाँति तेहि तेही ॥
तापस बेष जानकी देखी । भा सब बिकल बिषाद बिसेखी ॥
जनक राम-गुरु आयसु पाई । चले थलहि सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी । पाहुनि पावन प्रेम प्रान की ॥
उर उमगेउ अम्बुधि अनुरागू । भयउ भूप मन मनहु पयागू ॥
सिय-सनेह-बट बाढ़त जोहा । तापर राम-प्रेम सिसु सोहा ॥
चिरजीवी-मुनि ज्ञान बिकल जनु । बूड़त लहेउ बाल-अवलम्बनु ॥

मोह मगन मति नाहिँ बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥
दो०—सिय पितु-मातु सनेह बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनि-सुता धीरज धरेउ, समउ सुधरम बिचारि॥२८६॥
तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेम परितोष बिसेखी॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥
जित सुरसरि कीरति-सरि तोरी। गवन कीन्ह बिधि-अंड करोरी॥
गङ्ग अवनि थल तीन बड़ेरे। यहि किय साधु समाज घनेरे॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु-मातु लीन्ह उर लाई। सिख आसिष हित दीन्ह सुहाई॥
कहत न सीय सकुच मन माहीँ। इहाँ बसब रजनी भल नाहीँ॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदय सराहत सील सुभाऊ॥
दो०—बार बार मिलि भेँटि सिय, बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत-गति, रानि सुबानि सयानि॥२८७॥
सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगन्ध सुधा ससि-सारू॥
मूँदे सजल-नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव-बन्ध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्म-बिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाहीँ। कहइ काह छलि छुअति न छाहीँ॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि-बिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू॥
दो०—निरवधि-गुन निरुपम-पुरुष, भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर सम, कबि-कुल-मति सकुचानि॥२८८॥
अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जल-हीन मीन गम धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिँ राम न सकहिँ बखानी॥
बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिँ लखन भरत बन जाहीँ। सब कर भल सब के मन माहीँ॥
देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिँ तरकी॥
भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि राम सीम समता की॥

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम-पग-नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥
दो०—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ राम रजाइ।
करिय न सोच सनेह बस, कहेउ भूप बिलखाइ॥२८९॥
राम-भरत-गुन गनत सप्रीती। निसि दम्पतिहि पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बन्दि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिय नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज-समाजा॥
दो०—प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि बाम॥२९०॥
सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम-पद-पंकज भाऊ॥
जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहि गति सब नीके॥
आपु आस्रमहिं धारिय पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनाम तब राम सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाये। सील सनेह सुभाय सुहाये॥
महाराज अब कीजिय सोई। सब कर धरम सहित हित होई॥
दो०—ज्ञान-निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल॥२९१॥
सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ज्ञान बिराग बिरागे॥
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आये इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥
रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेम-बस बिकल बिसेखी॥

आरत समुझि धरि धीरज राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा ॥
भरत आइ आगे भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे ॥
तात भरत कह तिरहुति-राऊ। तुम्हहिं विदित रघुवीर स्वभाऊ॥
दो०—राम सत्यव्रत धरम-रत, सव कर सील सनेहु।
सङ्कट सहत सकोच वस, कहिय जो आयसु देहु ॥२९२॥
सुनि तन पुलकि नयनभरिवारी। वोले भरत धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुल-गुरु सम हित माय न बापू ॥
कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ज्ञान-अम्बुनिधि आपुन आजू ॥
सिसु-सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइय स्वामी॥
एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम विधाता ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा-धरम कठिन जग जाना ॥
स्वामि-धरम स्वारथहि विरोधू। वैर-अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू ॥
दो०—राखि राम रुख धरम-व्रत, पराधीन मोहि जानि।
सब के सम्मत सर्व हित, करिय प्रेम पहिचानि ॥२९३॥
भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मञ्जु कठोरे। अरथ अमित अति आखर थोरे ॥
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी ॥
भूप भरत मुनि साधु समाजू। गे जहँ-विबुध-कुमुद-द्विजराजू ॥
सुनि सुधि सोच विकल सब लोगा। मनहुँ मीन-गन नव जल जोगा ॥
देव प्रथम कुल-गुरु गति देखी। निरखि विदेह सनेह विसेखी ॥
राम-भगति-मय भरत निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥
सब कोउ राम-प्रेम-मय पेखा। भये अलेख सोच वस लेखा ॥
दो०—राम सनेह सकोच वस, कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपञ्चहि पञ्च मिलि, नाहिं त भयउ अकाज ॥२९४॥
सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत-मति करि निज माया। पालु विबुध-कुल करि छल छाया ॥
विबुध विनय सुनि देवि सयानी। वोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥

बिधि-हरि-हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत-मति सकइ निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चन्दिनि कर कि चंडकर चोरी ॥
भरत हृदय सिय-राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस करि सारद गइ बिधि-लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका ॥

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमन्त्र कुठाट।
रचि प्रपञ्च माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाट ॥ २९५ ॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काज अकाजू ॥
गये जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल-दीपा ॥
समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस-पुरोधा ॥
जनक भरत सम्बाद सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई ॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू ॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥
बिद्यमान आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू ॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई ॥

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख, बनइ न ऊतर देत ॥२९६॥

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबन्धु धरि धीरज भारी ॥
कुसमउ देखि सनेह सँभारा। बढ़त बिन्धि जिमि घटज निवारा ॥
सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुनगन जगजोनी ॥
भरत-बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला ॥
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥
हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख-पङ्कज आई ॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मञ्जु मराली ॥

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि, सिथिल सनेह समाज।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय-रघुराज ॥२९७॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित अन्तरजामी ॥
सरल सुसाहिब सील-निधानू। प्रनत-पाल सर्बज्ञ सुजानू ॥
समरथ सरनागत हितकारी। गुन-गाहक अवगुन-अघ-हारी ॥

स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँई। मोहि समान मैं साइँ-दोहाई॥
प्रभु-पितु-बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमर-पद माहुर मीचू॥
राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजस चारु चहुँ ओर॥२९८॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलङ्की। नीच निसील निरीस निसङ्की॥
तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सकृत प्रनाम किये अपनाये॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु-समाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥
सो गोसाँइ नहिँ दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन-गति नट पाठक आधीना॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिर-मोर।
को कृपाल बिनु पालि है, बिरदावलि बरजोर॥२९९॥

सोक सनेह कि बाल सुभायेँ। आयउँ लाइ रजायसु बायेँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥
देखेउँ पाय सुमङ्गल-मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥
कृपा अनुग्रह अङ्ग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाँई। अपने सील सुभाय भलाई॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि-समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथा रुचि बानी। छमिहि देउ अति आरत जानी॥

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि॥३००॥

प्रभु-पद-पदुम-पराग दोहाई। सत्य-सुकृत-सुख-सींव सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावइ देवा॥
अस कहि प्रेम बिवस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिन्धु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

हरिगीतिका-छन्द।

रघुराउ सिथिल सनेह साधु-समाज मुनि मिथिला-धनी।
मन महँ सराहत भरत भायप, भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत, सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥१२॥

सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुये मारि मङ्गल चहत॥३०१॥

कपट-कुचालि-सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥
प्रथम कुमत करि कपट सकेला। सो उचाट सब के सिर मेला॥
सुर-माया सब लोग बिमोहे। राम-प्रेम अतिसय न बिछोहे॥
भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिन्धु सङ्गम जनु बारी॥
दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं। एक एक सन मरम न कहहीं॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवा न जुवानू॥

दो०—भरत जनक मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देव-माया सबहि, जथाजोग जन पाइ॥३०२॥

कृपासिन्धु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मन्त्री। भरत भगति सब कै मति जन्त्री॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनि-गन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल-कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल-बचन की नाँई॥
दो०—भरत बिमल-जस बिमल-बिधु, सुमति चकोर-कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥२०३॥
भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरतको। सीय-राम-पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहि प्रेम राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बामको॥
देखि दयाल दसा सब ही की। राम सुजान जानि जन जी की॥
धरम-धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देस काल लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघु-राजू॥
बोले बचन बानि सरबस से। हित परिनाम सुनत ससि रस से॥
तात भरत तुम्ह धरम-धुरीना। लोक-बेद-बिद प्रेम-प्रबीना॥
दो०—करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु-समाज लघुबन्धु-गुन, कुसमय किमि कहि जात॥२०४॥
जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥
तुम्हहिँ बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम-हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरु-कुल-कृपा सँभारी॥
नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिँ सहित सब होत खुआरू॥
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपात तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा॥
दो०—राजकाज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरु प्रभाउ पालिहि सबहि, भल होइहि परिनाम॥२०५॥
सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनी-धर-सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
साधन एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूति-मय बेनी॥
सो बिचारि सहि सङ्कट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥

बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुम्हहिँ अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥
जानि तुम्हहिँ मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिँ कुठाँय सुबन्धु सहाये। ओड़ियहि हाथ असनि के घाये॥
दो०—सेवक कर-पद-नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहिँ सोइ॥३०६॥
सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम-पयोधि अमिय जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥
भरतहि भयउ परम सन्तोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि-पङ्करुह जोरी॥
नाथ भयउ सुख साथ गये को। लहेउँ लाहु जग जनम भये को॥
अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलम्ब देव मोहि देई। अवधि पार पावौं जेहि सेई॥
दो०—देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ-सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ॥३०७॥
एक मनोरथ बड़ मन माहीँ। सभय सकोच जात कहि नाहीँ॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥
चित्रकूट मुनि-थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु-पद अङ्कित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी॥
अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत-भय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बन मङ्गल-दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥
रिषि-नायक जहँ आयसु देहीँ। राखेहु तीरथ-जल थल तेहीँ॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुख पावा। मुनि-पद-कमल मुदित सिर नावा॥
दो०—भरत-राम-सम्बाद सुनि, सकल सुमङ्गल-मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल॥३०८॥
धन्य भरत जय राम गोसाँई। कहत देव हरषत बरिआँई॥
मुनि मिथिलेस सभा सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू॥
भरत राम गुन-ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ—बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेम प्रेम अति पावन पावन॥

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम-भरत-सम्बादू। दुहुँ समाज हिय हरष बिषादू॥
राम-मातु दुख सुख सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी॥
एक कहहिँ रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥
दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमिय अनूप॥ ३०९॥
भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल-भाजन सब दिये चलाई॥
सानुज आपु अत्रिमुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू॥
पावन-पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिँ केहू॥
तब सेवकन्ह सरस थल देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥
भरतकूप अब कहिहहिँ लोगा। अति पावन तीरथ-जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिँ बिमल करम मन बानी॥
दो०—कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि, तीरथ पुन्य प्रभाउ॥३१०॥
कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोर निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुरु आयसु पाई॥
सहित समाज साज सब सादे। चले राम-बन अटन पयादे॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीँ। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीँ॥
कुस कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई॥
महि मञ्जुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥
सुमन बरषि सुर घन कर छाहीँ। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीँ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिँ सकल राम-प्रिय जानी॥
दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रान-प्रिय भरत कहँ, यह न होइ बड़ि बात॥३११॥
एहि बिधि भरत फिरत बन माहीँ। नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीँ॥
पुन्य जलास्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी। बूझत भरत दिव्य सब देखी॥

सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥
कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित रघुराई॥
देखि सुभाउ सनेह सुसेवा। देहिँ असीस मुदित बन देवा॥
फिरहिँ गये दिन पहर अढ़ाई। प्रभु-पद-कमल बिलोकहिँ आई॥

दो०—देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहतसुनत हरि-हर-सुजस, गयउ दिवस भइ साँझ॥३१२॥

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं॥
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचिरामफिरिअवनिबिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥
भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लगि सहेउ सबहि सन्तापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू॥
अब गोसाँइ मोहि देहु रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई॥

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल॥३१३॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाँई। सब सुचि सरस सनेह सगाई॥
राउर बदि भल भव-दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम-पद लाहू॥
स्वामि सुजान जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपाल पालहिँ सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किये बिचार न सोच खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँमिलि कीन्ह ढीठ हठिमोहू॥
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजिसकोचसिखइयअनुगामी॥
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी। छीर नीर बिबरन गति हंसी॥

दो०—दीनबन्धु सुनि बन्धु के, बचन दीन छल हीन।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन॥३१४॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिन्ता गुरुहि नृपहि घरबनकी॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिँ तुमहिँ सपनेहुँ नकलेसू॥

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुजस धरम परमारथ॥
पितु आयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहु कुमग पग परइ न खाले॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देस कोस पुरजन परिवारू। गुरु-पद-रजहि लाग छरभारू॥
तुम्ह मुनि-मातु-सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
दो०—मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक॥३१५॥
राज-धरम-सरबस एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई॥
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोष न साँती॥
भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
सम्पुट भरत सनेह-रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल-कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलम्ब लहे तेँ। अस सुख जस सिय-राम रहे तेँ॥
दो०—माँगेउ बिदा प्रनाम करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ॥३१६॥
सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥
नतरु लखन-सिय-राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥
राम कृपा अवरेब सुधारी। बिबुध-धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाय भरत सो। राम-प्रेम-रस कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर-धुरन्धर धीरज त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर-सभा दुखारी॥
मुनि गन गुरु धुरि धीर जनक से। ज्ञान-अनल मन कसे कनक से॥
जे बिरञ्चि निरलेप उपाये। पदुम पत्र जिमि जग जल जाये॥
दो०—तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भये मगन तन मन बचन, सहित बिराग बिचार॥३१७॥
जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥

बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानहि लोगू॥
सो सकोच-रस अकथ सुबानी। समउ सनेह सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरत रघुबर समुझाये। पुनि रिपु दवन हरषि हिय लाये॥
सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु-पद-पदुम बन्दि दोउ भाई। चले सीस धरि राम-रजाई॥
मुनि तापस बन देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

दो०—लखनहिँ भेंटि प्रनाम करि, सिर धरि सिय पदधूरि।
चले सप्रेम असीससुनि, सकल सुमङ्गल-मूरि॥३१८॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुतबिधि बिनय बड़ाई॥
देव दया-बस बड़ दुख पायेउ। सहित समाज काननहिँ आयेउ॥
पुर पग धारिय देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवन महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किये हरि हर सम जाने॥
सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बन्दि पग आसिष पाई॥
कौसिक बाम देव जाबाली। परिजन पुर जन सचिव सुचाली॥
जथा जोग करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
नारि-पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

दो०—भरत-मातु-पद बन्दि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच साज सब मेटि॥३१९॥

परिजन मातुपितहि मिलि सीता। फिरी प्रान-प्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनाम भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई॥
बार बार हिलिमिलि सब भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥
हृदय राम सिय लखन समेता। चले जाहिँ सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहिँ परबस मन मारे॥

दो०—गुरु गुरु-तिय पद बन्दिप्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित, आये परम निकेत॥३२०॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बन-चारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं । प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । श्रीमुख राम प्रेम-बस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल-मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की । बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरो सो॥

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन-कुटीर ।
भगति ज्ञान बैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू । राम-बिरह सब साज बिहालू ॥
प्रभु गुन-ग्राम गुनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पार सब भयऊ । सो बासर बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू । राम-सखा सब कीन्ह सुपासू ॥
सई उतरि गोमती नहाये । चौथे दिवस अवधपुर आये ॥
जनक रहे पुर बासर चारी । राज काज सब साज सँभारी ॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू । तिरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुरु सिख मानी । बसे सुखेन राम-रजधानी ॥

दो०—राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास ।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जियत अवधि की आस ॥३२२॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम बर बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू । आयसु देब न करब सँकोचू ॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाये । समाधान करि सुबस बसाये ॥
सानुज गे गुरु-गेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥
आयसु होइ त रहउँ सनेमा । बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा ॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरम-सार जग होइहि सोई ॥

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिन साधि ।

सिंहासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥ ३२३ ॥

राम-मातु गुरु-पद सिर नाई । प्रभु-पदपीठ रजायसु पाई ॥
नन्दिगाँव करि परन-कुटीरा । कीन्ह निवास धरम-धुर-धीरा ॥
जटा जूट सिर मुनि-पट धारी । महि खनि कुस साथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन व्रत नेमा । करत कठिन रिषि-धरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग-सुख-भूरी । मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवधराज सुरराज सिहाई । दसरथ धन सुनि धनद लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चञ्चरीक जिमि चम्पक-बागा ॥
रमा-बिलास राम-अनुरागी । तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥

दो०—रामप्रेम-भाजन भरत, बड़े न यहि करतूति ।
चातक हंस सराहियत, टेक बिबेक बिभूति ॥ ३२४ ॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई । घट न तेज बल मुख छबि सोई ॥
नित नव राम-प्रेम-पन पीना । बढ़त धरम-दल मन न मलीना ॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे । बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
सम दम संजम नियम उपासा । नखत भरत-हिय बिमल अकासा ॥
ध्रुव बिस्वास अवधि राका सी । स्वामि-सुरति सुरबीथि बिकासी ॥
राम-प्रेम-बिधु अचल अदोखा । सहित समाज सोह नित चोखा ॥
भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस-गनेस-गिरा-गम नाहीं ॥

दो०—नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति ॥ ३२५ ॥

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू । जीह नाम जप लोचन-नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं । भरत भवन बसि तप तन कसहीं ॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥
परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मञ्जु मुद-मङ्गल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू । महा-मोह-निसि दलन दिनेसू ॥
पाप पुञ्ज कुञ्जर मृगराजू । समन सकल सन्ताप समाजू ॥
जन-रञ्जन भञ्जन भव-भारू । राम-सनेह सुधाकर सारू ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन, होत जनम न भरत को ।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम, बिषम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दम्भ दूषन, सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि, राम सनमुख करत को ॥ १३ ॥

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिँ ।
सीय-राम-पद प्रेम, अवसि होइ भव-रस बिरति ॥३२८॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने
विमल विज्ञान वैराग्य सम्पादनो नाम
द्वितीयः सोपानः
समाप्तः ।
शुभमस्तु-मङ्गलमस्तु

---

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# रामचरितमानस

## तृतीय सोपान

## अरण्यकाण्ड

शार्दूलविक्रीडित-वृत्त ।

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं ।
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनं ध्वान्तापहं तापहम् ॥
मोहाम्भोधर पूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं ।
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥ १ ॥
सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं ।
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ॥
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं ।
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

सो०—उमा राम-गुन-गूढ़, पंडित मुनि पावहिँ बिरति ।
पावहिँ मोह बिमूढ़, जे हरि-बिमुख न धरम-रति ॥

पुर-नर-भरत-प्रीति मैँ गाई । मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन । करत जे बन सुर-नर-मुनि भावन ॥
एक बार चुनि कुसुम सुहाये । निज कर भूषन राम बनाये ॥
सीतहि पहिराये प्रभु सादर । बैठे फटिक-सिला पर सुन्दर ॥
सुरपति-सुत धरि बायस बेखा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा-मन्द-मति पावन चाहा ॥
सीता चरन चोँच हति भागा । मूढ़ मन्द-मति-कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक धनुष सायक सन्धाना ॥

सो०—अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुन-गेह ॥१॥

प्रेरित मन्त्र ब्रह्म-सर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज-रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥
भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र-भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा स्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहु बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥
मित्र करइ सत-रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुध-नदी बैतरनी॥
सब जग तेहि अनलहु तें ताता। जो रघुबीर-बिमुख सुनु भ्राता॥
नारद देखा बिकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित सन्ता॥
पठवा तुरत राम पहिँ ताही। कहेसि पुकारि प्रनत-हित पाही॥
आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित-बल अतुलित-प्रभुताई। मैं मति-मन्द जानि नहिँ पाई॥
निज कृत करम जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति-आरत-बानी। एक नयन करि तजा भवानी॥

सो०—कीन्ह मोह-बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम ॥२॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किये स्रुति सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहि मोहि जाना॥
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई॥
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाये। देखि राम आतुर चलि आये॥
करत दंडवत मुनि उर लाये। प्रेम-बारि दोउ जन अन्हवाये॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज-आस्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाये। दिये मूल फल प्रभु मन भाये॥

सो०—प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन, जोरि पानि अस्तुति करत ॥३॥

नगस्वरूपिणी-वृत्त ।

नमामि भक्तवत्सलं । कृपालु-शील-कोमलं ॥
भजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदं ॥ १ ॥
निकाम-श्याम-सुन्दरं । भवाम्बुनाथ-मन्दरं ॥
प्रफुल्ल-कञ्ज-लोचनं । मदादि-दोष-मोचनं ॥ २ ॥
प्रलम्ब-बाहु-विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवं ॥
निषङ्ग-चाप-सायकं । धरं त्रिलोक-नायकं ॥ ३ ॥
दिनेश-वंश-मण्डनं । महेश-चाप-खण्डनं ॥
मुनीन्द्र-सन्त-रञ्जनं । सुरारि-वृन्द-भञ्जनं ॥ ४ ॥
मनोजवैरि-वन्दितं । अजादि-देव-सेवितं ॥
विशुद्धबोध-विग्रहं । समस्त-दूषणापहं ॥ ५ ॥
नमामि इन्दिरापतिं । सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं । शची-पति-प्रियानुजं ॥ ६ ॥
त्वदङ्घ्रि मूल ये नरा । भजन्ति हीन-मत्सराः ॥
पतन्ति नो भवार्णवे । वितर्क-वीचि सङ्कुले ॥ ७ ॥
विविक्तवासिनस्सदा । भजन्ति मुक्तये मुदा ॥
निरस्य इन्द्रियादिकं । प्रयान्ति ते गति-स्वकं ॥ ८ ॥
त्वमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ॥ ९ ॥
भजामि भाववल्लभं । कुयोगिनां सुदुर्लभं ॥
स्वभक्त-कल्पपादपं । समं सुसेव्यमन्वहं ॥ १० ॥
अनूप रूप भूपतिं । नतोह मुर्विं जापतिं ॥
प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥ ११ ॥
पठन्ति ये स्तवं इदं । नरादरेण ते पदं ॥
भजन्ति नात्र संशयः । त्वदीयभक्ति संयुताः ॥ १२ ॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिर, कह कर जोरि बहोरि ।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजइ मति मोरि ॥ ४ ॥

अनसूया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषि-पतनी-मन सुख अधिकाई । आसिष देइ निकट बैठाई ॥

दिव्य बसन भूषन पहिराये । जे नित नूतन अमल सुहाये ॥
कह रिषि-बधू सरस मृदु बानी । नारि धरम कछु ब्याज बखानी ॥
मातु-पिता भ्राता हितकारी । मित-प्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित-दानि भर्ता बैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धरम मित्र अरु नारी । आपद काल परखियहि चारी ॥
बृद्ध रोग-बस जड़ धन हीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाव जम पुर दुख नाना ॥
एकइ धरम एक ब्रत नेमा । काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीँ । बेद पुरान संत अस कहहीँ ॥
उत्तम के अस बस मन माहीँ । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीँ ॥
मध्यम पर पति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धरम बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्ट-तिय स्रुति अस कहई ॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई । जानहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बञ्चक पर पति रति करई । रौरव नरक कलप सत परई ॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई । पतिब्रत-धरम छाड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

सो०—सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभगति लहइ ।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिँ ॥
तोहि प्रान-प्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित ॥५॥

सुनि जानकी परम सुख पावा । सादर तासु चरन सिर नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपा निधाना । आयसु होइ जाउँ बन आना ॥
सन्तत मो पर कृपा करेहू । सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धरम-धुरन्धर प्रभु कै बानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥
जासु कृपा अज सिव सनकादी । चहत सकल परमारथबादी ॥
ते तुम्ह राम अकाम पियारे । दीनबन्धु मृदु बचन उचारे ॥
अब जानी मैं श्री चतुराई । भजिय तुम्हहिँ सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहिँ कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥

केहि बिधि कहउँ जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अन्तरजामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥

हरिगीतिका-छन्द।

तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन, नयन मुख-पङ्कज दिये।
मन-ज्ञान-गुन-गोतीत प्रभु मैं, दीख जप तप का किये॥
जप जोग धरम-समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर-चरित पुनीत निसि दिन, दास तुलसी गावई॥१॥

दो०—कलिमल समन दमन दुख, राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिँ जे तिन्ह पर, राम रहहिँ अनुकूल॥
सो०—कठिन काल मल-कोस, धरम न ज्ञान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहिँ भजहिँ ते चतुर नर॥६॥

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहिँ सुर नर मुनि ईसा॥
आगे राम अनुज पुनि पाछे। मुनिबर बेष बने अति काछे॥
उभय बीच सिय सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिँ बर बाटा॥
जहँ जहँ जाहिँ देव रघुराया। करहिँ मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवतही रघुबीर निपाता॥
तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निजधाम पठावा॥
पुनि आये जहँ मुनि सरभङ्गा। सुन्दर अनुज जानकी सङ्गा॥

दो०—देखि राम-मुख-पङ्कज, मुनिवर-लोचन-भृङ्ग।
सादर पान करत अति,-धन्य जन्म सरभङ्ग॥७॥

कह मुनि सुनु रघुबीरकृपाला। सङ्कर मानस राजमराला॥
जात रहेउँ बिरञ्चि के धामा। सुनउँ स्रवन बन आइहहिँ रामा॥
चितवत पन्थ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानिजन दीना॥
सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेहु जन-मन-चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जबलगि मिलउँ तुम्हहिँ तनुत्यागी॥
जोग जज्ञ जप तप व्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभङ्गा। बैठे हृदय छाड़ि सब सङ्गा॥

दो०—सीता-अनुज समेत प्रभु, नील-जलद-तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुन-रूप श्रीराम॥ ८॥

अस कहि जोग-अगिनि तनु जारा। राम कृपा बैकुंठ सिधारा॥
ता तें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद-भगति बर लयऊ॥
रिषि-निकाय मुनिबर-गति देखी। सुखी भये निज हृदय बिसेखी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृन्दा। जयति प्रनत-हित करुना-कन्दा॥
पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृन्द बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया॥
जानतहू पूछिय कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अन्तरजामी॥
निसिचर-निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुनाथ नयन जल छाये॥

दो०—निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥९॥

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥
प्रभु आगवन स्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबन्धु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाँई। मिलिहहिं निज-सेवक की नाँई॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ज्ञान मन माहीं॥
नहिं सतसङ्ग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की॥
होइहहिं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन-पङ्कज भव-मोचन॥
निर्भर-प्रेम-मगन मुनि-ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पन्थ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम-भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस-फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आये। देखि दसा निज जन मन भाये॥
मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान-जनित सुख पावा॥

भूप-रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज-रूप देखावा॥
मुनि अकुलाइ उठा पुनि कैसे। विकल हीन-मनि फनिवर जैसे॥
आगे देखि राम तन-स्यामा। सीता अनुज सहित सुख-धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम-मगन मुनिवर बड़भागी॥
भुज-बिसाल गहि लिये उठाई। परम-प्रीति राखे उर लाई॥
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनकतरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदन बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा॥

दो०—तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिं बार।
निज-आस्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार॥१०॥

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करउँ कवन विधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रवि सनमुख खद्योत अँजोरी॥
श्याम तामरस दाम सरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनि चीरं॥
पानि चाप सर कटि तूनीरं। नौमि निरन्तर श्रीरघुबीरं॥
मोह बिपिन घन दहन कृसानुः। सन्त सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः॥
अरुन-नयन-राजीव सुवेसं। सीता नयन-चकोर निसेसं॥
हर-हृदि-मानस राजमरालं। नौमि राम उर-बाहु-बिसालं॥
संसय-सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कस-तर्क-विषादः॥
भव-भञ्जन रञ्जन-सुर-जूथः। त्रातु सदा नो कृपा-वरूथः॥
निर्गुन-सगुन विषम-सम-रूपं। ज्ञान-गिरा-गोतीतमनूपं॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भञ्जन-महि-भारं॥
भक्त-कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध-लोभ-मद-कामः॥
अति-नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥
अतुलित-भुज-प्रताप-बल-धामं। कलिमल विपुल विभञ्जन रामं॥
धर्म वर्म नर्मद गुन-ग्रामं। सन्ततं सन्तनोतु मम रामं॥
जदपि विरज व्यापक अविनासी। सब के हृदय निरन्तर वासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी॥
जे जानहिं ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर-अन्तरजामी॥
जो कोसलपति राजिव-नैना। करउ सो राम हृदय मम ऐना॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाये। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाये॥
परम-प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परइ झूठ का साँचा॥
तुम्हहिं नीक लागइ रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिज्ञाना। होहु सकल गुन-ज्ञान-निधाना॥
प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥

दो०—अनुज-जानकी सहित प्रभु, चाप-बान-धर राम।
मम-हिय-गगन इन्दु इव, बसहु सदा यह काम॥११॥

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुम्भज-रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुरु दरसन पाये। भये मोहि एहि आस्रम आये॥
अब प्रभु सङ्ग जाउँ गुरु पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिये सङ्ग बिहँसे दोउ भाई॥
पन्थ कहत निज-भगति अनूपा। मुनि आस्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुरु पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आये मिलन जगत-आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिन देव जपत हहु जेही॥
सुनत अगस्त तुरत उठि धाये। हरि बिलोकि लोचन जल छाये॥
मुनि पद कमल परे दोउ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई॥
सादर कुसल पूछि मुनिज्ञानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवन्त नहिं दूजा॥
जहँ लगि रहे अपर मुनिबृन्दा। हरषे सब बिलोकि सुखकन्दा॥

दो०—मुनि-समूह महँ बैठे, सनमुख सब की ओर।
सरद-इन्दु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर॥१२॥

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ। ता तें तात न कहि समुझायेउँ॥
अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारउँ मुनि द्रोही॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥
तुम्हरेइ भजन-प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिँ न जानहिँ आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥
ते तुम्ह सकल-लोकपति-साँई। पूछेहु मोहि मनुज की नाँई॥
अब बर माँगउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री-अनुज-समेता॥
अबिरल भगति बिरति सतसङ्गा। चरन-सरोरुह प्रीति अभङ्गा॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनन्ता। अनुभव गम्य भजहिँ जेहि सन्ता॥
अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥
सन्तत दासन्ह देहु बड़ाई। ता तेँ मोहि पूछेहु रघुराई॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पञ्चबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक-बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र-साप मुनिबर कर हरहू॥
बास करहु तहँ रघुकुल-राया। कीजिय सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहि पञ्चबटी नियराई॥

दो०—गीधराज सोँ भेँट भइ, बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन-गृह छाइ॥१३॥

जब तेँ राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाये। दिन दिन प्रति अति होहिँ सुहाये॥
खग-मृग बृन्द अनन्दित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥
एक बार प्रभु सुख-आसीना। लछिमन बचन कहे छल हीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साँई। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाँई॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करउँ चरन-रज सेवा॥
कहहु ज्ञान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया॥

दो०—ईस्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ॥
जा तेँ होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ॥१४॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥

एक दुष्ट अतिसय दुख-रूपा। जा बस जीव परा भव-कूपा॥
एक रचइ जग गुन-बस जा के। प्रभु प्रेरित नहिं निज-बल ता के॥
ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिय तात सो परम-बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥
दो०—माया ईस न आप कहँ, जान कहिय सो जीव।
बन्ध मोच्छ-प्रद सर्ब पर, माया प्रेरक सीव॥१५॥
धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना। ज्ञान मोच्छ-प्रद बेद बखाना॥
जा तें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत-सुखदाई॥
सो सुतन्त्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो सन्त होहिं अनुकूला॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम-पन्थ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज धरम निरत स्रुति रीती॥
एहि कर फल मन बिषय बिरागा। तब मम धरम उपज अनुरागा॥
स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥
सन्त चरन-पङ्कज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु-पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहि कहँ जानइ दृढ़ सेवा॥
मम गुन-गावत पुलक सरीरा। गदगद-गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दम्भ न जा के। तात निरन्तर बस मैं ता के॥
दो०—बचन करम मन मोरि गति, भजन करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय-कमल महँ, करउँ सदा बिस्राम॥१६॥
भगति-जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिर नावा॥
एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ज्ञान गुन नीती॥
सूपनखा रावन के बहिनी। दुष्ट-हृदय दारुन जसि अहिनी॥
पञ्चवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥
भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबि मनि द्रव रबिहि बिलोकी॥
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥

ता तें अब लगि रहिउ कुमारी । मन माना कछु तुम्हहिं निहारी ॥
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुमार मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥
सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समरथ कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभ-गति व्यभिचारी ॥
लोभी जस चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥
पुनि फिरि रामनिकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥
तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयङ्कर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सैन बुझाई ॥

दो०—लछिमन अति लाघव सों, नाक कान बिनु कीन्हि ।
ता के कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्हि ॥१७॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता । धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥
तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
धाये निसिचर-निकर बरूथा । जनु सपच्छ कज्जल-गिरि जूथा ॥
नाना बाहन नानाकारा । नानायुध-धर घोर अपारा ॥
सूपनखा आगे करि लीनी । असुभ-रूप स्रुति नासा हीनी ॥
असगुन अमित होहिं भयकारी । गनहिं न मृत्यु बिबस सबझारी ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं । देखि बिकट भट अति हरषाहीं ॥
कोउ कह जियत धरहु दोउ भाई । धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई ॥
धूरि पूरि नभ-मंडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥
लेइ जानकिहि जाहु गिरि-कन्दर । आवा निसिचर कटक भयङ्कर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनु पानी ॥
देखि राम रिपु-दल चढ़ि आवा । बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥

हरिगीतिका-छन्द

कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों ।
मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों ॥

कटि कसि निषङ्ग बिसाल भुज गहि, चाप बिसिख सुधारि कै ।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज-घटा निहारि कै ॥२॥

सो०—आइ गये बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट ।
जथा बिलोकि अकेल, बाल रबिहि घेरत दनुज ॥१८॥

प्रभु बिलोकि सर सकहिँ न डारी । थकित भई रजनीचर-धारी ॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन । यह कोउ नृप-बालक नर भूषन ॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जनम सुनहु सब भाई । देखी नहिँ असि सुन्दरताई ॥
जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा । बधलायक नहिँ पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई । जीवत भवन जाहु दोउ भाई ॥
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥
हम छत्री मृगया बन करहीं । तुम्ह से खल-मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवन्त देखि नहिँ डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥
जद्यपि मनुज दनुज-कुल-घालक । मुनि-पालक खल-सालक बालक ॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू । समर बिमुख मैं हतउँ न काहू ॥
रन चढ़ि करिय कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ । सुनि खर-दूषन उर अति दहेऊ ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाये, बिकट भट रजनीचरा ।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा ॥
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।
भये बधिर ब्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥३॥

दो०—सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति ।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ॥
तिन्ह के आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर ।
तानि सरासन स्रवन लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ॥१९॥

तोमर छन्द ।

तब चले बान कराल । फुङ्करत जनु बहु ब्याल ॥
कोपेउ समर श्रीराम । चले बिसिख निसित निकाम ॥१॥

अवलोकि खर तर तीर। मुरि चले निसिचर बीर।
भये क्रुद्ध तीनिउँ भाइ। जो भागि रन तें जाइ ॥२॥
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि।
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार ॥३॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर सन्धानि।
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच ॥४॥
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन।
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान ॥५॥
भट कटत तन सत-खंड। पुनि उठत करि पाखंड।
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड ॥६॥
खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥७॥

हरिगीतिका-छन्द।

कटकटहिं जम्बुक भूत प्रेत पिसाच खप्पर सञ्चहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नञ्चहीं ॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं, भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु-धरु करहिं भयकर गिरा॥८
अन्तावरी, गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम-पुर-बासी मनहुँ बहु, बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उरबिदारे, बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट त्रिसिरादि खरदूषन फिरे॥
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर-नायका॥
महि परत उठि भट भिरत मरत न, करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध-धनी
सुर मुनि सभय प्रभु देखि माया,—नाथ अति कौतुक करयो।
देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपु-दल लरि मरयो॥
दो०—राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।

करि उपाय रिपु मारे, छन महुँ कृपानिधान ॥
हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान ।
अस्तुति करि करि सब चले, सोभित बिबिध बिमान ॥२०॥
जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आये । प्रभु पद परत हरषि उर लाये ॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न अघाता ॥
पञ्चवटी बसि श्री रघुनायक । करत चरित सुर-मुनि सुखदायक ॥
धुआँ देखि खर दूषन केरा । जाइ सुपनखा रावन प्रेरा ॥
बोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिन राती । सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सत-कर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाये । स्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥
सङ्ग तें जती कुमन्त्र तें राजा । मान तें ज्ञान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेग नीति असि सुनी ॥
सो०—रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदन करन ॥
दो०—सभा माँझ परि ब्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ ।
तोहि जियत दसकन्धर, मोरि कि असि गति होइ ॥२१॥
सुनत सभा सद उठे अकुलाई । समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लङ्केश कहसि किन बाता । केइ तव नासा कान निपाता ॥
अवध-नृपति-दसरथ के जाये । पुरुष सिंह बन खेलन आये ॥
समुझि मोहि उनके करनी । रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥
जिन कर भुज-बल पाइ दसानन । अभय भये बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥
अतुलित-बल-प्रताप दोउ भ्राता । खल-बध-रत सुर-मुनि-सुख दाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के सङ्ग नारि एक स्यामा ॥
रूप-रासि बिधि नारि सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे स्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥
खरदूषन सुनि लगे पुकारा । छन महँ सकल कटक उन्ह मारा ॥

खर-दूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥

दो०—सूपनखहि समुझाय करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नींद परइ नहिं राति॥२२॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खरदूषन मोहि सम बलवन्ता। तिन्हहिं को मारे बिनु भगवन्ता॥
सुर-रञ्जन भञ्जन-महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥
होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा॥
जौं नर-रूप भूप-सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिन्धु तट जहवाँ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥

दो०—लछिमन गये बनहिं जब, लेन मूल-फल कन्द।
जनक-सुता सन बोले, बिहँसि कृपा-सुख-वृन्द॥२३॥

सुनहु प्रिया ब्रत-रुचिर सुसीला। मैं कछु करब ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महँ करहु निवासा। जौं लगि करउँ निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कथा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी॥
निजप्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सुसील रूप बिनीता॥
लछिमनहू यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचेउ भगवाना॥
दसमुख गयेउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अङ्कुस धनु उरग बिलाई॥
भय-दायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

दो०—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयेहु तात॥२४॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे॥
होहु कपट-मृग तुम छल कारी। जेहि बिधि हरि आनउँ नृप नारी॥
तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर-रूप चराचर-ईसा॥
ता सों तात बयर नहिं कीजै। मारे मरिय जियाये जीजै॥
मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयर किये भल नाहीं॥

भइ मम कीट भृङ्ग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥
दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हर-कोदंड।
खर-दूषन त्रिसिरा-बधेउ, मनुज कि अस बरिबंड॥२५॥
जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥
तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिँ कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बन्दि कबि भानस-गुनी॥
उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना॥
उतर देत मोहि बधब अभागे। कस न मरउँ रघुपति सर लागे॥
अस जिय जानि दसानन सङ्गा। चला राम-पद-प्रेम अभङ्गा॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥

हरिगीतिका-छन्द।

निज परम प्रीतम देखि लोचन, सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत-पद मन लाइहौं॥
निर्बान-दायक क्रोध जा कर, भगति अवसहि बस करी।
निज पानि सर सन्धानि सो मोहि, बधिहि सुख-सागर-हरी॥८॥

दो०—मम पाछे धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ, धन्य न मो सम आन॥२६॥
तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट-मृग भयऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक-देह मनि-रचित बनाई॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अङ्ग-अङ्ग सुमनोहर-बेखा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति-सुन्दर छाला॥
सत्यसन्ध प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर-काज सँवारन॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाये राम सरासन साजी॥

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया-मृग पाछे सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लेइ दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥
लछिमन कर प्रथमहि लेइ नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज-देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥
अन्तर-प्रेम तासु पहिचाना। मुनि-दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु-गुन-गाथ।
निज-पद दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ॥२७॥

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप, कर कटि तूनीरा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि सङ्कट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ सङ्कट परइ कि सोई॥
मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन-दिसि-देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन-ससि-राहू॥
सून बीच दसकन्धर देखा। आवा निकट जती के बेखा॥
जा के डर सुर असुर डराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं॥
सो दससीस स्वान की नाईं। उत इत चितइ चला भड़िआई॥
इमि कुपन्थ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥
नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥
कह सीता सुनु जती गोसाँई। बोलेहु बचन दुष्ट की नाँई॥
तब रावन निज-रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु खल रहु ठाढ़ा॥
जिमि हरि-बधुहि छुद्र सस चाहा। भयेसि काल-बस निसिचर-नाहा॥
सुनत बचन दससीस लजाना। मन महँ चरन बन्दि सुख माना॥

दो०—क्रोधवन्त तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन-पथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ॥२८॥

हा जगदेक-बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति-हरन सरन-सुख-दायक। हा रघुकुल-सरोज-दिननायक॥

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोषा । सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोषा ॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही । भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥
बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी । भये चराचर जीव दुखारी ॥
गीधराज सुनि आरत बानी । रघुकुल-तिलक-नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई । जिमि मलेछ-बस कपिला-गाई ॥
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । करिहउँ जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवन्त खग कैसे । छूटइ पबि परबत कहँ जैसे ॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतान्त समाना । फिरि दसकन्धर कर अनुमाना ॥
की मैनाक कि खगपति होई । मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥
सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू । नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥
राम-रोष-पावक अति-घोरा । होइहि सलभ सकल-कुल तोरा ॥
उतर न देत दसानन जोधा । तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन मारि बिदारेसि देही । दंड एक भइ मुरछा तेही ॥
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पङ्ख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि-अद्भुत-करनी ॥
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता । ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लेइ गयऊ । बन असोक महँ राखत भयऊ ॥

दो०—हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ ।
तब असोक-पादप तर, राखेसि जतन कराइ ॥
जेहि बिधि कपट-कुरङ्ग सँग, धाइ चले श्रीराम ।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि-नाम ॥२९॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाहिज चिन्ता कीन्ह बिसेखी ॥

जनक-सुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥
निसिचर निकर फिरहिँ बन माहीँ। मम मन सीता आस्रम नाहीँ॥
गहि पद-कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥
अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि-तट आस्रम जहवाँ॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप-सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाये बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खञ्जन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्द कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीँ। नेकु न सङ्क सकुच मन माहीँ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीँ। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीँ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
पूरनकाम-राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥
आगे परा गीध-पति देखा। सुमिरत राम-चरन जिन्ह रेखा॥

दो०—कर-सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर।
निरखि राम छबि-धाम-मुख, बिगत भई सब पीर॥३०॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भञ्जन-भव-भीरा॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहि खल जनक-सुता हरि लीन्ही॥
लेइ दच्छिन-दिसि गयउ गोसाँई। बिलपति अति कुररी की नाँई॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता॥
जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ स्रुति गावा॥
सो मम लोचन गोचर आगे। राखउँ देह नाथ केहि खाँगे॥
जल भरि नयन कहहिँ रघुराई। तात करम निज तेँ गति पाई॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीँ। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीँ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा॥

दो०—सीता-हरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ॥३१॥
गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
स्याम-गात बिसाल भुज-चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥

हरिगीतिका-छन्द।

जय राम रूप अनूप निर्गुन, सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु-प्रचंड-खंडन, चंड-सर मंडन मही॥
पाथोद-गात सरोज-मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव-भय मोचनं॥९॥
बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिन्द गो-पर द्वन्द्व-हर बिज्ञान-घन धरनी-धरं॥
जे राम मन्त्र जपन्त सन्त अनन्त जन मन रञ्जनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि-खल-दल-गञ्जनं॥१०॥
जेहि स्रुति निरञ्जन ब्रह्म ब्यापक, बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ज्ञान बिराग जोग, अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुनाकन्द सोभा, बृन्द अग जग मोहई।
मम-हृदय-पङ्कज-भृङ्ग अङ्ग, अनङ्ग बहु छबि सोहई॥ ११॥
जो अगम सुगम सुभाव निर्मल, असम सम सीतल सदा
पस्यन्ति जं जोगी जतन करि, करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमानिवास सन्तत, दास-बस त्रिभुवन-धनी।
मम उर बसहु सो समन संसृति, जासु कीरति पावनी॥ १२॥

दो०—अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम॥ ३२॥
कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिषभोगी। गति दीन्ही जो जाँचत जोगी॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥
पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥
सकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पञ्चानन॥
आवत पन्थ कबन्ध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता॥

दुर्बासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु-पद-पेखि मिटा सो पापा॥
सुनु गन्धर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सुहाइ ब्रह्म-कुल-द्रोही॥
दो०—मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरञ्चि सिव, बस ता के सब देव॥ ३३॥
सापत ताड़त परुष कहन्ता। बिप्र पूज्य अस गावहिँ सन्ता॥
पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रबीना॥
कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीत देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिर नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥
ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आस्रम पग धारा॥
सबरी देखि राम गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेममगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लेइ चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे॥
दो०—कन्द मूल फल सरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाये, बारंबार बखानि॥ ३४॥
पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करउँ तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम त अधम अधम अतिनारी। तिन्ह महँ मैं मतिमन्द अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिय जैसा॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीँ। सावधान सुनु धरु मन माहीँ॥
प्रथम भगति सन्तन्ह कर सङ्गा। दूसरि रति मम कथा प्रसङ्गा॥
दो०—गुरु-पद-पङ्कज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम-गुन-गन, करइ कपट तजि गान॥ ३५॥
मन्त्र-जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पञ्चम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम-सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरन्तर सज्जन-धर्मा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मा तें सन्त अधिक करि लेखा॥

आठवँ जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥
नव महँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥
जोगि-वृन्द दुर्लभ-गति जोई। तो कहँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनक सुता कै सुधि भामिनी। जानहि कहु करिवर-गामिनी॥
पम्पासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहू पूछहु मतिधीरा॥
बार बार प्रभु पद सिर नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

कहि कथा सकल बिलोकि हरि-मुख, हृदय पद-पङ्कज धरे।
तजि जोग-पावक देह हरि पद, लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर विविध-कर्म अधर्म बहु-मत सोक-प्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दासतुलसी, लीन राम पद अनुरागहू॥ १३॥

दो०—जाति हीन अघ-जनम-महि, मुकुति कीन्हि असि नारि।
महा-मन्द-मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ३६॥

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक सम्बादा॥
लछिमन देखु बिपिन कै सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग-मृग-वृन्दा। मानहुँ मोरि करत हहिं निन्दा॥
हमहिं देख मृग-निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम आनन्द करहु मृग-जाये। कञ्चन मृग खोजन ये आये॥
सङ्ग लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देहीं॥
सास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय॥
राखिय नारि जदप उर माहीं। जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसन्त सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

दो०—बिरह-विकल बल-हीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित विपिन मधुकर खग, मदन कीन्हि बगमेल॥

देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटकु हटकि मन जात ॥३७॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग होइ छाये॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर-चकोर-कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुन्दुभी झरना। चातक बन्दी गुन-गन बरना॥
मधुकर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठी आई॥
चतुरङ्गिणी सेन सँग लीन्हे। बिचरत मनहुँ चुनौती दीन्हे॥
लछिमन देखत राम अनीका। रहहिँ धीर तिन्ह कै जग लीका॥
यहि के एक परम-बल नारी। तेहि तेँ उबर सुभट सोइ भारी॥

दो०—तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिज्ञान-धाम मन; करहिँ निमिष महँ छोभ।
लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष-बचन बल, मुनिबर कहहिँ बिचारि ॥३८॥

गुनातीत सचराचर-स्वामी। राम उमा सब अन्तरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिँ सकल राम की दाया॥
सो नर इन्द्रजाल नहिँ भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरिभजन जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गये सरोबर तीरा। पम्पा नाम सुभग गम्भीरा॥
सन्त हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिँ बिबिध मृग नीरा। जनु उदार-गृह जाचक भीरा॥

दो०—पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुन ब्रह्म॥

सुखी मीन सब एकरस, अति अगाध जल माहिँ ।
जथा धर्म-सीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिँ ॥३९॥

बिकसे सरसिज नाना रङ्गा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृङ्गा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहिँ जाई ॥
सुन्दर-खग-गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये । चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये ॥
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चञ्चरीक-पटली कर गाना ॥
सीतल मन्द सुगन्ध सुभाऊ । सन्तत बहइ मनोहर बाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीँ । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीँ ॥

दो०—फल भारन्ह नमि बिटप सब, रहे भूमि नियराइ ॥
पर-उपकारी-पुरुष जिमि, नवहिँ सुसम्पति पाइ ॥४०॥

देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जन कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुन्दर तरुबर छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आये । अस्तुति करि निज धाम सिधाये ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज सन कथा रसाला ॥
बिरहवन्त भगवन्तहि देखी । नारद मन भा सोच बिसेखी ॥
मोर साप करि अङ्गीकारा । सहत राम नाना दुख भारा ॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई । पुनि न बनिहि अस अवसर आई ॥
यह बिचारि नारद कर बीना । गये जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥
गावत रामचरित मृदु बानी । प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिये उठाई । राखे बहुत बार उर लाई ॥
स्वागत पूछि निकट बैठारे । लछिमन सादर चरन पखारे ॥

दो०—नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि ।
नारद बोले बचन तब, जोरि सरोरुह-पानि ॥४१॥

सुनहु उदार परम रघुनायक । सुन्दर अगम सुगम बर-दायक ॥
देहु एक बर माँगउँ स्वामी । जद्यपि जानत अन्तरजामी ॥
जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥

कवनबस्तुअसि प्रिय मोर लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह माँगी॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर माँगउँ करउँ ढिठाई॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक ते एका॥
राम सकल नामन्ह तेँ अधिका। होउ नाथ अघ-खग-गन बधिका॥

दो०—राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहु भगत-उर-ब्योम॥
एव मस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिन्धु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभु-पद नायउ माथ॥ ४२॥

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोलेउ मृदु बानी॥
राम जबहिं प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करइ न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महँतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरु गाई॥
प्रौढ़ भये पर सुत तेहि माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥
मोरे प्रौढ़-तनय-सम ज्ञानी। बालक-सुत सम दास अमानी॥
जनहिँ मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आहीं॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पायेहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं॥

दो०—काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि॥ ४३॥

सुनमुनि कह पुरान स्रुति सन्ता। मोह बिपिन कहँ नारि बसन्ता॥
जप तप नेम जलासय झारी। होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहिँ हरष-प्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह-बृन्दा। होइ हिम तिन्हहिँ देति सुख-मन्दा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर-रितु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम तिय कहहिँ प्रबीना॥

दो० — अवगुन-मूल सूल-प्रमदा, सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि ॥ ४४ ॥

चौ० — सुनि रघुपति के बचन सुहाये। मुनि तन पुलक नयन भरि आये॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ज्ञान-रङ्क नर मन्द अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिज्ञान बिसारद॥
सन्तन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भञ्जन भव भीरा॥
सुनु मुनि सन्तन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह तें मैं उन्ह के बस रहऊँ॥
षट-बिकार-जित अनघ अकामा। अचल अकिञ्चन सुचि सुख धामा॥
अमित-बोध अनीह मित-भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद-हीना। धीर भगति-पथ परम-प्रबीना॥

दो० — गुनागार संसार-दुख,-रहित बिगत सन्देह।
तजि मम चरन-सरोज प्रिय, जिन्ह कहँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

चौ० — निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाव सबहि सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु-गोबिन्द-बिप्रपद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मइत्री दाया। मुदिता मम-पद-प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिज्ञाना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दम्भ-मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित पर-हित-रत-सीला॥
सुनु मुनि साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते॥

हरिगीतिका-छन्द।

कहि सक न सारद सेष नारद, सुनत पद-पङ्कज गहे।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने, भगत गुन निज-मुख कहे॥
सिर नाइ बारहिं बार चरनन्हि, ब्रह्मपुर नारद गये।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रंग रये ॥ १४ ॥

दो० — रावनारि-जस पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
रामभगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग॥
दीप-सिखा सम जुबति तन, मन जनि होसि पतङ्ग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसङ्ग ॥ ४६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलि कलुष बिध्वंसने बिमल बैराग्य सम्पादनो नाम तृतीयः सोपानः समाप्तः।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# रामचरितमानस

## चतुर्थ-सोपान

## किष्किन्धाकाण्ड

शार्दूलविक्रीडित-वृत्त ।

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ ।
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ॥
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्म्मौ हितौ ।
सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हिनः ॥१॥
ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययम् ।
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दु सुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा ॥
संसाररामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनम् ।
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥२॥

सो॰—मुक्ति जन्म-महि जानि, ज्ञान खानि अघहानि कर ।
जहँ बस सम्भु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥
जरत सकल सुर-वृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मन मन्द, को कृपाल सङ्कर सरिस ॥

आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक-पर्बत नियराया ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ । आवत देखि अतुल-बल-सीवाँ ॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल-रूप-निधाना ॥
धरि बटुरूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जिय सैन बुझाई ॥
पठये बालि होहिँ मन मैला । भागउँ तुरत तजउँ यह सैला ॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥

की तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन-भूमि कोमल-पद-गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप-बाता॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर-नारायण की तुम्ह दोऊ॥
दो०—जग-कारन तारन-भव, भञ्जन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल-भुवन-पति लीन्ह मनुज अवतार॥१॥
कोसलेस दसरथ के जाये। हम पितु बचन मानि बन आये॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। सङ्ग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिँ हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिँ बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साँईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥
तव माया बस फिरउँ भुलाना। ता तेँ मैं नहिँ प्रभु पहिचाना॥
दो०—एक मैं मन्द मोह बस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान॥२॥
जद्यपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परइ जनि भोरे॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिँ कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे॥
अस कहि परेउ चरन लपटाई। निज-तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाय उर लावा। निज-लोचन जल सींचि जुड़ावा॥
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैँ मम प्रिय लछिमन तेँ दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य-गति सोऊ॥
दो०—सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त॥३॥
देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥

तेहि सन नाथ मइत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥
एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिये दुअउ जन पीठि चढ़ाई॥
जब सुग्रीव राम कहँ देखा। अतिसय जनम धन्य करि लेखा॥
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिँ बिधि मोसन ये प्रीती॥

दो०—तब हनुमत उभय दिसि,-की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ ४॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस-कुमारी॥
मन्त्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन-पन्थ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥
राम राम हा राम पुकारी। हमहिँ देखि दीन्हेउँ पट डारी॥
माँगा राम तुरत तेहि दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥

दो०—सखा बचन सुनि हरषे, कृपासिन्धु बल-सीवँ।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीवँ॥ ५॥

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मय-सुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥
अर्ध राति पुर-द्वार पुकारा। बाली रिपु-बल सहइ न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बन्धु सँग लागा॥
गिरिबर-गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई॥
परखेसु मोहि एक पखवारा। नहिँ आवउँ तब जानेसु मारा॥
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥
मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु साँई। दीन्हेउँ मोहि राज बरिआई॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा॥
रिपु सम मोहि मारेसि अतिभारी। हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी॥

जिमि पाखंड-बिवाद तें, गुप्त होहिं सदग्रन्थ ॥१४॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । वेद पढ़हिं जनु वटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका । साधक मन जस मिले बिवेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी । करइ क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
ससि-सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै सम्पति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा । जनु दम्भिन्ह कर मिला समाजा ॥
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि सुतन्त्र भये बिगरहिं नारी ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह-मद-माना ॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा । जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ॥
विविध जन्तु सङ्कुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गन उपजे ज्ञाना ॥

दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतङ्ग ।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसङ्ग सुसङ्ग ॥१५॥

बरषा बिगत सरद-रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्त पन्थ जल सोखा । जिमि लोभहिं सोखइ सन्तोखा ॥
सरिता-सर निर्मल जल सोहा । सन्त हृदय जस गत-मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥
जानि सरद-रितु खञ्जन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥
पङ्क न रेनु सोह असि धरनी । नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥
जल सङ्कोच बिकल भइ मीना । अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरिभगति पाइ स्रम, तजहिं आस्रमी चारि ॥१६॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि-सरन न एकउ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा॥
गुञ्जत मधुकर निकर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर-सम्पति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न सङ्कर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। सन्त दरस जिमि पातक टरई॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक-दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा॥

दो०—भूमि जीव सङ्कुल रहे, गये सरदरितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय-भ्रम-समुदाइ॥१७॥

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक बार कैसेहु सुधि जानउँ। कालहु जीति निमिष महँ आनउँ॥
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउ सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज-कोस-पुर-नारी॥
जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली॥
जासु कृपा छूटहि मद-मोहा। ता कह उमा कि सपनेहु कोहा॥
जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी। जिन्ह रघुबीर चरण रति मानी॥
लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

दो०—तब अनुजहि समुझावा, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लेइ आवहु, तात सखा सुग्रीव॥१८॥

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। राम-काज सुग्रीव बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिर नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥
सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना॥
अब मारुत-सुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर-जूहा॥
कहेहु पाख महँ आव न जोई। मोरे कर ता कर बध होई॥
तब हनुमन्त बोलाये दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥
भय अरु प्रीति नीति दिखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥
एहि अवसर लछिमन पुर आये। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये॥

दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करउँ पुर छार।

ब्याकुल नगर देखि तब, आयउ बालकुमार ॥ १९॥
चरन नाइ सिर बिनती कीन्ही । लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥
क्रोधवन्त लछिमन सुनि काना । कह कपीस अति भय अकुलाना ॥
सुनु हनुमन्त सङ्ग लेइ तारा । करि बिनती समुझाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन बन्दि प्रभु सुजस बखाना ॥
करि बिनती मन्दिर लेइ आये । चरन पखारि पलँग बैठाये ॥
तब कपीस चरनन्हि सिर नावा । गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥
नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं । मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा । लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥
पवन-तनय सब कथा सुनाई । जेहि बिधि गये दूत समुदाई ॥
दो०—हरषि चले सुग्रीव तब, अङ्गदादि कपि साथ ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ ॥२०॥
नाइ चरन सिर कह कर जोरी । नाथ मोहि कछु नाहिँ न खोरी ॥
अतिसय प्रबल देव तव माया । छूटइ राम करहु जौं दाया ॥
बिषय-बस्य सुर-नर-मुनि स्वामी । मैं पामर पसु कपि अति कामी ॥
नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध-तम-निसि जो जागा ॥
लोभ पास जेहि गर न बँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥
यह गुन साधन तें नहिं होई । तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ॥
तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतन करहु मन लाई । जेहिं बिधि सीता कै सुधि पाई ॥
दो०—एहि बिधि होत बतकही, आये बानर जूथ ।
नाना बरन सकल दिसि, देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥
बानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम-पद नावहिं माथा । निरखि बदन सब होहिं सनाथा ॥
अस कपि एक न सेना माहीं । राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥
यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई । बिस्व-रूप ब्यापक रघुराई ॥
ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई । कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम-काज अरु मोर निहोरा । बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥
जनक-सुता कहँ खोजहु जाई । मास दिवस महँ आयहु भाई ॥

अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये। आवइ बनिहि सो मोहि मराये॥
दो०—बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरन्त॥
तब सुग्रीव बोलाये, अङ्गद नल हनुमन्त॥२२॥
सुनहु नील अङ्गद हनुमाना। जामवन्त मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूछेहु सब काहू॥
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु॥
भानु पीठि सेइय उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥
तजि माया सेइय परलोका। मिटहिँ सकल भव-सम्भव-सोका॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुनज्ञ सोई बड़ भागी। जो रघुबीर-चरन अनुरागी॥
आयसु माँगि चरन सिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥
पाछे पवन-तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह-पानी। कर-मुद्रिका दीन्हि जन जानी॥
बहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु॥
हनुमत जनम सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुर-त्राता॥
दो०—चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
राम-काज लयलीन मन, बिसरा तन कर छोह॥२३॥
कतहुँ होइ निसिचर सोँ भेँटा। प्रान लेहिँ एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिँ। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिँ॥
लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु-जल-पाना॥
चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीँ। बहुतक खग प्रबिसहिँ तेहि माहीँ॥
गिरि तेँ उतरि पवन सुत आवा। सब कहँ लेइ सोइ बिबर देखावा॥
आगे करि हनुमन्तहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलम्ब न कीन्हा॥
दो०—दीख जाइ उपवन बर, सर बिकसित बहु कञ्ज।
मन्दिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तप-पुञ्ज॥२४॥
दूरि तेँ ताहि सबन्हि सिर नावा। पूछे निज बृत्तांन्त सुनावा॥

तेहि तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुन्दर फल नाना॥
मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये। तासु निकट पुनि सब चलि आये॥
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥
मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिन्धु के तीरा॥
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल-पद नायेसि माथा॥
नाना भाँति बिनय तेहि कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥
दो०—बदरीवन कहँ सो गई, प्रभु अज्ञा धरि सीस।
उर धरि राम- चरन जुग, जे बन्दत-अज-ईस॥ २५॥
इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परसपर बाता। बिनु सुधि लये करब का भ्राता॥
कह अङ्गद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अङ्गद कह सब पाहीं। मरन भयेउ कछु संसय नाहीं॥
अङ्गद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥
छन एक सोच मगन होइ गयऊ। पुनि अस बचन कहत सब भयऊ॥
हम सीता कै सोध बिहीना। नहिं जैहहिं जुबराज प्रबीना॥
अस कहि लवन-सिन्धु-तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥
जामवन्त अङ्गद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेखी॥
तात राम कहँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति-बड़ भागी। संतति सगुन-ब्रह्म-अनुरागी॥
दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर-महि-गो द्विज लागि।
सगुन उपासक सङ्ग तहँ, रहहिं मोक्ष-सुख त्यागि॥ २६॥
एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि-कन्दरा सुनी सम्पाती॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहिं अहार दीन्ह जगदीसा॥
आजु सबन्हि कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा॥
डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥

कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवन्त मन सोच बिसेखी ॥
कह अङ्गद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥
राम-काज-कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम-बड़-भागी ॥
सुनि खग हरष सोक जुत बानी । आवा निकट कपिन्ह भय मानी ॥
तिन्हहिँ अभय करि पूछेसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ॥
सुनि सम्पाति बन्धु कै करनी । रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी ॥

दो०—मोहि लेइ जाहु सिन्धु तट, देउँ तिलाञ्जलि ताहि ।
बचन सहाय करबि मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥ २७ ॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा । कह निज कथा सुनहु कपि बीरा ॥
हम दोउ बन्धु प्रथम तरुनाई । गगन गये रबि निकट उड़ाई ॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा । मैं अभिमानी रबि नियरावा ॥
जरे पङ्ख अति तेज अपारा । परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ॥
मुनि एक नाम चन्द्रमा ओही । लागी दया देखि करि मोही ॥
बहु प्रकार तेहिँ ज्ञान सुनावा । देह-जनित-अभिमान छुड़ावा ॥
त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं । तासु नारि निसिचर-पति हरिहीं ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता । तिन्हहिँ मिले तैं होब पुनीता ॥
जमिहहिँ पङ्ख करसि जनि चिन्ता । तिन्हहिँ देखाइ दिहेसु तैं सीता ॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू । सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥
गिरि-त्रिकूट ऊपर बस लङ्का । तहँ रह रावन सहज असङ्का ॥
तहँ असोक-उपबन जहँ रहई । सीता बैठि सोच-रत अहई ॥

दो०—मैं देखउँ तुम्ह नाहीं, गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ॥ २८ ॥

जो नाँघइ सत जोजन सागर । करइ सो राम-काज मति-आगर ॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा । राम-कृपा कस भयउ सरीरा ॥
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं । अति-अपार भव-सागर तरहीं ॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई । राम हृदय धरि करहु उपाई ॥
अस कहि उमा गीध जब गयऊ । तिन्ह के मन अति बिस्मय भयऊ ॥
निज निज बल सब काहू भाखा । पार जाइ कर संसय राखा ॥
जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिँ तनु रहा प्रथम-बल लेसा ॥

जबहिँ त्रिविक्रम भयउ खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥

दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाइ॥ २९॥

अङ्गद कहइ जाउँ मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा॥
जामवन्त कह तुम्ह सब लायक। किमि पठइय सबही कर नायक॥
कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवन-तनय बल पवन समाना। बुधि-बिवेक-बिज्ञान- निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीँ। जो नहिँ तात होइ तुम्ह पाहीँ॥
राम-काज-लगि तव अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा॥
कनक-बरन-तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं—बारा। लीलहि नाँघउँ जलधि अपारा॥
सहित सहाय रावनहिँ मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवन्त मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावन दीजेहु मोही॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज-भुज-बल राजिवनयना। कौतुक लागि सङ्ग कपि-सेना॥

हरिगीतिका-छन्द।

कपि सेन सङ्ग सँघारि निसिचर, राम सीतहि आनि हैं॥
त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि, नारदादि बखानि हैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत, परमपद नर पावई।
रघुबीर-पद-पाथोज मधुकर, दासतुलसी गावई॥ ३॥

दो०—भव-भेषज रघुनाथ-जस, सुनहिँ जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिँ त्रिसिरारि॥

सो०—नीलोत्पल-तन-स्याम, काम-कोटि-सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन-ग्राम, जासु नाम अघ-खग-बधिक॥ ३०॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने
विशुद्ध सन्तोष सम्पादनो नाम चतुर्थः सोपानः
समाप्तः।

शुभमस्तु-मङ्गलमस्तु

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# रामचरितमानस

## पञ्चम-सोपान

## सुन्दरकाण्ड

शार्दूलविक्रीडित-वृत्त।

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाणशान्तिप्रदं।
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्॥
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं।
वन्देहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम्॥१॥

वसन्ततिलका-वृत्त।

नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेस्मदीये।
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा॥
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गवनिर्भरां मे।
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥२॥

मालिनी-वृत्त।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्॥
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥३॥

जामवन्त के वचन सुहाये। सुनि हनुमन्त हृदय अति भाये॥
तब लगि मोहि परिखिहु तुम्ह भाई। सहि दुख कन्द मूल फल खाई॥
जब लगि आवउँ सीतहि देखी। होइ काज मोहि हरष बिसेखी॥
अस कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥
सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन-तनय बल भारी॥
जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता। चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। ताही भाँति चला हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होइ स्त्रम हारी॥

दो०—हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम-काज कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम ॥१॥

जात पवन-सुत देवन्ह देखा । जानइ कहुँ बल बुद्धि बिसेखा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता । पठइन्हि आइ कही तेहि बाता ॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवन-कुमारा ॥
राम-काज करि फिरि मैं आवउँ । सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावउँ ॥
तब तव बदन पइठिहौं आई । सत्य कहउँ मोहि जान दे माई ॥
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना । ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥
जोजन भर तेहि बदन पसारा । कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ । तुरत पवन-सुत बतिस भयऊ ॥
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवन-सुत लीन्हा ॥
बदन पइठि पुनि बाहर आवा । माँगी बिदा ताहि सिर नावा ॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि-बल-मरम तोर मैं पावा ॥

दो०—रामकाज सब करिहहु, तुम्ह बल-बुद्धि-निधान ।
आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान ॥२॥

निसिचरि एक सिन्धु महँ रहई । करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव-जन्तु जे गगन उड़ाहीं । जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई । एहि बिधि सदा गगन-चर खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा । तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा ॥
ताहि मारि मारुत-सुत बीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा । गुञ्जत चञ्चरीक मधु लोभा ॥
नाना तरु फल फूल सुहाये । खग मृग बृन्द देखि मन भाये ॥
सैल बिसाल देखि एक आगे । तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे ॥
उमा न कछु कपि के अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढ़ि लङ्का तेहि देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी ॥
अति उतङ्ग जलनिधि चहुँ पासा । कनक-कोट कर परम प्रकासा ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

कनक-कोट बिचित्र मनि-कृत, सुन्दरायतना घना ॥
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी, चारु पुर बहु बिधि बना ॥

गज बाजि खच्चर निकर पदचर, रथ बरूथन्हि को गनै ।
बहु रूप निसिचर जूथ अति बल, सेन बरनत नहिँ बनै ॥
बन बाग उपबन बाटिका सर, कूप बापी सोहहीँ ।
नर-नाग-सुर-गन्धर्व कन्या, रूप मुनि मन मोहहीँ ॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीँ ।
नाना अखारेन्ह भिरहिँ बहु बिधि, एक एकन्ह तर्जहीँ ॥२॥
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँदिसि रच्छहीँ ।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज, खल निसाचर भच्छहीँ ॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की, कथा कछुयक है कही ।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि, त्यागि गति पइहैं सही ॥३॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार ।
अति लघु रूप धरउँ निसि, नगर करउँ पइसार ॥३॥

मसक समान रूप कपि धरी । लङ्कहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लङ्किनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निन्दरी ॥
जानेसि नहीं मरम सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा-कपि हनी । रुधिर बमत धरनी ढनमनी ॥
पुनि सम्भारि उठी सो लङ्का । जोरि पानि कर बिनय ससङ्का ॥
जब रावनहिँ ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरञ्चि कहा मोहि चीन्हा ॥
बिकल होसि तैं कपि के मारे । तब जानेसु निसिचर सङ्घारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

दो०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अङ्ग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसङ्ग ॥ ४ ॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदय राखि कोसलपुर-राजा ॥
गरल सुधा रिपु करइ मिताई । गो-पद सिन्धु अनल सितलाई ॥
गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही । राम कृपा करि चितवा जाही ॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥
मन्दिर मन्दिर प्रति करि सोधा । देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मन्दिर माहीँ । अतिबिचित्र कहि जात सो नाहीँ ॥
सयन किये देखा कपि तेही । मन्दिर महँ न दीख बैदेही ॥

भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा ॥
दो०—रामायुध अङ्कित गृह, सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका-वृन्द तहँ, देखि हरष कपिराइ ॥५॥
लङ्का निसिचर निकर निवासा । इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महँ तरक करइ कपि लागा । तेही समय बिभीषन जागा ॥
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा । हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी । साधु तेँ होइ न कारज हानी ॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाये । सुनत बिभीषन उठि तहँ आये ॥
करि प्रनाम पूछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥
की तुम्ह हरिदासन्ह महँ कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह राम दीन-अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़-भागी ॥
दो०—तब हनुमन्त कही सब, राम-कथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥६॥
सुनहु पवन-सुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिँ कृपा भानुकुल-नाथा ॥
तामस तनु कछु साधन नाहीँ । प्रीति न पद-सरोज मन माहीँ ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता । बिनु हरि कृपा मिलहिँ नहिँ सन्ता ॥
जौँ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा । तौ तुम्ह मोहि दरस हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती । करहिँ सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चञ्चल सबहीँ बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा ॥
दो०—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर ।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥७॥
जानतहूँ अस स्वामि बिसारी । फिरहिँ ते काहे न होहिँ दुखारी ॥
एहि बिधि कहत राम-गुन-ग्रामा । पावा अनिर्बाच्य बिस्रामा ॥
पुनि सब कथा बिभीषन कही । जेहि बिधि जनक-सुता तहँ रही ॥
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता । देखा चहउँ जानकी माता ॥
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवन-सुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ॥

देखि मनहि महँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी । जपति हृदय रघुपति गुन स्रेनी ॥
दो०—निज पद नयन दिये मन, राम-चरन महँ लीन ।
परम दुखी भा पवन-सुत, देखि जानकी दीन ॥८॥
तरु पल्लव महँ रहा लुकाई । करइ बिचार करउँ का भाई ॥
तेहि अवसर रावन तहँ आवा । सङ्ग नारि बहु किये बनावा ॥
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा । साम दाम भय भेद देखावा ॥
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी । मन्दोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरी करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम-सनेही ॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥
अस मन समुझु कहति जानकी । खल सुधि नहिँ रघुबीर बान की ॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिँ तोही ॥
दो०—आपुहिं सुनि खद्योत सम, रामहिँ भानु समान ।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ॥९॥
सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहिँ त सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होत न त जीवन हानी ॥
स्याम-सरोज-दाम सम सुन्दर । प्रभु भुज करि कर सम दसकन्धर ॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा । सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा ॥
चन्द्रहास हरु मम परितापं । रघुपति-बिरह-अनल सञ्जातं ॥
सीतल निसि तव असि बर धारा । कह सीता हरु मम दुख भारा ॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा । मय-तनया कहि नीति बुझावा ॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई । सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई ॥
मास-दिवस महँ कहा न माना । तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना ॥
दो०—भवन गयउ दसकन्धर, इहाँ पिसाचिनि बृन्द ।
सीतहि त्रास देखावहिँ, धरहिँ रूप बहु मन्द ॥१०॥
त्रिजटा नाम राच्छसी एका । राम-चरन रति निपुन बिबेका ॥
सबन्हौ बोलि सुनायेसि सपना । सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥
सपने बानर लङ्का जारी । जातुधान सेना सब मारी ॥

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। रामचरन रति निपुन बिवेका॥
सबन्हौं बोलि सुनायेसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लङ्का मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनक-सुता के चरनन्हि परीं॥
दो०—जहँ तहँ गईं सकल मिलि, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥११॥
त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति सङ्गिनि तैं मोरी॥
तजउँ देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिँ सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयाना। सुनइ को स्रवन सूल सम बानी॥
सुनत बचन पद गहि समुझायेसि। प्रभु प्रताप-बल-सुजस सुनायेसि॥
निसि न अनल मिलु सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखियत प्रगट गगन अङ्गारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि तन करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥
सो०—कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अङ्गार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥१२॥
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम-अङ्कित अति सुन्दर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी॥
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिँ जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचन्द्र गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनइ स्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥
स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कही सो प्रगट होत किन भाई॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ॥

राम-दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥
नर बानरहि सङ्ग कहु कैसे। कही कथा भइ सङ्गति जैसे॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिन्धु कर दास॥१३॥

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयेउ तात मो कहँ जलजाना॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख-भवनखरारी॥
कोमल चित कृपाल रघुराई। कपि केहिं हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याममृदुगाता॥
बचन न आव नयन भरि बारी। अहह,नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा-निकेता॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्हतें प्रेम राम के दूना॥

दो०—रघुपति कर सन्देस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥१४॥

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहँ सकल भये बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसिससि-भानू॥
कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहउँ यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहिं माहीं॥
प्रभु सन्देस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥
कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक-सुख-दाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

दो०—निसिचर निकर पतङ्ग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥१५॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहिं बिलम्ब रघुराई ॥
राम बान रबि उये जानकी । तम बरूथ कहँ जातुधान की ॥
अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई । प्रभु आयसु नहिं राम-दोहाई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ॥
निसिचर मारि तोहि लेइ जइहहिं । तिहुँ पुर नारदादि जस गइहहिं ॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना । जातुधान भट अति बलवाना ॥
मोरे हृदय परम सन्देहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥
कनक-भूधराकार सरीरा । समर-भयङ्कर अति-बल-बीरा ॥
सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवन-सुत लयऊ ॥

दो०—सुनु माता साखा-मृग, नहिं बल-बुद्धि बिसाल ।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हिं, खाइ परम लघु ब्याल ॥१६॥

मन सन्तोष सुनत कपि बानी । भगति-प्रताप तेज-बल-सानी ॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना । होहु तात बल-सील-निधाना ॥
अजर अमर गुन-निधि सुत होहू । करहिं बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहिँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥
बार बार नायेसि पद सीसा । बोला बचन जोरि कर कीसा ॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता । आसिष तव अमोघ बिख्याता ॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुन्दर फल रूखा ॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी ॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥

दो०—देखि बुद्धि-बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति-चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१७॥

चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा । फल खायेसि तरु तोरइ लागा ॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥
नाथ एक आवा कपि भारी । तेहि असोक बाटिका उजारी ॥
खायेसि फल अरु बिटप उजारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ॥
सुनि रावन पठये भट नाना । तिन्हहिं देखि गर्जेउ हनुमाना ॥
सब रजनीचर कपि सङ्घारे । गये पुकारत कछु अधमारे ॥
पुनि पठयेउ तेहि अछयकुमारा । चला सङ्ग लेइ सुभट अपारा ॥

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलयेसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल-भूरि॥१८॥

सुनि सुत बध लङ्केस रिसाना। पठयेसि मेघनाद बलवाना॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिय कपिहि कहाँकर आही॥
चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लङ्केसकुमारा॥
रहे महाभट ताके सङ्गा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अङ्गा॥
तिन्हहिँ निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभञ्जन-जाया॥

दो०—ब्रह्म-अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौँ न ब्रह्मसर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥१९॥

ब्रह्मबान कपि कहँ तेहि मारा। परतिहु बार कटक सङ्घारा॥
तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लेइ गयऊ॥
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव-बन्धन काटहिँ नर ज्ञानी॥
तासु दूत कि बन्ध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिँ बँधावा॥
कपि-बन्धन सुनि निसिचर धाये। कौतुक लागि सभा सब आये॥
दसमुख-सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन सङ्का। जिमि अहि-गनमहँ गरुड़ असङ्का॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत-बध-सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय बिषाद॥२०॥

कह लङ्केस कवन तैँ कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा॥
कीधौँ स्रवन सुनेहि नहिँ मोही। देखउँ अति असङ्क सठ तोही॥
मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचित माया॥
जाके बल बिरञ्चि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥

जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ॥
धरइ जो बिबिध देह सुर-त्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावन दाता ॥
हर-कोदंड कठिन जेहि भञ्जा । तेहि समेत नृप-दल मद गञ्जा ॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली । बधे सकल अतुलित बल-साली ॥

दो०—जा के बल लवलेस तें, जितेहु चराचर झारि ।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥२१॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु सन परी लराई ॥
समर बालि सन करि जस पावा । सुनि कपिबचन बिहँसि बहरावा ॥
खायेउँ फल प्रभु लागी भूखा । कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा ॥
सब के देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग-गामी ॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे । तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा । कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ॥
बिनती करउँ जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी । भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी ॥
जा के डर अति काल डेराई । जो सुर असुर चराचर खाई ॥
ता सों बैर कबहुँ नहिं कीजै । मोरे कहे जानकी दीजै ॥

दो०—प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिन्धु खरारि ।
गये सरन प्रभु राखिहहिं, तव अपराध बिसारि ॥२२॥

राम-चरन-पङ्कज उर धरहू । लङ्का अचल राज तुम्ह करहू ॥
रिषि पुलस्ति जस बिमल मयङ्का । तेहि ससि महँ जनि होहु कलङ्का ॥
राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषन भूषित बर नारी ॥
राम बिमुख सम्पति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ॥
सजल-मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं । बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी । बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
सङ्कर सहस बिष्नु अज तोही । सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

दो०—मोह मूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिन्धु भगवान ॥२३॥

जदपि कही कपि अतिहित बानी । भगति-बिबेक-बिरति-नय-सानी ॥

बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिँ कपि गुरु बड़ ज्ञानी॥
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति-भ्रम तोहि प्रगट मैं जाना॥
सुनि कपि बचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना।
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित बिभीषन आये॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता॥
आन दंड कछु करिय गोसाँई। सबही कहा मन्त्र भल भाई॥
सुनत बिहँसि बोला दसकन्धर। अङ्ग भङ्ग करि पठवहु बन्दर॥

दो०—कपि कै ममता पूँछि पर, सबहि कहेउ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ॥२४॥

पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाइ सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचइ मूढ़ सोइ रचना॥
रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आये पुर-बासी। मारहिँ चरन करहिँ बहु हाँसी॥
बाजहिँ ढोल देहिँ सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछि प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघु रूप तुरन्ता॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निसाचर-नारी॥

दो०—हरि-प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास॥२५॥

देह बिसाल परम हरुआई। मन्दिर तेँ मन्दिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥
तात मात हा सुनिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिँ उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिँ होई। बानर रूप धरे सुर कोई॥
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगर निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
ता कर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरजा॥
उलटि पलटि लङ्का सब जारी। कूदि परा पुनि सिन्धु मझारी॥

दो०—पूँछि बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनक-सुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥२६॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥
कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीनदयाल बिरद सम्भारी। हरहु नाथ मम सङ्कट भारी॥
तात सक्र-सुत कथा सुनायहु। बानप्रताप प्रभुहि समुझायेहु॥
मास दिवस महँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावा॥
कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुम्हहूँ तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतल भई छाती। पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती॥

दो०—जनक-सुतहि समुझाइ करि, बहु बिधि धीरज दीन्ह।
चरन-कमल सिर नाइ कपि, गवन राम पहँ कीन्ह ॥२७॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचरनारी॥
नाँघि सिन्धु एहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा॥
हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा॥
मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जनु बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा॥
तब मधुबन भीतर सब आये। अङ्गद सम्मत मधु-फल खाये॥
रखवारे जब बरजइ लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

दो०—जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आये प्रभु काज ॥२८॥

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गये कपि सहित समाजा॥
आइ सबहिं नावा पद सीसा। मिले सबन्हि अति प्रीति कपीसा॥
पूछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काज बिसेखी॥
नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहँ चलेऊ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा। किये काज मन हरष बिसेखा॥

फटिकसिला बैठे दोउ भाई। परे सकल कपि चरननि्ह जाई॥
दो०—प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुञ्ज।
पूछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद-कञ्ज ॥२९॥
जामवन्त कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरन्तर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥
सोइ बिजई बिनई गुन-सागर। तासु सुजस त्रय लोक उजागर॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जनम हमार सुफल भा आजू॥
नाथ पवन-सुत कीन्हि जो करनी। सहसहु मुख न जाय सो बरनी॥
पवन-तनय के चरित सुहाये। जामवन्त रघुपतिहि सुनाये॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाये। पुनि हनुमान हरषि हिय लाये॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्व प्रान की॥
दो०—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित, जाहिँ प्रान केहि बाट ॥३०॥
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनक-कुमारी॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीनबन्धु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं जाना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिँ हठि बाधा॥
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माँह सरीरा॥
नयन स्रवहिँ जल निज हित लागी। जरइ न पाव देह बिरहागी॥
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिँ कहे भलि दीनदयाला॥
दो०—निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिँ कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुज बल खल दल जीति ॥३१॥
सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आये जल राजिव-नयना॥
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिय बिपति कि ताही॥
कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥

प्रतिउपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥
दो०—सुनि प्रभु वचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त॥ ३२॥
बार बार प्रभु चहहिँ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पङ्कज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
सावधान मन करि पुनि सङ्कर। लागे कहन कथा अति सुन्दर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥
कहु कपि रावन पालित लङ्का। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बङ्का॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला वचन बिगत अभिमाना॥
साखामृग के बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई॥
नाँघि सिन्धु हाटक-पुर जारा। निसिचर-गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥
दो०—ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिँ, जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहिँ, जारि सकइ खलु तूल॥३३॥
नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥
उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥
यह सम्बाद जासु उर आवा। रघुपति-चरन-भगति सोइ पावा॥
सुनि प्रभु वचन कहहिँ कपि वृन्दा। जय जय जय कृपाल सुखकन्दा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलइ कर करहु बनावा॥
अब बिलम्ब केहि कारन कीजै। तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजै॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥
दो०—कपिपति बेगि बोलाये, आये जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ॥३४॥
प्रभु पद पङ्कज नावहिँ सीसा। गर्जहिँ भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिव-नैना॥
राम-कृपा बल पाइ कपिन्दा। भये पच्छजुत मनहुँ गिरिन्दा॥

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भये सुन्दर सुभ नाना॥
जासु सकल मङ्गल-मय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकि बाम अङ्ग जनु कहि देहीं॥
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहिँ सोई॥
चला कटक को बरनइ पारा। गर्जहिँ बानर भालु अपारा॥
नख आयुध गिरि पादप धारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु-कपि करहीँ। डगमगाहिँ दिग्गज चिक्करहीँ॥

हरिगीतिका-छन्द।

चिक्करहिँ दिग्गज डोल महि गिरि, लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि, नाग किन्नर दुख टरे॥
कटकटहिँ मर्कट बिकट भट बहु, कोटि कोटिन्ह धावहीँ।
जय राम प्रबल प्रताप कोसल,-नाथ गुन गन गावहीँ॥१॥
सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ-पृष्ठ, कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति, जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ-खर्पर सर्पराज सो, लिखत अबिचल पावनी॥२॥

दो०—एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर॥३५॥

इहाँ निसाचर रहहिँ ससङ्का। जब तेँ जारि गयउ कपि लङ्का॥
निज निज गृह सब करहिँ बिचारा। नहिँ निसिचर कुल केर उबारा॥
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी॥
रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीति-रस पागी॥
कन्त करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू॥
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिँ गर्भ रजनीचर-घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कन्त जौँ चहहु भलाई॥
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत-निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार सम्भु अज कीन्हे॥

दो०—राम बान अहिगन सरिस, निकर निसाचर भेक।

जबलगि ग्रसत न तबलगि, जतन करहु तजि टेक ॥३६॥
स्रवन सुनी सठ ता करि बानी । बिहँसा जगत बिदित अभिमानी ॥
सभय सुभाव नारि कर साँचा । मङ्गल महुँ भय मन अति काँचा ॥
जौं आवइ मरकट कटकाई । जियहिं बिचारे निसिचर खाई ॥
कम्पहिं लोकप जाकी त्रासा । तासु नारि सभीत बड़ि हाँसा ॥
अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई । चलेउ सभा ममता अधिकाई ॥
मन्दोदरी हृदय कर चिन्ता । भयउ कन्त पर बिधि बिपरीता ॥
बैठेउ सभा खबरि असि पाई । सिन्धु पार सेना सब आई ॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ॥
जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं । नर बानर केहि लेखे माहीं ॥
दो०—सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास ॥३७॥
सोइ रावन कहँ बनी सहाई । अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि बिभीषन आवा । भ्राता चरन सीस तिन्ह नावा ॥
पुनि सिर नाइ बैठ निज आसन । बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौं कृपाल पूछेहु मोहि बाता । मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥
जो आपन चाहइ कल्याना । सुजससुमतिसुभगतिसुखनाना ॥
सो पर-नारि लिलार गोसाँईं । तजइ चौथि के चन्द कि नाँईं ॥
चौदह भुवन एक पति होई । भूत-द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई ॥
गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप-लोभ भल कहइ न कोऊ ॥
दो०—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पन्थ ।
सब परिहरि रघुबीरही, भजहु भजहिं जेहि सन्त ॥३८॥
तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता । व्यापक अजित अनादि अनन्ता ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिन्धु मानुष तनु धारी ॥
जन रञ्जन भञ्जन खल ब्राता । बेद-धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥
ताहि बयर तजि नाइय माथा । प्रनतारति भञ्जन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहँ बैदेही । भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥
सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा । बिस्व-द्रोह-कृत अघ जेहि लागा ॥

जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन॥

दो०—बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान-मोह-मद, भजहु कोसलाधीस॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसर तात॥ ३९॥

माल्यवन्त अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषन पुनि कर जोरी॥
सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर-कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

दो०—तात चरन गहि माँगउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहँ, अहित न होइ तुम्हार॥४०॥

बुध-पुरान-स्रुति-सम्मत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥
जियसि सदा सठ मोर जियावा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥
उमा सन्त कइ इहइ बड़ाई। मन्द करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥
सचिव संग लेइ नभ-पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

दो०—राम सत्यसङ्कल्प प्रभु, सभा काल-बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि॥४१॥

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयू हीन भये सब तबहीं॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहउँ जाइ चरन-जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुख-दाता॥
जे पद परसि तरी रिषि-नारी। दंडक-कानन पावन-कारी॥
जे पद जनक-सुता उर लाये। कपट कुरंग संग धर धाये॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥
दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥४२॥
एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिन्धु एहि पारा॥
कपिन्ह बिभीषन आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेखा॥
ताहि राखि कपीस पहँ आये। समाचार सब ताहि सुनाये॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। काम-रूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भय-हारी॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत-बच्छल भगवाना॥
दो०—सरनागत कहँ जे तजहिँ, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिँ बिलोकत हानि॥४३॥
कोटि बिप्रबध लागइ जाहू। आये सरन तजउँ नहिँ ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिँ तबहीं॥
पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट-हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल-छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥
जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइँ निमिष महँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाँई॥
दो०—उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपा-निकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अङ्गद हनू समेत॥४४॥
सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥

दूरिहि तें देखेउ दोउ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता ॥
बहुरि राम छबि-धाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलम्ब कञ्जारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥
सिंह कन्ध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥

दो०—स्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भञ्जन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ॥४५॥

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भय-हारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल-मन्डली बसहु दिन राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती ॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट सङ्ग जनि देइ बिधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ॥

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, सोक-धाम तजि काम ॥४६॥

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा ॥
ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥
अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम-पद-कमल तुम्हारे ॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला ॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहिँ काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा ॥

दो०—अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुञ्ज।
देखेउँ नयन बिरञ्चि सिव, सेव्य जुगल पद कञ्ज ॥४७॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि सम्भु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिँ बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीँ। हरष सोक भय नहिँ मन माहीँ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥
तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिँ आन निहोरे॥

दो०—सगुन उपासक पर-हित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज-पद प्रेम॥ ४८॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ता तें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे॥
राम बचन सुनि बानर-जूथा। सकल कहहिँ जय कृपा-बरूथा॥
सुनत बिभीषन प्रभु कै बानी। नहिँ अघात स्रवनामृत जानी॥
पद अम्बुज गहि बारहि बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा॥
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अन्तरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु-पद-प्रीति-सरित सो बही॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिन्धु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीँ। मोर दरस अमोघ जग माहीँ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ, दीन्हेउ राज अखंड॥
जो सम्पति सिव रावनहिँ, दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा बिभीषनहिँ, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ ४९॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिँ जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥
पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्ब रूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥
सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिय जलधि गम्भीरा॥

सङ्कुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥
कह लङ्केस सुनहु रघुनायक। कोटि सिन्धु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिय सागर सन जाई॥

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु-कपि धारि॥ ५०॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिय दइव जौं होइ सहाई॥
मन्त्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिय सिन्धु करिय मन रोसा॥
कादर मन कहँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसहि करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिन्धु समीप गये रघुराई॥
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिर नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिँ बिभीषन प्रभु पहिँ आये। पाछे रावन दूत पठाये॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट करि देह।
प्रभु गुन हृदय सराहहिँ, सरनागत पर नेह॥ ५१॥

प्रगट बखानहिँ राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिँ आने॥
कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अङ्ग भङ्ग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाये। बाँधि कटक चहुँ पास फिराये॥
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥
सुनि लछिमन सब निकट बोलाये। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाये॥
रावन कर दीजेहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती॥

दो०—कहेहु मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देस उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा काल तुम्हार॥ ५२॥

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन-गाथा॥
कहत राम जस लङ्का आये। रावन-चरन सीस तिन्ह नाये॥
बिहँसि दसानन पूछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु-कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥
जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिन्धु बेचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदय त्रास अति मोरी॥
दो०—की भइ भेंट कि फिरि गये, श्रवन सुजस सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकित चित तोर॥५३॥
नाथ कृपा करि पूँछेउ जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसे॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥
रावन दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटन लागे। राम सपथ दीन्हे हम त्यागे॥
पूँछेहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भय-कारी॥
जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बल थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥
दो०—द्विबिद मयन्द नील नल, अङ्गदादि बिकटासि।
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जामवन्त बलरासि॥५४॥
ये कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
रामकृपा अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥
अस मैं श्रवन सुना दसकन्धर। पदुम अठारह जूथप बन्दर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहिं जीतइ रन माहीं॥
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोखहिं सिन्धु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असङ्का। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लङ्का॥
दो०—सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहँ, जीति सकहिं संग्राम॥५५॥
राम तेज-बल-बुधि बिपुलाई। सेष सहस-सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय-नागर॥
तासु बचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पन्थ कृपा मन माहीं॥

सुनत बचन बिहँसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥
सचिव सभीत बिभीषन जा के। बिजय बिभूति कहा जग ता के॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥
रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बँचावन॥

दो०—बातन्ह मनहिँ रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस॥
की तजि मान अनुज इव, प्रभु-पद-पङ्कज भृङ्ग।
होइ कि राम सरानल, खल कुल सहित पतङ्ग॥५६॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग-बिलासा॥
कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीँ। उर अपराध न एकउ धरिहीँ॥
जनक-सुता रघुनाथहि दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजै॥
जब तेहि कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥
नाइ चरन सिर चला सो तहाँ। कृपासिन्धु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनाम निज कथा सुनाई। राम कृपा आपनि गति पाई॥
रिषि अगस्ति के साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ज्ञानी॥
बन्दि राम-पद बारहि बारा। मुनि निज आस्रम कहँ पग धारा॥

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥५७॥

लछिमन बान सरासन आनू। सोखउँ बारिधि बिसिख-कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीती॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लछिमन के मन भावा ॥
सन्धानेउ प्रभु बिसिख कराला । उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला ॥
मकर उरग झष-गन अकुलाने । जरत जन्तु जलनिधि जब जाने ॥
कनकथार भरि मनि गन नाना । बिप्र रूप आयेउ तजि माना ॥

दो०—काटेहि पै कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पै नव नीच ॥५८॥

सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तव प्रेरित माया उपजाये । सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन्हि गाये ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जसि अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही । मरजादा पुनि तुम्हरिय कीन्ही ॥
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई । करउ सो बेगि जो तुम्हहिं सुहाई ॥

दो०—सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरइ कपि कटक, तात सो कहहु उपाइ ॥५९॥

नाथ नील नल कपि दोउ भाई । लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिन्ह के परस किये गिरि भारे । तरिहहिँ जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । करिहउँ बल अनुमान सहाई ॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय । जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइय ॥
एहि सर मम उत्तर तट बासी । हतहु नाथ खल नर अघ रासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहि हरी राम रनधीरा ॥
देखि राम बल पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरन बन्दि पाथोधि सिधावा ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

निज भवन गवनेउ सिन्धु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ ।
यह चरित कलिमल हर जथामति, दासतुलसी गायऊ ॥
सुख भवन संसय समन दमन बिषाद रघुपति गुन गना ।
तजि सकल आस भरोस गावहिँ, सुनहि सन्तत सठ मना ॥

दो०—सकल सुमङ्गल दायक, रघुनायक गुन गान ।
सादर सुनहिँ ते तरहिँ भव,-सिन्धु, बिना जल जान ॥६०॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने
ज्ञान सम्पादनो नाम पञ्चमः सोपानः समाप्तः ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# रामचरितमानस

## षष्ठ-सोपान

## लङ्काकाण्ड

स्रग्धरा-वृत्त ।

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहम् ।
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवम् ।
वन्देकन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ॥१॥

शार्दूल विक्रीड़ित-वृत्त ।

शङ्खेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरम् ।
कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्क प्रियम् ॥
काशीशं कलिकल्मषौघ शमनं कल्याण कल्याण कल्पद्रुमम् ।
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम् ॥२॥

अनुष्टुप-वृत्त ।

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपिदुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योसौ शङ्करः शं तनोतु माम् ॥३॥

दो०—लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड ॥

सो०—सिन्धु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरइ कटकु ॥
सुनहु भानु कुल-केतु, जामवन्त कर जोरि कह ।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं ॥

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥
तव रिपु-नारि रुदन जल-धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा॥
सुनि अति-उकुति पवन-सुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥
जामवन्त बोले दोउ भाई। नल-नीलहि सब कथा सुनाई॥
राम-प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥
बोलि लिये कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥
राम-चरन-पङ्कज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥
धावहु मरकट-बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप-समूहा॥

दो०—अति उतङ्ग गिरि पादप, लीलहि लेहिँ उठाइ।
आनि देहिँ नल नीलहि, रचहिँ ते सेतु बनाइ॥१॥

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कन्दुक इव नल नील ते लेहीं॥
देखि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना॥
परम-रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिँ बरनी॥
करिहौं इहाँ सम्भु थापना। मोरे हृदय परम-कलपना॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाये। मुनिवर सकल बोलि लेइ आये॥
लिङ्ग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
सिव-द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा॥
सङ्कर-बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

दो०—सङ्कर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिँ कलप भरि, घोर नरक महँ बास॥२॥

जो रामेस्वर दरसन करिहहिँ। ते तनु तजि मम-लोक सिधरिहहिँ॥
जो गङ्गा-जल आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि सङ्कर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसन करिही। सो बिनु स्रम भव-सागर तरिही॥
राम बचन सब के जिय भाये। मुनिवर निज निज आस्रम आये॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। सन्तत करहिँ प्रनत पर प्रीती॥
बाँधेउ सेतु नील-नल-नागर। राम-कृपा जस भयउ उजागर॥

बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। भये उपल बोहित सम तेई॥
महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी॥
दो०—श्रीरघुबीर प्रताप तें, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥३॥
बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गरजहिं मरकट भट समुदाई॥
सेत बन्ध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिन्धु बहुताई॥
देखन कहँ प्रभु करुनाकन्दा। प्रगट भये सब जलचर-वृन्दा॥
मकर नक्र झष नाना ब्याला। सत-जोजन-तन परम बिसाला॥
ऐसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं। एकन्ह के डर तेपि डेराहीं॥
प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भये सुखारे॥
तिन्ह की ओट न देखिय बारी। मगन भये हरि रूप निहारी॥
चला कटक कछु बरनि न जाई। को कहि सक कपि-दल-बिपुलाई॥
दो०—सेतु बन्ध भइ भीर अति, कपि नभ-पन्थ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥४॥
अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि-जूथप भीरा॥
सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा॥
खहु जाइ फल मूल सुहाये। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये॥
सब तरु फरे राम-हित-लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर-फल बिटप हलावहिं। लङ्का सनमुख सिखर चलावहिं॥
जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजस देहिं तब जाना॥
जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहिं कही सब बाता॥
सुनत स्रवन बारिधि-बन्धाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥
दो०—बाँधेउ बननिधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु बारीस।
सत्य तोयनिधि कम्पति, उदधि पयोधि नदीस॥५॥
ब्याकुलता निज समुझि बहोरी। बिहँसि चला गृह करि भय भोरी॥
मन्दोदरी सुनेउ प्रभु आयो। कौतुक ही पाथोधि बँधायो॥

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम-मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिर अञ्चल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥
नाथ बैर कीजे ताही सों। बुधिबलसकियजीति जाही सों॥
तुम्हहिं रघुपतिहि अन्तर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥
अतिबल मधु-कैटभ जिन्ह मारे। महाबीर दिति-सुत संहारे॥
जेहि बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महिभारा॥
तासु विरोध न कीजिय नाथा। काल करम जिव जाके हाथा॥
दो०—रामहिं सौंपिय जानकी, नाए कमल-पद माथ।
सुत कहँ राज समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ॥६॥
नाथ दीन दयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गये न खाई॥
चाहिय करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥
सन्त कहहिं असि नीति दसानन। चौथे पन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजन कीजिय तहँ भरता। जो करता पालन संहरता॥
सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिबर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राज तजि होहिं बिरागी॥
सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। होइ सुजस तिहुँ पुर अति पावन॥
दो०—अस कहि नयन नीर भरि, गहि पद कम्पित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहिं, अचल होइ अहिवात॥७॥
तब रावन मय-सुता उठाई। कहइ लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तैं प्रिया वृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥
बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबलजितेउँ सकलदिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे॥
नाना विधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई॥
मन्दोदरी हृदय अस जाना। काल-बिबस उपजा अभिमाना॥
सभा आइ मन्त्रिन्ह तेहि बूझा। करब कवनि विधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिवसुनुनिसिचर-नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥
कहहु कवन भय करिय बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥
बचन सबहि के स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।

नीति-बिरोध न करिय प्रभु, मन्त्रिन्ह मति अति थोरि ॥८॥
कहहिँ सचिव सठ ठकुरसोहाती । नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा । तासु चरित मन महँ सब गावा ॥
छुधा न रही तुम्हहिँ तब काहू । जारत नगर कस न धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगे दुख पावा । सचिवन्ह अस मत प्रभुहि सुनावा ॥
जेहि बारीस बँधायउ हेला । उतरेउ सेन-समेत सुबेला ॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई । बचन कहहिँ सब गाल फुलाई ॥
तात बचन मम सुनु अति-आदर । जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ॥
प्रिय बानी जे सुनहिँ जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम-हित सुनत कठोरे । सुनहिँ जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठव सुनु नीती । सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥
दो०—नारि पाइ फिरि जाहिँ जौं, तौ न बाढ़इय रारि ।
नाहिं त सनमुख समर-महि, तात करिय हठि मारि ॥९॥
यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा । उभय प्रकार सुजस जग तोरा ॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई । असि मति सठ केहि तोहि सिखाई ॥
अबहीं तेँ उर संसय होई । बेनु-मूल सुत भयेहु घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा । चला भवन कहि बचन कठोरा ॥
हित मत तोहि न लागत कैसे । काल-बिबस कहँ भेषज जैसे ॥
सन्ध्या समय जानि दससीसा । भवन चलेउ निरखत भुज-बीसा ॥
लङ्का सिखर उपर आगारा । अति-बिचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठ जाइ तेहि मन्दिर रावन । लागे किन्नर गुन-गन-गावन ॥
बाजहिँ ताल पखाउज बीना । नृत्य करहिँ अपछरा प्रबीना ॥
दो०—सुनासीर सत सरिस सो, सन्तत करइ बिलास ।
परम-प्रबल रिपु सीस पर, तदपि न कछु मन त्रास ॥१०॥
इहाँ सुबेल-सैल रघुबीरा । उतरे सेन-सहित अति-भीरा ॥
सैल-सृंग एक सुन्दर देखी । अति उतङ्ग सम सुभ्र बिसेखी ॥
तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये । लछिमन रचि निज हाथ डसाये ॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला । तेहि आसन आसीन कृपाला ॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछङ्गा । बाम दहिन दिसि चाप निषङ्गा ॥

दुहुँ कर-कमल सुधारत बाना। कह लङ्केस मंत्र लगि काना॥
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन-कमल चाँपत बिधि नाना॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि-निषङ्ग कर-बान-सरासन॥
दो०—एहि बिधि करुना-सील-गुन,-धाम राम आसीन।
ते नर धन्य जे ध्यान एहि, रहत सदा लवलीन॥
पूरब-दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयङ्क।
कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असङ्क॥११॥
पूरब दिसि गिरि-गुहा निवासी। परम-प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त-नाग-तम-कुम्भ बिदारी। ससि केसरी गगन-बन-चारी॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि-सुन्दरी केर सिङ्गारा॥
कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महँ प्रगट भूमि कै झाँई॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥
कोउ कह जबबिधिरति-मुखकीन्हा। सार भाग ससिकरहरिलीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं॥
प्रभु कह गरल बन्धु ससि केरा। अति-प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवन्त नर नारी॥
दो०—कह मारुत-सुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तब मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता भास॥
पवन-तनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान॥१२॥
देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। बृष्टि होइ जनि उपल कठोरा॥
कहइ बिभीषन सुनहु कृपाला। तड़ित न होइ न बारिद-माला॥
लङ्का सिखर उपर आगारा। तहँ दसकन्धर देख अखारा॥
छत्र मेघडम्बर सिर—धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥
मन्दोदरी स्रवन ताटङ्का। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमङ्का॥
बाजहिँ ताल मृदङ्ग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुर-भूपा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान सन्धाना॥

दो०—छत्र मुकुट ताटङ्क तब, हते एकही बान।
सब के देखत महि परे, मरम न कोऊ जान॥
अस कौतुक करि राम-सर, प्रबिसेउ आइ निषङ्ग।
रावन सभा ससङ्क सब, देखि महा-रस-भङ्ग॥१३॥

कम्प न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिँ सब निज हृदय मझारी। असगुन भयऊ भयङ्कर भारी॥
दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई॥
सिरउ गिरे सन्तत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥
सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मन्दोदरी सोच उर बसेऊ। जब तेँ स्रवनपूर महि खसेऊ॥
सजल-नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कन्त राम-बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि मन हठ धरहू॥

दो०—बिस्व-रूप रघु-बंस-मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कलपना बेद कर, अङ्ग अङ्ग प्रति जासु॥१४॥

पद-पाताल सीस-अज-धामा। अपर लोक अङ्ग अङ्ग बिस्रामा॥
भृकुटि-बिलास भयङ्कर-काला। नयन-दिवाकर कच-घन-माला॥
जासु घ्रान अस्विनी-कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर-लोभ जम-दसन-कराला। माया-हास बाहु-दिगपाला॥
आनन-अनल अम्बुपति-जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम-राजि अष्टादस-भारा। अस्थि-सैल सरिता-नस-जारा॥
उदर-उदधि अध-गो जातना। जग-मय-प्रभु का बहु कलपना॥

दो०—अहङ्कार-सिव बुद्धि-अज, मन-ससि चित्त-महान।
मनुज बास सचराचर,-रूप राम भगवान॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बयर बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर-पद, मम अहिवात न जाइ॥१५॥

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाव सत्य कबि कहहीँ। अवगुन आठ सदा उर रहहीँ॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥

रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥
सो सब प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरे॥
जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहेहु मोरि प्रभुताई॥
तव बतकही गूढ़ मृग-लोचनि। समुझत-सुखद सुनत-भय मोचनि॥
मन्दोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल-बस मति-भ्रम भयऊ॥

दो०—एहि बिधि करत बिनोद बहु, प्रात प्रगट दसकन्ध।
सहज असङ्क लङ्कपति, सभा गयउ मद-अन्ध॥

सो०—फूलइ फरइ न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं बिरञ्चि-सिव॥१६॥

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिय उपाई। जामवन्त कह पद सिर नाई॥
सुनु सर्बज्ञ सकल-उर-बासी। बुधि बल तेज धरम गुन रासी॥
मन्त्र कहउँ निज-मति-अनुसारा। दूत पठाइय बालिकुमारा॥
नीक मन्त्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालि-तनय बुधि-बल-गुन-धामा। लङ्का जाहु तात मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम-चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

सो०—प्रभु आज्ञा धरि सीस, चरन बन्दि अंगद उठेउ।
सोइ गुन-सागर-ईस, राम कृपा जा पर करहु॥
स्वयं सिद्ध सब काज, नाथ मोहि आदर दियेउ।
अस बिचारि जुबराज, तनु पुलकित हरषित हिये॥१७॥

बन्दि चरन उर धरि प्रभुताई। अङ्गद चलेउ सबहि सिर नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असङ्का। रन-बाँकुरा बालि-सुत बङ्का॥
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गइ भेंटा॥
बातहि बात करष बढ़ि आई। जुगल-अतुल-बल पुनि तरुनाई॥
तेहि अंगद कहँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भँवाई॥
निसिचर-निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी॥
एक एक सन मरम न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं॥
भयउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लङ्का जेहि जारी॥

अब धौं कोइ करिहि करतारा। अति-सभीत सब करहिं बिचारा॥
बिनु पूछे मग देहिं देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥
दो०—गयउ सभा दरबार तब, सुमिरि राम-पद-कंज।
सिंह-ठवनि इत उत चितव धीर-बीर-बल पुञ्ज॥१८॥
तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिँ जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥
आयसु पाइ दूत बहु धाये। कपि-कुञ्जरहि बोलि लेइ आये॥
अंगद दीख दसानन बैसा। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसा॥
भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कन्दरा खोह अनुमाना॥
गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालि-तनय अति-बल-बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेखी॥
दो०—जथा मत्त-गज-जूथ महँ, पञ्चानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा सिर नाइ॥१९॥
कह दसकंठ कवन तैं बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकन्धर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥
उत्तम-कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरञ्चि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥
नृप अभिमान मोह बस किम्बा। हरि आनेहु सीता जगदम्बा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित सङ्ग निज नारी॥
सादर जनक-सुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे॥
दो०—प्रनतपाल रघुबंस-मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करहिँगे तोहि॥२०॥
रे कपि पोत न बोलु सँभारी। मूढ़ न जानहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई॥
अङ्गद नाम बालि कर बेटा। ता सों कबहुँ भई ही भेंटा॥
अङ्गद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥
अङ्गद तहाँ बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल-घालक॥

गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अङ्गद कहई॥
दिन दस गये बालि पहँ जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥
राम-बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिँ जा के॥

दो०—हम कुल-घालक सत्य तुम्ह, कुल-पालक दससीस।
अन्धउ बधिर न अस कहहिँ, नयन कान तव बीस॥२१॥

सिव-बिरञ्चि-सुर-मुनि-समुदाई। चाहत जासु चरन-सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहर न तोरा॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धरम मैं जानत अहऊँ॥
कह कपि धरमसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर तिय-चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धरम-ब्रत-धारी॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धरम बिचारी॥
धरमसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़ भागी॥

दो०—जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु॥
पुनि नभ-सर मम-कर-निकर, कमलन्हि पर करि बास।
सोभित भयउ मराल इव, सम्भु सहित कैलास॥२२॥

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तव प्रभु नारि-बिरह बल-हीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवन्त मन्त्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समर-अरूढ़ा॥
सिल्प-कर्म जानहिँ नल-नीला। है कपि एक महा-बल-सीला॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा॥
सत्य बचन कहु निसिचर-नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुर-दाहा॥
रावन नगर अलप कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥
जो अति-सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु-धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥

दो०—सत्य नगर कपि जारेउ, बिन प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं, तेहि भय रहा लुकाइ॥
सत्य कहहि दस कंठ सब, मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारे कटक अस, तो सन लरत जो सोह॥
प्रीति बिरोध समान सन, करिय नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि, भल कि कहइ कोउ ताहि॥
जद्यपि लघुता राम कहँ, तोहि बधे बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु, छत्रिजाति कर रोष॥
बक्र-उक्ति-धनु बचन-सर, हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दससीस॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित, करइ उपाय अनेक॥ ॥२३॥

धन्य कीस जो निज-प्रभु-काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति-हित करइ धरम निपुनाई॥
अङ्गद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुन गाहक परम-सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना॥
कह कपि तव गुन-गाहकताई। सत्य पवन-सुत मोहि सुनाई॥
बन-बिध्वंसि सुत-बधि पुर-जारा। तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकन्धर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरे लाज न रोष न माषा॥
जौं असि मति पितु खायेहु कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥
बालि-बिमल-जस-भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते॥
बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखा बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लेइ आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥
दो०—एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।

द्वन्द गहँ रावन तैँ कवन, सत्य बदहि तजि माख ॥२४॥
सुनु सठ सोइ रावन-बल-सीला । हर-गिरि जानु जासु भुज-लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउँ जेहि सिर-सुमन चढ़ाई ॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहिँ दिगपाला । सठ अजहूँ जिनके उर साला ॥
जानहिँ दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्ह के दसन करालन फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी । चढ़त मत्त-गज जिमि लघु तरनी ॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी । सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी ॥
दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ज्ञान ॥२५॥
सुनि अङ्गद सकोप कह बानी । बोलु सँभारि अधम अभिमानी ॥
सहसबाहु-भुज-गहन अपारा । दहन अनल-सम जासु कुठारा ॥
जासु परसु सागर-खर-धारा । बूड़े नृप अगनित बहु बारा ॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दससीस अभागा ॥
राम मनुज कस रे सठ बङ्गा । धन्वी-काम नदी पुनि गङ्गा ॥
पसु-सुरधेनु कलपतरु-रूखा । अन्न-दान अरु रस-पीयूखा ॥
बैनतेय-खग अहि-सहसानन । चिन्तामनि पुनि उपल दसानन ॥
सुनु मतिमन्द लोक-बैकुंठा । लाभ कि रघुपति-भगति-अकुंठा ॥
दो०—सेन सहित तव मान मथि, बन-उजारि पुर-जारि ।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि ॥२६॥
सुनु रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपासिन्धु रघुराई ॥
जौं खल भयेसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥
मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला । राम-बयर अस होइहि हाला ॥
तव सिर-निकर कपिन्ह के आगे । परिहहिँ धरनि राम-सर-लागे ॥
ते तव सिर कन्दुक इव नाना । खेलिहहिँ भालु कीस चौगाना ॥
जबहिँ समर कोपिहि रघुनायक । छुटिहहिँ अति कराल बहु सायक ॥
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा । अस बिचारि भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥

दो०—कुम्भकरन अस बन्धु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिँ सुनेहि, जितेउँ चराचर झारि ॥२७॥
सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिन्धु इहइ प्रभुताई ॥
नाँघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिँ ते सुनु सब कीसा ॥
मम-भुज-सागर बल-जल-पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर-नर-सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा ॥
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा ॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु-गुन-गाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिँ लाजा ॥
हरगिरि-मथन निरखु-मम-बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥
दो०—सूर कवन रावन सरिस, स्व कर काटि जेहि सीस।
हुने अनल अति-हरष बहु, बार साखि गौरीस ॥२८॥
जरत बिलोकेउँ जबहिँ कपाला। बिधि के लिखे अङ्क निज भाला ॥
नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची ॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिँ मोरे। लिखा बिरञ्चि जरठ-मति-भोरे॥
आन बीर बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज-पति-त्यागे ॥
कह अङ्गद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥
लाजवन्त तव सहज सुभाऊ। निज-मुख निज-गुन कहसि न काऊ॥
सिर अरु सैल कथा चित रही। ता तें बार बीस तैं कही ॥
सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु-बलि-बाली ॥
सुनु मति-मन्द-देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइय सूरा ॥
इन्द्रजालि कहँ कहिय न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा ॥
दो०—जरहिँ पतङ्ग मोह बस, भार बहहिं खर-वृन्द।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मति-मन्द ॥२९॥
अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही ॥
दसमुख मैं न बसीठी आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ ॥
बार बार अस कहइ कृपाला। नहिँ गजारि जस बधे सृगाला ॥
मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ॥
नाहिं त करि मुख-भञ्जन तोरा। लेइ जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥

आनेउँ तव दल अधम सुरारी। सूने हरि आनेसि पर-नारी॥
तैं निसचर-पति गर्व बहूता। मैं रघुपति-सेवक-कर-दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥
दो०—तोहि-पटकि महि सेन-हति, चौपट करि तव गाउँ।
तव जुवतीन्ह समेत सठ, जनकसुतहि लेइ जाउँ॥३०॥
जौं अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे नहिं कछु मनुसाई॥
कौल काम-बस कृपिन विमूढ़ा। अति-दरिद्र अजसी अति-बूढ़ा॥
सदा-रोग-बस सन्तत-क्रोधी। बिष्नु-बिमुख स्रुति-सन्त-बिरोधी॥
तनु-पोषक निन्दक अघ-खानी। जीवत सव-सम चौदह प्रानी॥
अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर-नाथा। अधर-दसन दसि मींजत-हाथा॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कटु-जल्पसि जड़-कपि बल-जाके। बल-प्रताप-बुधि-तेज न ताके॥
अगुन अमान बिचारि तेहि, दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह, पुनि निस-दिन मम त्रास॥
जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस-निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक॥३१॥
जब तेहि कीन्ह राम कइ निन्दा। क्रोधवन्त अति भयउ कपिन्दा॥
हरि-हर-निन्दा सुनइ जो काना। होइ पाप गो-घात-समाना॥
कटकटान कपि-कुञ्जर भारी। दुहुँ-भुज-दंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भागि भय मारुत ग्रसे॥
गिरत संभारि उठा दसकन्धर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥
कछु तेहि ले निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पवारे॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनही लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाये। कुलिस चारि आवत अति धाये॥
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ये किरीट दशकन्धर केरे। आवत बालि-तनय के प्रेरे॥
दो०—तरकि पवन-सुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकर-सरिस-प्रकास॥

उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अङ्गद मुसुकाइ ॥३२॥

एहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु॥
मरकट-हीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई॥
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥
मरु गर काटि निलज कुल-घाती। बलबिलोकि बिहरति नहिँ छाती॥
रे त्रिय-चोर कुमारग-गामी। खल मल-रासि मन्द-मति कामी॥
सन्निपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि काल-बस खल मनुजादा॥
या को फल पावहुगे आगे। बानर-भालु-चपेटन्हि लागे॥
राम-मनुज बोलत असि बानी। गिरहि न तव रसना अभिमानी॥
गिरिहहिँ रसना संसय नाहीँ। सिरन्हि समेत समर-महि माहीँ॥

सो०—सो नर क्योँ दसकन्ध, बालि बधेउ जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अन्ध, धिग तव जनम कुजाति जड़॥
तव सोनित की प्यास, तृषित राम-सायक-निकर।
तजउँ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निसिचर अधम ॥३३॥

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
अस रिसि होति दसउ मुख तोरउँ। लङ्का गहि समुद्र महँ बोरउँ॥
गूलरि-फल-समान तव लङ्का। बसहु मध्य तुम्ह जन्तु असङ्का॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखे कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भयेसि लबारा॥
साँचेहु मैं लबार भुज-बीहा। जौँ न उपारउँ तव दस-जीहा॥
समुझि राम-प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद-रोपा॥
जौँ मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिँ राम सीता मैं हारी॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद-गहि धरनि-पछारहु कीसा॥
इन्द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिँ करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिँ सिर नाई॥
पुनि उठि झपटहिँ सुर-आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती॥
पुरुष-कुजोगी जिमि उरगारी। मोह-बिटप नहिँ सकहिँ उपारी॥

दो०—कोटिन्ह मेघनाद सम, सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिँ टरइ न कपि-चरन, पुनि बैठहिँ सिर नाइ॥
भूमि न छाड़त कपि-चरन, देखत रिपु-मद-भाग।
कोटि बिघ्न तें सन्त कर, मन जिमि नीति न त्याग॥३४॥

कपि-बल-देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के परचारे॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम-पद-गहे न तोर उबारा॥
गहसि न राम-चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति-सकुचाई॥
भयउ तेज-हत श्री सब गई। मध्य-दिवस जिमि ससि सोहई॥
सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ सम्पति सकल गँवाई॥
जगदातमा-प्रानपति-रामा। तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा॥
उमा राम की भृकुटि-बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥
तृन तेँ कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न तासु काल नियराना॥
रिपु-मद-मथि प्रभु-सुजस सुनायो। यह कहि चलेउ बालि-नृप-जायो॥
हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिँ का करउँ बड़ाई॥
प्रथमहिँ तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥
जातुधान अङ्गद पन देखी। भय ब्याकुल सब भये बिसेखी॥

दो०—रिपु-बल-धरषि हरषि कपि, बालि-तनय बल-पुञ्ज।
पुलक-सरीर नयन-जल, गहे राम-पद-कञ्ज॥
साँझ समय दसमौलि तब, भवन गयउ बिलखाइ।
मन्दोदरी निसाचरहि, बहुरि कहा समुझाइ॥३५॥

कन्त समुझि मन तजहु कुमति ही। सोह न समर तुम्हहिँ रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिँ नाँघेहु असि मनुसाई॥
पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर अस कामा॥
कौतुक सिन्धु नाँघि तव लङ्का। आयउ कपि केहरी असङ्का॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा॥
जारि नगर सब कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल-गर्ब तुम्हारा॥
अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग-जग-नाथ अतुल-बल जानहु

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिँ मानेहु नीचा॥
जनक-सभा अगनित महिपाला। रहे तुम्हउ बल बिपुल बिसाला॥
भञ्जि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति-सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा॥
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहिँ लाज बिसेखी॥
दो०—बधि बिराध-खर दूषनहिँ, लीला-हतेउ-कबन्ध।
बालि एक सर मारेऊ, तेहि जानहु दशकन्ध॥३६॥
जेहि जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे सेन समेत सुबेला॥
कारुनीक दिनकर-कुल-केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥
सभा माँझ जेहि तव बल मथा। करि-बरूथ-महँ मृगपति जथा॥
अङ्गद हनुमत अनुचर जा के। रनबाँकुरे बीर अति-बाँके॥
तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान-ममता-मद-बहहू॥
अहह कन्त कृत-राम बिरोधा। काल-बिबस मन उपज न बोधा॥
काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ बुद्धि-बल-धरम-बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साँईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाँईं॥
दो०—दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ बिमल-जस लेहु॥३७॥
नारिबचन सुनि बिसिख समाना। सभा गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंहासन फूली। अति-अभिमान त्रास सब भूली॥
इहाँ राम अङ्गदहि बोलावा। आइ चरन-पङ्कज सिर नावा॥
अति-आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी॥
बालितनय अति कौतुक मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही॥
रावन-जातुधान-कुल-टीका। भुज-बल-अतुल जासु जग लीका॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाये। कहहु तात कवनी बिधि पाये॥
सुनु सर्बज्ञ प्रनत-सुखकारी। मुकुट न होहिँ भूप-गुन-चारी॥
साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिँ नाथ कह बेदा॥
नीति-धरम के चरन सुहाये। अस जिय जानि नाथ पहिँ आये।
दो०—धरम-हीन प्रभु-पद-बिमुख, काल-बिबस-दससीस।
तेहि परिहरि गुन आयउ, सुनहु कोसलाधीस॥

परम चतुरता स्रवन सुनि, बिहँसे राम उदार ।
समाचार पुनि सब कहे, गढ़ के बालिकुमार ॥३८॥
रिपु के समाचार जब पाये । राम सचिव सब निकट बोलाये ॥
लङ्का बाँके चारि दुआरा । केहि बिधि लागिय करहु बिचारा ॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन । सुमिरि हृदय दिनकर-कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन्ह मन्त्र दृढ़ावा । चारि अनी कपि-कटक बनावा ॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे । जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाये । सुनि कपि सिंहनाद करि धाये ॥
हरषित राम-चरन सिर नावहिँ । गहि-गिरि-सिखर बीर सब धावहिँ ॥
गर्जहिँ तर्जहिँ भालु कपीसा । जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥
जानत परम-दुर्ग अति लङ्का । प्रभु प्रताप कपि चलेउ असङ्का ॥
घटाटोप करि चहुँदिसि घेरी । मुखहि निसान बजावहिँ भेरी ॥
दो०—जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीवँ ।
गर्जहिँ केहरिनाद कपि, भालु महाबल-सीवँ ॥३९॥
लङ्का भयउ कोलाहल भारी । सुना दसानन अति अहँकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई । बिहँसि निसाचर-सेन बोलाई ॥
आये कीस काल के प्रेरे । छुधावन्त सब निसिचर मेरे ॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा । गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा ॥
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू । धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥
उमा रावनहिँ अस अभिमाना । जिमि टिट्टिभ-खग सूत उताना ॥
चले निसाचर आयसु माँगी । गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ॥
तोमर मुद्गर परिघ प्रचंडा । सूल कृपान परसु गिरि-खंडा ॥
जिमि अरुनोपल निकर निहारी । धावहिँ सठ खग माँस-अहारी ॥
चोँच-भङ्ग-दुख तिन्हहिँ न सूझा । तिमि धाये मनुजाद अबूझा ॥
दो०—नानायुध सर चाप धर, जातुधान-बल-बीर ।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गये, कोटि कोटि रनधीर ॥४०॥
कोट कँगूरन्हि सोहहिँ कैसे । मेरु के सृङ्गन्हि जनु घन बैसे ॥
बाजहिँ ढोल निसान जुझाऊ । सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ॥
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा । सुनि कादर उर जाहिं दरारा ॥

देखि न जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति-बिसाल-तनु भालु सुभट्टा॥
धावहिँ गनहिँ न अवघट घाटा। पर्वत फोरि करहिँ गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिँ॥
उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिँ। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिँ॥

हरिगीतिका-छन्द।

धरि कुधर-खंड प्रचंड-मर्कट,-भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिँ चरन गहि पटकि महि भजि,,-चलत बहुरि पचारहीं॥
अति-तरल तरुन-प्रताप तर्जहिँ, तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गये।
कपि-भालु चढ़ि मन्दिरन्हि जहँ तहँ, राम-जस गावत भये॥१॥

दो०—एक एक गहि निसिचर, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट, गिरहिं धरनि पर आइ॥४१॥

राम-प्रताप-प्रबल कपि-जूथा। मर्दहि निसिचर-निकर-बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप-दिवाकर॥
चले निसाचर-निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिँ बालक आतुर नारी॥
सब मिलि देहि रावनहि गारी। राज करत एहि मृत्यु हँकारी॥
निजदल बिचल सुना तेहि काना। फेरि सुभट लङ्केस रिसाना॥
जो रन-बिमुख-फिरा मैं जाना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सरबस खाइ भोग करि नाना। समर-भूमि भये बल्लभ प्राना॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। फिरे क्रोध करि बीर लजाने॥
सनमुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥

दो०—बहु-आयुध-धर सुभट सब, भिरहिँ पचारि पचारि।
ब्याकुल कीन्हे भालु-कपि, परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥४२॥

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिँ आगे॥
कोउ कह कहँ अङ्गद हनुमन्ता। कहँ नल नील दुबिद बलवन्ता॥
निजदल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥
पवन-तनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल-काल-सम जोधा॥

कूदि लङ्क-गढ़ ऊपर आवा । गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा ॥
भञ्जेउ रथ सारथी-निपाता । ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ॥
दुसरे सूत बिकल तेहि जाना । स्यन्दन-घालि तुरत गृह आना ॥

दो०—अङ्गद सुनेउ कि पवन-सुत, गढ़ पर गयउ अकेल ।
समरबाँकुरा बालि-सुत, तरकि चढ़ेउ कपि-खेल ॥४३॥

जुद्ध-बिरुद्ध-क्रुद्ध दोउ बन्दर । राम-प्रताप सुमिरि उर-अन्तर ॥
रावन भवन चढ़े दोउ धाई । करहिँ कोसलाधीस दोहाई ॥
कलस सहित गहि भवन ढहावा । देखि निसाचर-पति भय पावा ॥
नारि-वृन्द कर पीटहिँ छाती । अब दुइ कपि आये उतपाती ॥
कपि-लीला करि तिन्हहिँ डरावहिँ । रामचन्द्र कर सुजस सुनावहिँ ॥
पुनि कर गहि कञ्चन के खम्भा । कहेन्हि करिय उतपात अरम्भा ॥
गर्जि परे रिपु-कटक मझारी । लागे मर्दइ भुज-बल-भारी ॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू । भजहु न रामहिँ सो फल लेहू ॥

दो०—एक एक सोँ मर्दहीं, तोरि चलावहिँ मुंड ।
रावन आगे परहिँ ते, जनु फूटहिँ दधि-कुंड ॥४४॥

महामहा मुखिया जे पावहिँ । ते पद गहि प्रभु पास चलावहिँ ॥
कहहिँ बिभीषन तिन्ह के नामा । देहिँ राम तिन्हहूँ निजधामा ॥
खल मनुजाद द्विजामिष-भोगी । पावहिँ गति जो जाचत जोगी ॥
उमा राम मृदु-चित करुनाकर । बैर-भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥
देहिँ परम-गति सो जिय जानी । अस कृपालु को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहिँ भ्रम त्यागी । नर मति-मंद ते परम अभागी ॥
अङ्गद अरु हनुमन्त प्रबेसा । कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥
लङ्का दोउ कपि सोहहिँ कैसे । मथहिँ सिन्धु दुइ मन्दर जैसे ॥

दो०—भुज-बल रिपु-दल दलमलि, देखि दिवस कर अन्त ।
कूदे जुगल बिगत-स्रम, आये जहँ भगवन्त ॥४५॥

प्रभु-पद-कमल सीस तिन्ह नाये । देखि सुभट रघुपति मन भाये ॥
राम कृपा करि जुगल निहारे । भये बिगत-स्रम परम-सुखारे ॥
गये जानि अङ्गद हनुमाना । फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥
जातुधान प्रदोष बल पाई । धाये करि दससीस-दोहाई ॥

निसिचर-अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट-भिरे॥
दोउ दल प्रबल प्रचारि प्रचारी। लरत सुभट नहिँ मानहिँ हारी॥
महावीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल सम-बल-जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥
प्राविट-सरद-पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥
अनिप अकम्पन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥
भयउ निमिष महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरो पल-छारा॥
दो०—देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि, कपि-दल भयउ खभार।
एकहि एक न देखहीं, जहँ तहँ करहिँ पुकार॥४६॥
सकल मरम रघुनायक जाना। लिये बोलि अङ्गद हनुमाना॥
समाचार सब कहि समुझाये। सुनत कोपि कपि-कुञ्जर धाये॥
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक-सायक सपदि चलावा॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीँ। ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीँ॥
भालु-बलीमुख पाइ प्रकासा। धाये हरषि बिगत-स्रम-त्रासा॥
हनूमान अङ्गद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥
भागत भट पटकहिँ धरि धरनी। करहिँ भालु-कपि अद्भुत-करनी॥
गहि पद डारहिँ सागर माहीँ। मकर-उरग-झष धरि धरि खाहीँ॥
दो०—कछु मारे कछु घायल, कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिँ मर्कट भालु भट, रिपु-दल-बल बिचलाइ॥४७॥
निसा जानि कपि चारिउ अनी। आये जहाँ कोसला-धनी॥
राम-कृपा-करि चितवा जबहीँ। भये बिगत-स्रम बानर तबहीँ॥
उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटक कपिन्ह सङ्घारा। कहहु बेगि का करिय बिचारा॥
माल्यवन्त अति जरठ निसाचर। रावन-मातु-पिता मन्त्री बर॥
बोला बचन नीति अति-पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥
जब तेँ तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिँ न जाहिँ बखानी॥
बेद-पुरान जासु जस गावा। राम बिमुख सुख काहु न पावा॥
दो०—हिरन्याक्ष भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिन्धु भगवान॥

काल रूप खल-बन-दहन, गुनागार घन-बोध ।
सिव-बिरञ्चि जेहि सेवहिं, तासों कवन बिरोध ॥४८॥

परिहरि बयर देहु बैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ता के बचन बान सम लागे । करिया मुख करि जाहि अभागे ॥
बूढ़ भयेसि न त मरतेउँ तोही । अब जनि नयन देखावसि मोही ॥
तेहि अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत एहि कृपानिधाना ॥
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखियहु मोरा । करिहउँ बहुत कहउँ का थोरा ॥
सुनि सुत बचन भरोसा आवा । प्रीति समेत अङ्क बैठावा ॥
करत बिचार भयउ भिनुसारा । लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥
कोपि कपिन्ह दुरघट-गढ़ घेरा । नगर कोलाहल भयउ घनेरा ॥
बिबिधायुध-धर निसिचर धाये । गढ़ तेँ पर्बत-सिखर ढहाये ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

ढाहे महीधर-सिखर-कोटिन्ह, बिबिध बिधि गोला चले ।
घहरात जिमि पबि-पात गरजत, जनु प्रलय के बादले ॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न, लटत तन जर्जर भये ।
गहि सैल तेइ गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हये ॥

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ ।
उतरि दुर्ग ते बीर बर, सनमुख चलेउ बजाइ ॥४९॥

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता । धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल-नील-दुबिद-सुग्रीवाँ । अङ्गद हनुमन्त बलसींवाँ ॥
कहाँ बिभीषन भ्राता-द्रोही । आजु सठहि हठि मारउँ ओही ॥
अस कहि कठिन बान सन्धाने । अतिसय क्रोध स्रवन लगि ताने ॥
सर-समूह सो छाड़इ लागा । जनु सपच्छ धावहिँ बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखि अहि बानर । सनमुख होइ न सके तेहि अवसर ॥
जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा । बिसरी सबहि जुद्ध के ईछा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा ॥

दो०—दस दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि-बीर ।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बल धीर ॥

देखि पवन-सुत कटक बेहाला। क्रोधवन्त जनु धायउ काला ॥
महा-सैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा ॥
आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार प्रचार हनुमाना। निकट न आव मरम सो जाना ॥
रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा ॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकही प्रभु काटि निवारे ॥
देखि प्रताप मूढ़ खिसियाना। करइ लाग माया बिधि नाना ॥
जिमि कोउ करइ गरुड़ से खेला। डरपावइ गहि स्वल्प सपेला ॥

दो०—जासु प्रबल-माया-बस, सिव-बिरञ्चि बड़ छोट ॥
ताहि देखावइ निसिचर, निज-माया मति-खोट ॥५१॥

नभचढ़ि बरषइ बिपुल अङ्गारा। महि ते प्रगट होहिँ जलधारा ॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिँ नाची ॥
बिष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा ॥
कपि अकुलाने माया देखे। सब कर मरन बना एहि लेखे ॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भये सभीत सकल कपि जाने ॥
एकबान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर-निकाया ॥
कृपा-दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबल रन रहहिँ न रोके ॥

दो०—आयसु माँगि राम पहिँ, अङ्गदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान-सरासन हाथ ॥५२॥

छतज-नयन उर-बाहु-बिसाला। हिमगिरि-निभ-तनु कछु एकलाला ॥
इहाँ दसानन सुभट पठाये। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाये ॥
भूधर-नख-बिटपायुध-धारी। धाये कपि जय राम पुकारी ॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय-इच्छा नहिँ थोरी ॥
मुठिकन्ह लातन्ह दाँतन्ह काटहिँ। कपि-जयसील मारि पुनि डाटहिँ ॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥
असि रव पूरि रही नव-खंडा। धावहिँ जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ॥
देखहिँ कौतुक नभ सुर-बृन्दा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनन्दा ॥

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ।

जनु अँगार-रासीन्ह-पर, मृतक धूम रह छाइ ॥ ५२ ॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे । कुसुमित किंसुक के तरु जैसे ॥
लछिमन मेघनाद दोउ जोधा । भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥
एकहि एक सकइ नहिं जीती । निसिचर छल बल करइ अनीती ॥
क्रोधवन्त तब भयउ अनन्ता । भञ्जेउ रथ सारथी तुरन्ता ॥
नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राच्छस भयउ प्रान अवसेषा ॥
रावन सुत निज मन अनुमाना । सङ्कट भयउ हरिहि मम प्राना ॥
बीरघातिनी छाड़ेसि साँगी । तेज-पुञ्ज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति के लागे । तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥

दो०—मेघनाद सम कोटिसत, जोधा रहे उठाय ।
जगदाधार अनन्त किमि, उठइ चले खिसियाइ ॥५४॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू । जारइ भुवन चारि दस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही । सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥
यह कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा राम कै होई ॥
सन्ध्या भई फिरी दोउ बाहनी । लगे सँभारन निज निज अनी ॥
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लेइ आयउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥
जामवन्त कह बैद सुषेना । लङ्का रहइ को पठइय लेना ॥
धरि लघु-रूप गयउ हनुमन्ता । आनेहु भवन-समेत तुरन्ता ॥

दो०—रघुपति-चरन-सरोज सिर, नायउ आइ सुषेन ।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवन-सुत लेन ॥५५॥

राम-चरन-सरसिज उर राखी । चला प्रभञ्जन-सुत बल भाखी ॥
उहाँ दूत एक मरम जनावा । रावन कालनेमि गृह आवा ॥
दसमुख कहा मरम तेहि सुना । पुनि पुनि कालनेमि सिर धुना ॥
देखत तुम्हहिं नगर जेहि जारा । तासु पन्थ को रोकनिहारा ॥
भजि रघुपति करु हित आपना । छाँड़हु नाथ मृषा जलपना ॥
नील-कञ्ज-तनु सुन्दर स्यामा । हृदयँ राखु लोचन अभिरामा ॥
अहङ्कार ममता मद त्यागू । महा मोह-निसि सूतत जागू ॥
काल ब्याल कर भक्षक जोई । सपनेहुँ समर कि जीतिय सोई ।

दो०—सुनि दसकंठ रिसान अति, तेहि मन कीन्ह बिचार ।
राम-दूत-कर मरउँ बरु, यह खल रत-मल-भार ॥५६॥

अस कहि चला रचेसि मग माया । सर मन्दिर बर बाग बनाया ॥
मारुत-सुत देखा सुभ आस्रम । मुनिहि बूझि जल पियउँ जाइ स्रम ॥
राच्छस कपट-बेष तहँ सोहा । मायापति-दूतहि चह मोहा ॥
जाइ पवन-सुत नायउ माथा । लाग सो कहइ राम-गुन गाथा ॥
होत महा रन रावन रामहिँ । जितिहहिँ राम न संसय यामहिँ ॥
इहाँ भये मैं देखउँ भाई । ज्ञान-दृष्टि-बल मोहि अधिकाई ॥
माँगा जल तेहि दीन्ह कमंडल । कह कपि नहिँ अघाउँ थोरे जल ॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु । दीछा देउँ ज्ञान जेहि पावहु ॥

दो०—सर पैठत कपि-पद गहा, मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य-तनु, चली गगन चढ़ि जान ॥५७॥

कपि तव दरस भइउँ निःपापा । मिटा तात मुनि बर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानहु सत्य बचन कपि मोरा ॥
अस कहि गई अपछरा जबहीँ । निसिचर निकट गयउ कपि तबहीँ ॥
कह कपि मुनि गुरुदछिना लेहु । पाछे हमहिँ मन्त्र तुम्ह देहु ॥
सिर लङ्गूर लपेटि पछारा । निज तनु प्रगटेसि मरती बारा ॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना । सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना ॥
देखा सैल न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ॥

दो०—देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि ।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवन लगि तानि ॥५८॥

परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय बचन भरत उठि धाये । कपि समीप अति आतुर आये ॥
बिकल बिलोकि कीस उर लावा । जागत नहिँ बहु भाँति जगावा ॥
मुख मलीन मन भये दुखारी । कहत बचन लोचन भरि बारी ॥
जेहि बिधि राम-बिमुख मोहि कीन्हा । तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौं मोरे मन बच अरु काया । प्रीति राम-पद-कमल अमाया ॥
तौ कपि होउ बिगत स्रम-सूला । जौं मो पर रघुपति-अनुकूला ॥

सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोशलाधीसा॥
सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम-रघुकुल-तिलक॥५९॥
तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
कपि सब चरित समास बखाने। भये दुखी मन महँ पछिताने॥
अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसर मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥
तात गहरु होइहि तोहि जाता। काज नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवहुँ तोहि जहँ कृपानिकेता॥
सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बन्दि चरन कह कपि कर जोरी॥
दो०—तव प्रताप उर राखि प्रभु, जैहउँ नाथ तुरन्त।
अस कहि आयसु पाइ पद,—बन्दि चलेउ हनुमन्त॥
भरत बाहु बल सील गुन, प्रभु-पद-प्रीति अपार।
मन महँ जात सराहत, पुनि पुनि पवनकुमार॥६०॥
उहाँ राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी॥
अर्धराति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावइ मोही॥
जैहउँ अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥

सौंपेसि मोहि तुम्हहिं पहि पानी। सब बिधि सुखद परमहित जानी॥
उतर काह देहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
बहु बिधि सोचत सोचबिमोचन। स्रवत सलिल राजिव-दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत-कृपाल देखाई॥
दो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भये बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीररस॥६१॥
हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम-सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥
हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता। हरषे सकल भालु-कपि-ब्राता॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लेइ आवा॥
यह बृत्तान्त दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥
व्याकुल कुम्भकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥
जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहुँ काल देह धरि बैसा॥
कुम्भकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहेउ सुखाई॥
कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा-महा-जोधा संहारे॥
दुमुख सुररिपु मनुजअहारी। भट अतिकाय अकम्पन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥
दो०—सुनि दसकन्धर बचन तब, कुम्भकरन बिलखान।
जगदम्बा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान॥६२॥
भल न कीन्ह तैं निसिचर-नाहा। अब मोहि आइ जगायेहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥
हैं दससीस मनुज रघुनायक। जा के हनूमान से पायक॥
अहह बन्धु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनायेहि आई॥
कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरञ्चि सुर जा के सेवक॥
नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा॥
अब भरि अङ्क भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करउँ मैं जाई॥
स्याम-गात सरसीरुह-लोचन। देखउँ जाइ ताप-त्रय-मोचन॥
दो०—राम-रूप-गुन सुमिरत, मगन भयउ छन एक।

रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥६३॥
महिष खाइ करि मदिरा पाना। गरजा बज्राघात समाना॥
कुम्भकरन दुर्मद रनरङ्गा। चला दुर्ग तजि सेन न सङ्गा॥
देखि बिभीषन आगे आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥
अनुज उठाइ हृदय तेहि लावा। रघुपति भगत जानि मन भावा॥
तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम-हित मन्त्र-बिचारा॥
तेहि गलानि रघुपति पहिँ आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउ॥
सुनु सुत भयउ काल बस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य त धन्य बिभीषन। भयेहु तात निसिचर-कुल-भूषन॥
बन्धु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा-सुख-सागर॥
दो०—बचन करम मन कपट तजि, भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि, भयउँ काल बस बीर ॥६४॥
बन्धु बचन सुनि फिरा बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक-बिभूषन॥
नाथ भूधराकार-सरीरा। कुम्भकरन आवत रनधीरा॥
एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाये बलवाना॥
लिये उपारि बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिँ ता ऊपर॥
कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिँ भालु कपि एक एक बारा॥
मुरेउ न मन तनु टरेउ न टारे। जिमि गज अर्क-फलन्हि के मारे॥
तब मारुत-सुत मुठिका हनेऊ। परेउ धरनि ब्याकुल सिर धुनेऊ॥
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमन्ता। घुर्मित भूतल परेउ तुरन्ता॥
पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बलीमुख-सेन पराई। अति भय त्रसित न कोई समुहाई॥
दो०—अङ्गदादि कपि मुरछित, करि समेत सुग्रीवँ।
काँख दाबि कपिराज कहँ, चला अमित-बल सींवँ ॥६५॥
उमा करत रघुपति नर लीला। खेल गरुड़ जिमि अहि गन मीला॥
भृकुटि भङ्ग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥
जग-पावनि कीरति बिस्तरिहहिँ। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिँ॥
मुरछा गइ मारुत-सुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥
सुग्रीवहुँ कै मुरछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥

काटेसि दसन नासिका काना । गरजि अकास चलेउ तेहि जाना ॥
गहेउ चरन धरि धरनि पछारा । अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आयउ प्रभु पहिँ बलवाना । जयति जयति जय कृपानिधाना ॥
नाक कान काटे जिय जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ॥
सहज-भीम पुनि बिनु स्रुति नासा । देखत कपि दल उपजी त्रासा ॥

दो०—जय जय जय रघुबंस मनि, धाये कपि दे हूह ।
एकहि बार तासु पर, छाड़ेन्हि गिरि-तरु जूह ॥६६॥

कुम्भकरन रनरङ्ग बिरुद्धा । सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीड़ी गिरि-गुहा-समाई ॥
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा । कोटिन्ह मीँजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा । निसरि पराहिँ भालु कपि ठाटा ॥
रन-मद-मत्त निसाचर दर्पा । बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहिँ न फेरे । सूझ न नयन सुनहिँ नहिँ टेरे ॥
कुम्भकरन कपि फौज बिड़ारी । सुनि धाई रजनीचर-धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई । रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥

दो०—सुनु सुग्रीव बिभीषन, अनुज सँभारेहु सैन ॥
मैं देखउँ खल-बल-दलहि, बोले राजिव नैन ॥६७॥

कर सारङ्ग साजि कटि भाथा । अरि दल दलन चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टकोरा । रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा ॥
सत्यसन्ध छाँड़े सर लच्छा । कालसर्प जनु चले सपच्छा ॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा । लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥
कटहिँ चरन उर सिर भुजदंडा । बहुतक बीर होहिँ सतखंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीँ । उठि सम्भारि सुभट पुनि लरहीँ ॥
लागत बान जलद जिमि गाजहिँ । बहुतक देखि कठिन सर भाजहिँ ।
रुंड प्रचंड मुंड बिन धावहिँ । धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिँ ॥

दो०—छन में प्रभु के सायकन्हि, काटे बिकट पिसाच ।
पुनि रघुबीर निषङ्ग महँ, प्रबिसे सब नाराच ॥६८॥

कुम्भकरन मन दीख बिचारी । हति छन माँझ निसाचर धारी ॥
भा अति-क्रुद्ध महा-बल-बीरा । कियो मृगनायक-नाद गँभीरा ॥

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट-भट-भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाड़े अति कराल बहु सायक॥
तन महँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन माँझ समाहीं॥
सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल-गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाये। बिहँसा जबहिँ निकट कपि आये॥

दो०—महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव, सपथ करइ दससीस॥६९॥

भागे भालु-बलीमुख-जूथा। वृक बिलोकि जिमि मेष-बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥
यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल-देस परन अब चहई॥
कृपा बारि धर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति-हारी॥
सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बल साली॥
खैंचि धनुष सर सत सन्धाने। छूटे तीर सरीर समाने॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥
लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी॥
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥
काटे भुजा सोह खल कैसा। पच्छ हीन मन्दर गिरि जैसा॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रयलोका॥

दो०—करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा होति पुकारि॥७०॥

सभय देव करुनानिधि जानेउ। स्रवन प्रजन्त सरासन तानेउ॥
बिसिखनिकर निसिचरमुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल-त्रोन सजीव जनु आवा॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धरतेँ भिन्न तासु सिर कीन्हा॥
सो सिर परेउ दसानन आगे। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागे॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥
परे भूमि जिमि नभ तेँ भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचम्भव माना॥
सुर दुन्दुभी बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥
करि बिनती सुर सकल सिधाये। तेही समय देवरिषि आये॥
गगनोपरि हरि-गुन-गन गाये। रुचिर बीररस प्रभु मन भाये॥
बेगि हतहु खल कहिं मुनि गये। राम समर-महि सोहत भये॥

हरिगीतिका-छन्द।

संग्रामभूमि बिराज रघुपति, अतुल बल कोसल धनी।
स्रमबिन्दु मुख राजीव लोचन, अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन, भालु कपि चहुँ दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि, सेष जेहि आनन घने॥६॥

दो०—निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मन्दमति, जे न भजहिं श्रीराम॥७१॥

दिन के अन्त फिरी दोउ अनी। समर भई सुभटन्ह स्रम घनी॥
राम कृपा कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥
छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निजमुख कहे सुकृत जेहि भाँती॥
बहु बिलाप दसकन्धर करई। बन्धु सीस पुनि पुनि उर धरई॥
रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी॥
मेघनाद तेहि अवसर आवा। कहि बहु कथा पिता समुझावा॥
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करउँ बड़ाई॥
इष्टदेव सों बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ॥
यहि बिधि जलपत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इत कपि-भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥

दो०—मेघनाद माया-मय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गाजे अट्टहास करि, भइ कपि कटकहि त्रास॥७२॥

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करइ बहु बाना॥
दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा-मेघ झरि लाई॥
धरु धरु मारु सुनिय धुनि काना। जो मारइ तेहि काहु न जाना॥

गहि गिरि तरु आकास कपि धावहिं। देखहिं ते हि नकृपिन फिरि आवहिं॥
अवघट-घाट-बाट-गिरि कन्दर। माया बल कीन्हेसि सर-पञ्जर॥
जाहिं कहाँ ब्याकुल भये बन्दर। सुरपति बन्दि परेउ जनु मन्दर॥
मारुत सुत अङ्गद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर-तन॥
पुनि रघुपति सन जूझइ लागा। सर छाड़इ होइ लागहिं नागा॥
ब्याल-पास-बस भये खरारी। स्वबस अनन्त एक अबिकारी॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र राम भगवाना॥
रन सोभा लगि प्रभुहि बँधावा। देखि दसा देवन्ह भय पावा॥

दो०—गिरिजा जासु नाम जपि, मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बन्ध तर आवइ, ब्यापक बिस्व-निवास॥७३॥

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहिं भजहिं तरक सब त्यागी॥
ब्याकुल कटक कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवन्त कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउँ तोहीं। लागेसि अधम पचारइ मोहीं॥
अस कहि तीव्र त्रिसूल चलायो। जामवन्त कर गहि सो धायो॥
मारेसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लङ्का पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥

दो०—खगपति सब धरि खाये, माया-नाग-बरूथ।
माया-बिगत भये सब, हरषे बानर-जूथ॥
गहि गिरि पादप उपल नख, धाये, कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकल-तर, गढ़ पर चढ़े पराइ॥७४॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर—कन्दरा। करउँ अजय-मख अस मन धरा॥
इहाँ बिभीषन मन्त्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव-सतावन॥

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अङ्गदादि कपि नाना॥
लछिमन सङ्ग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥
मारेहु तेहि बल-बुद्धि-उपाई। जेहि छीजइ निसिचर सुनु भाई॥
जामवन्त सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहहु तीनिउ जन॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषङ्ग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥
जौं तेहि आजु बधे बिन आवउँ। तौ रघुपति सेवक न कहावउँ॥
जौं सत-सङ्कर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रन राम-दोहाई॥

दो०—रघुपति-चरन नाइ सिर, चलेउ तुरन्त अनन्त।
अङ्गद नील मयन्द नल, सङ्ग सुभट हनुमन्त॥७५॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लेइ त्रिसूल धावा कपि भागे। आये जहँ रामानुज आगे॥
आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा॥
कोपि मरुत-सुत अङ्गद धाये। हति त्रिसूल उर धरनि गिराये॥
प्रभु कहँ छाड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनन्त जुग खंडा॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोप तेहि घाव न बाजा॥
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥
देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अन्तरधाना॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥
एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा। लछिमन मन अस मन्त्र दृढ़ावा॥
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर सन्धान कीन्ह करि दापा॥
छाँड़ेउ बान माँझ उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा॥

दो०—रामानुज कहँ राम कहँ, अस कहि छाँड़ेसि प्रान।

धन्य धन्य तव जननी, कह अङ्गद हनुमान ॥७६॥

बिनु-प्रयास हनुमान उठायो। लङ्का-द्वार राखि तेहि आयो ॥
तासु मरन सुनि सुर गन्धर्बा। चढ़ि बिमान आये नभ सर्बा ॥
बरषि सुमन दुन्दुभी बजावहिँ। श्रीरघुबीर-बिमल-जस गावहिँ ॥
जय अनन्त जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निस्तारा ॥
अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाये। लछिमन कृपासिन्धु पहिँ आये ॥
सुत बध सुना दसानन जबहीँ। मुरछित भयउ परेउ महि तबहीँ ॥
मन्दोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़त बहु भाँति पुकारी ॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिँ दसकन्धर पोचा ॥

दो०—तब दसकंठ बिबिध बिधि, समुझाई सब नारि।
नस्वर-रूप जगत सब, देखहु हृदय बिचारि ॥ ७७ ॥

तिन्हहिँ ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मन्द कथा सुभ-पावन ॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिँ ते नर न घनेरे ॥
निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा ॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन-सनमुख जा कर मन डोला ॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई। सञ्जुग-बिमुख भये न भलाई ॥
निज-भुज-बल मैं बैर बढ़ावा। देइहउँ उतर जो रिपु चढ़ि आवा ॥
अस कहि मरुत-बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा ॥
चले बीर सब अतुलित—बली। जनु कज्जल कै आँधी चली ॥
असगुन अमित होहिँ तेहि काला। गनइ न भुज-बल गर्ब बिसाला ॥

हरिगीतिका-छन्द।

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन, स्रवहिँ आयुध हाथ तेँ।
भट गिरत रथ तेँ बाजि गज चिक्करत भाजहिँ साथ तेँ ॥
गोमायु-गीध-कराल-खर-रव, स्वान बोलहिँ अति घने ॥
जनु कालदूत उलूक बोलहिँ, बचन परम भयावने ॥७॥

दो०—ताहि कि सम्पति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
भूत-द्रोह-रत मोह बस, राम बिमुख रत काम ॥७८॥

चलेउ निसाचर कटक अपारा। चतुरङ्गिनी अनी बहु धारा ॥
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना ॥

चले मत्त-गज-जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥
अति बिचित्र बाहनी बिराजी। बीर बसन्त सेन जनु साजी॥
चलत कटक दिग सिन्धुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥
उठी रेनु रबि गयउ छपाई। पवन-थकित बसुधा-अकुलाई॥
पवन निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥
भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥
केहरिनाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेंगाई॥
यह सुधि सकल कपिन्हजब पाई। धाये करि रघुबीर दोहाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

धाये बिसाल कराल मरकट,-भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर, बृन्द नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध, सबल संक न मानहीं।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजस बखानहीं॥५॥

दो०—दुहुँ दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रघुपतिहि, उत रावनहिं बखानि॥७४॥

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा। बन्दि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल-बिबेक-दम-परहित घोरे। छमा-कृपा-समता रजु जोरे॥
ईस-भजन सारथी-सुजाना। बिरति चर्म सन्तोष-कृपाना॥
दान-परसु बुधि-सक्ति-प्रचंडा। बर-बिज्ञान-कठिन-कोदंडा॥
अमल अचल-मन त्रोन-समाना। सम-जम-नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धरम-मय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

दो०—महा अजय संसार-रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जा के अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर॥
सुनि प्रभु बचन बिभीषन, हरषि गहे पद-कञ्ज।
एहि बिधि मोहि उपदेसेहु, राम कृपा-सुख-पुञ्ज॥
उत पचार दसकन्धर, इत अङ्गद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन॥८०॥

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥
हमहूँ उमा रहे तेहि सङ्गा। देखत राम चरित रनरङ्गा॥
सुभट समर-रस दुहुँ दिसि माँते। कपि-जयसील राम बल ताँते॥
एक एक सन भिरहिँ पचारहिँ। एकन्ह एक मर्दि महि मारहिँ॥
मारहिँ काटहिँ धरहिँ पछारहिँ। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिँ॥
उदर बिदारहिँ भुजा उपारहिँ। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिँ॥
निसिचर-भट महि गाड़हिँ भालू। ऊपर ढारि देहिँ बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखियत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥

हरिगीतिका-छन्द।

क्रुद्धे कृतान्त समान कपि तनु, स्रवत सोनित राजहीँ।
मर्दहिँ निसाचर-कटक भट बलवन्त घन जिमि गाजहीँ॥
मारहिँ चपेटन्हि डाटि दाँतन्ह-काटि लातन्ह मीँजहीँ।
चिक्करहिँ मरकट-भालु छल-बल,-करहिँ जेहि खल छीजहीँ॥१॥
धरि गाल फारहिँ उर बिदारहिँ, गल अँतावरि मेलहीँ।
प्रहलाद-पति जनु बिबिध तनु धरि समर-अङ्गन खेलहीँ॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन-महि भरि रही।
जय राम जो तृन तेँ कुलिस कर,कुलिस तेँ कर तृन सही॥७॥

दो०—निज-दल बिचलत देखेसि, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप॥८१॥

धायेउ परम क्रुद्ध दसकन्धर। सनमुख चले हूह दै बन्दर॥
गहि कर पादप-उपल-पहारा। डारेन्हि ता पर एकहि बारा॥
लागहिँ सैल बज्र तनु तासू। खंड खंड होइ फूटहिँ आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग भयउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अङ्गद हनुमाना॥
पाहि पाहि रघुबीर गोसाँई। यह खल खाइ काल की नाँई॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक सन्धाने॥

हरिगीतिका-छन्द।

सन्धानि धनु सर निकर छाड़ेसि, उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी-गगन-दिसि,-बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति-कोलाहल बिकल कपि,-दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुनासिन्धु आरत,-बन्धु जन-रच्छक हरे॥८॥

दो०—निज-दल बिकल देखि कटि,-कसि निषङ्ग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, नाइ राम-पद-माथ॥८२॥

रे खल का मारेसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुत-घाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥
अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किये सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥
पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यन्दन भञ्जि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृङ्गन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥
सत सर पुनि मारा उर माहीं। परेउ अवनितल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाड़ेसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥

हरिगीतिका-छन्द।

सो ब्रह्म-दत्त प्रचंड सक्ति अनन्त उर लागी सही।
पर्यो बीर बिकल उठाव दसमुख, अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड-भुवन बिराज जाके, एक सिर जिमि रज-कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन, जान नहिँ त्रिभुवन-धनी॥९॥

दो०—देखि पवन-सुत धायेउ, बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हनेउ तेहि, मुष्टि-प्रहार प्रघोर॥८३॥

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरछा गइ बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥

धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जियत उठेसि सुरद्रोही॥
अस कहि लछिमन कहँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतान्त भच्छक सुर त्राता॥
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाये। रिपु सनमुख अति आतुर आये॥

हरिगीतिका-छन्द।

आतुर बहोरि बिभञ्जि स्यन्दन, सूत हति ब्याकुल कियो।
गिरयो धरनि दसकन्धर बिकल तर, बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि, तुरत लङ्का लेइ गयो।
रघुबीर बन्धु प्रताप-पुञ्ज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥१०॥

दो०—उहाँ दसानन जागि करि, करइ लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चहत, सठ हठ-बस अति-अग्य॥८४॥

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भये नहिं मरिहि अभागा॥
पठवहु देव बेगि भट बन्दर। करहिं बिधंस आव दसकन्धर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाये। हनुमदादि अङ्गद सब धाये॥
कौतुक कूदि चढ़े कपि लङ्का। पैठे रावन भवन असङ्का॥
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा॥
रन तें निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अङ्गद मारेउ लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥

हरिगीतिका-छन्द।

नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि, दसन्ह लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर, तेति दीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतान्त सम गहि, चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख, देखि मन महँ हारई॥११॥

दो०—जग्य बिधंसि कुसल कपि, आये रघुपति पास।
चलेउ लङ्कपति क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन कै आस॥८५॥

चलत होहिं अति असुभ भयङ्कर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयउ काल-बस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥

चली तमीचर अनी' अपारा। बहु गज-रथ—पदाति-असवारा॥
प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ-समूह अनल कहँ जैसे ॥७॥
इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन विपति हमहिँ एहि दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति वैदेही॥
देव वचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा-जूट दृढ़ बाँधे माथे। सोहहिँ सुमन बीच बिच गाथे॥
अरुन-नयन बारिद-तनु-स्यामा। अखिल-लोक लोचन-अभिरामा॥
कटि तट परिकर कसे निषङ्गा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥

हरिगीतिका-छन्द।

सारङ्ग कर सुन्दर निषङ्ग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन' मनोहरायत,-उर-धरासुर-पद-लस्यो॥
कह दासतुलसी जबहिँ प्रभु सर-चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि, सिन्धु भूधर डगमगे ॥१२॥

दो०—हरषे देव बिलोकि छवि, बरषहिँ सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुन-ज्ञान-बल,-धाम हरन महि भार ॥८८॥

एही बीच निसाचर-अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सनमुख कपि-भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन-घट्टा॥
बहु कृपान तरवारि चमङ्कहिँ। जनु दसदिसि दामिनी दमङ्कहिँ॥
गज-रथ-तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिँ मनहुँ बलाहक घोरा॥
कपि लङ्गूर बिपुल नभ छाये। मनहुँ इन्द्र धनु उये सुहाये॥
उठइ धूरि मानहुँ जल-धारा। बान-बुन्द भइ बृष्टि अपारा।
दुहुँ दिसि पर्वत करहिँ प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिँ बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भे निसिचर समुदाई॥
लागत बान बीर चिक्करहीँ। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीँ॥
स्रवहिँ सैल जनु निर्झर बारी। सोनित-सरि कादर भयकारी॥

हरिगीतिका-छन्द।

कादर भयङ्कर रुधिर सरिता, चली परम-अपावनी।
दोउ कूल-दल रथ रेत चक्र, अवर्त बहति भयावनी॥
जलजन्तु गज-पदचर-तुरग-खर, विविध बाहन को गनै।

सर-सक्ति-तोमर-सर्प चाप-तरंग चर्म-कमठ घने ॥१३॥

दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु, मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डराहिं तेहिं, सुभटन्ह के मन चेन ॥८७॥

मज्जहिं भूत-पिसाच-बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥
काक कङ्क लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लेइ खाहीं ॥
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥
कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ॥
खैंचहिं गीध आँत तट भये। जनु बनसी खेलहिं चित दये ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ॥
जोगिनिभरि भरिखप्परसञ्चहिं। भूत-पिसाच-बधू नभ नञ्चहिं ॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं ॥
जम्बुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुण्ड मुंड बिनु डोलहिं। सीस परे महि जय जय बोलहिं ॥

हरिगीतिका-छन्द

बोलहिं जो जय जय मुंड रुण्ड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं, सुभट भटन्ह ढहावहीं।
निसिचर बरूथ बिमर्दि गर्जहिं, भालु कपि दर्पित भये।
संग्राम-अङ्गन सुभट सोवहिं, राम-सर निकरन्हि हये ॥१४॥

दो०—रावन हृदय बिचारा, भा निसिचर संहार।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करउँ अपार ॥८८॥

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज-रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लेइ आवा ॥
तेज-पुञ्ज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर-भूपा ॥
चञ्चल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी ॥
रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाये कपि बल पाइ बिसेखी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी ॥
सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसल धनी ॥

हरिगीतिका—छन्द ।

छन्द—हहु राम लछिमन देखि मर्कट, भालु मन अति अपडरे ।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन, जहँ सो तहँ चितवहिं खरे ॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर,-चाप तजि कोसलधनी ।
माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल मरकट अनी ॥१५॥

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गँभीर ।
द्वन्द-जुद्ध देखहु सकल, स्रमित भये अति बीर ॥८९॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा । बिप्र-चरन-पङ्कज सिर नावा ॥
तब लङ्केस क्रोध उर छावा । गर्जत तर्जत सनमुख धावा ॥
जीतेहु जे भट संजुग माहीं । सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं ॥
रावन नाम जगत जस जाना । लोकप जा के बन्दीखाना ॥
खर-दूषन-कबन्ध तुम्ह मारा । बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा ॥
निसिचर-निकर सुभट संहारेहु । कुम्भकरन घननादहि मारेहु ॥
आजु बयर सब लेउँ निबाही । जौ रन भूप भाजि नहिँ जाही ॥
आजु करउँ खलु काल-हवाले । परेहु कठिन रावन के पाले ॥
सुनि दुर्बचन काल-बस जाना । बिहँसि बचन कह कृपानिधाना ॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई । जलपसि जनि देखाउ मनुसाई ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

जनि जलपना करि सुजस नासहि, नीति सुनहि करहि छमा ।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा ॥
एक-सुमन-प्रद एक-सुमन-फल एक फलइ केवल लागहीं ।
एक कहहिँ-कहहिँ-करहिँ अपर एक करहिँ कहत न बागहीं ॥१६॥

दो०—राम बचन सुनि बिहँसा, मोहि सिखावत ज्ञान ॥
बयर करत नहिँ तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान ॥।९०॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकन्धर । कुलिस समान लाग छाँड़इ सर ॥
नानाकार सिली मुख धाये । दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये
पावक-सर छाड़ेउ रघुबीरा । छन महँ जरे निसाचर तीरा ॥
छाड़ेसि तीब्र शक्ति खिसियाई । बान सङ्ग प्रभु फेरि पठाई ॥
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ । बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ ॥
निफल होहिँ रावन सर कैसे । खल के सकल मनोरथ जैसे ॥

पुनि सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥

हरिगीतिका-छन्द।

भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति, त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड-धुनि अति-चंड सुनि मनुजाद भय-मारुत ग्रसे॥
मन्दोदरी-उर-कम्प कम्पति,-कमठ-भू-भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि, देखि कौतुक सुर हँसे॥१७॥

दो०—तानेउ चाप स्रवन लगि, छाड़े विसिख कराल।
राम-मारगन गन-चले, लहलहात जनु ब्याल॥९१॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ विभञ्जि हति केतु पताका। गरजा अति अन्तर बल थाका॥
तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना॥
विफल होहिं सब उद्यम ता के। जिमि पर-द्रोह-निरत-मनसा के॥
तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक॥
रावन सिर-सरोज-बन-चारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिर पनारे॥
स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर सन्धाना।
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे॥
काटतही पुनि भये नवीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
कटत झटित पुनि नूतन भये। प्रभु बहु बार बाहु सिर हये॥
पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥

हरिगीतिका-छन्द।

जनु राहु केतु अनेक नभ पथ, स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं, भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे, नभ उडत इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर-कर-निकर जहँ,-तहँ विधुन्तुद पोहहीं॥१८॥

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि, नित नित नूतन मार॥९२॥

दस मुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥
गर्जेउ मूढ़ महा-अभिमानी। धायउ दसउ सरासन तानी॥
समर-भूमि दसकन्धर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥
दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महँ दिनकर दुरेऊ॥
हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥
काटे सिर नभ-मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥
कहँ लछिमन हनुमन्त कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥

हरिगीतिका-छन्द।

कहँ राम कहि सिर निकर धाये, देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंस-मनि हँसि, सरन्ह सिर बेधे भले॥
सिर मालिका कर कालिका गहि, वृन्द वृन्दन्हि बहु मिली।
करि रुधिर सरि मज्जन मनहुँ संग्राम-बट पूजन चली॥१९॥

दो०—पुनि दशकंठ क्रुद्ध होइ छाड़ी शक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सनमुख, मनहुँ काल कर दंड॥९२॥

आवत देखि सक्ति सर धारा। प्रनतारति हर बिरद सँभारा॥
तुरत बिभीषन पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला॥
लागि सक्ति मुरछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषन प्रभु स्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥
रे कुभाग्य सठ मन्द कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहँ सीस चढ़ाये। एक एक के कोटिन्ह पाये॥
तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस पर नाच्यो॥
राम-बिमुख सठ चहसि सम्पदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा॥

हरिगीतिका-छन्द।

उर माँझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्यो।
दस-बदन-सोनित-स्रवत पुनि सम्भारि धायो रिस भर्यो॥
दोउ भिरे अतिबल मल्ल-जुद्ध बिरुद्ध एक एकहि हनै।
रघुबीर-बल दर्पित बिभीषन, घालि नहिं ता कहँ गनै॥२०॥

सो०—उमा बिभीषन रावनहिं, सनमुख चितव कि काउ।

सो अब भिरत काल ज्यों, श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥९४॥

देखा श्रमित बिभीषन भारी। धायउ हनूमान गिरि-धारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता॥
ठाढ़ रहा अति-कम्पित गाता। गयउ बिभीषन जहँ जन-त्राता॥
पुनि रावन तेहि हनेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥
गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एक हनत करि क्रोधा॥
सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसिचर परइ न पारेउ। तब मारुत-सुत प्रभु सम्भारेउ॥

हरिगीतिका-छन्द।

सम्भारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावन हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहँ जय जय भन्यो॥
हनुमन्त सङ्कट देखि मर्कट-भालु क्रोधातुर चले।
रन-मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज-बल दलमले॥२१॥

दो०—तब रघुबीर पचारे, धाये कीस प्रचंड।
कपि-बल प्रबल देखि तेहि, कीन्ह प्रगट पाखंड॥९५॥

अन्तर्धान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥
देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा॥
दह-दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥
सब सुर जिते एक दसकन्धर। अब बहु भये तकहु गिरि कन्दर॥
रहे बिरञ्चि सम्भु मुनि ज्ञानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥

हरिगीतिका-छन्द।

जाना प्रताप ते रहे निर्भय, कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट-भालु सकल, कृपाल पाहि भयातुरे॥
हनुमन्त अङ्गद नील नल अति-बल लरत रनबाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह, कपट-भू भट-अङ्कुरे॥२२॥

दो०—सुर बानर देखे बिकल, हँसे कोसलाधीस।
सजि सारङ्ग एक सर, हते सकल दससीस ॥९६॥

प्रभु छन महँ माया सब काटी। जिमि रबि उये जाहिं तम फाटी॥
रावन एक देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे॥
भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाये। तरल तमकि संजुग-महि आये॥
अस्तुति करत देवतन्हि देखे। भयउँ एक मैं इन्ह के लेखे॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोप गगन पथ धायल॥
हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे॥
देखि बिकल सुर अङ्गद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥

हरिगीतिका छन्द।

गहि भूमि पारयो लात मारयो, बालि-सुत प्रभु पहिँ गयो।
सम्भारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस सन्धानि सर बहु बरषई।
किय सकल भट घायल भयाकुल, देखि निज बल हरषई॥२३॥

दो०—तब रघुपति रावन के, सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि, जिमि तीरथ कर पाप॥९७॥

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ़ कटेहु भुज सीसा। धाये कोपि भालु भट कीसा॥
बालि-तनय मारुति नल नीला। द्विबिद कपीस पनस बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥
एक नखन्ह रिपु-बपुष-बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी॥
तब नल नील सिरन्ह चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥
रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी। तिन्हहिँ धरन कहँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिँ करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल-बन चरहीं॥
कोपि कूदि दोउ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्ह मारि घायल कपि कीन्हे॥
हनुमदादि मुरछित करि बन्दर। पाइ प्रदोष हरष दसकन्धर॥
मुरछित देखि सकल कपि बीरा। जामवन्त धायउ रनधीरा॥

सठ भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥
भयउ क्रोध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना॥
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माँझ उर मारेसि लाता॥

हरिगीतिका-छन्द।

उर लात घात प्रचंड लागत, बिकल रथ तेँ महि परा।
गहि भालु बीसहु कर मनहुँ कमलन्ह बसे निसि मधुकरा॥
मुरछित बिलोकि बहोरि पद हति, भालुपति प्रभु पहिँ गयो।
निसि जानि स्यन्दन घालि तेहि तब, सूत जतन करत भयो॥२४॥

दो०—मुरछा बिगत भालु कपि सब, आये प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहिँ, घेरि रहे अति-त्रास॥९८॥

तेही निसि सीता पहिँ आई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥
मुख मलीन उपजी मन चिन्ता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि काह कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व-दुख-दाता॥
रघुपति-सर सिर कटेहु न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहि हौं हरि-पद-कमल बिछोही॥
जेहि कृत कपट कनक-मृग-झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
जेहि बिधि मोहि दुख दुसह सहाये। लछिमन कहँ कटु-बचन कहाये॥
रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥
ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना। सोइ बिधि तेहि जिआवन आना॥
बहुबिधि करति बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥
प्रभु ता तेँ उर हतहिँ न तेही। यहि के हृदय बसति बैदेही॥

हरिगीतिका-छन्द।

यहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत, बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति, देखि पुनि त्रिजटा कहा॥
अब मरिहि रिपु यहि बिधि सुनहि सुन्दरि तजहि संसय महा॥२५॥

दो०—काटत सिर होइहि बिकल, छुटि जाइहि तव ध्यान।

तब रावण कहँ हृदय महँ, मरिहहिँ राम-सुजान ॥९९॥

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥
निसिहि ससिहि निन्दति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिँ मन भारी। राम-बिरह जानकी दुखारी॥
जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिँ कृपाल रघुबीरा॥
इहाँ अर्धनिसि रावन जागा। निज सारथि सन खीझन लागा॥
सठ रन-भूमि छुड़ायेसि मोही। धिग धिग अधम मन्द मति तोही॥
तेहि पद-गहि बहु बिधि समुझावा। भोर भये रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगमन दसानन केरा। कपि-दल खरभर भयउ घनेरा॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाये कटकटाइ भट भारी॥

हरिगीतिका-छन्द।

धाये जो मर्कट बिकट भालु, कराल कर भूधर धरा।
अति-कोपि करहिँ प्रहार मारुत, भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवन्त कीसन्ह, घेरि पुनि रावन लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु ब्याकुल कियो॥२६॥

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल, रावन कीन्ह बिचार।
अन्तरहित होइ निमिष महँ, छल माया बिस्तार॥१००॥

तोमर-छन्द।

जब कीन्ह तेहि पाखंड। भये प्रगट जन्तु प्रचंड।
बेताल भूत पिसाच। कर धरे धनु नाराच॥
जोगिनि गहे करवाल। एक हाथ मनुज-कपाल॥
करि सद्य सो नित पान। नाचहिँ करहिँ बहु गान॥
धरु मारु बोलहिँ घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर।
मुख बाइ धावहिँ खान। तब लगे कीस परान॥
जहँ जाहिँ मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिँ आगि।
भये बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषइ बालु॥
जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस।

लछिमन कपीस समेत । भये सकल बीर अचेत ॥
प्रगटेसि बिपुल हनुमान । धाये गहे पाषान ।
तिन्ह राम घेरे जाइ । चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ॥
मारहु धरहु जनि जाइ । कटकटहिँ पूँछ उठाइ ।
दस-दिसि लँगूर बिराज । तेहि मध्य कोसलराज ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

तेहि मध्य कोसलराज सुन्दर, स्याम तनु सोभा लही ।
जनु इन्द्रधनुष अनेक की बर,—बारि तुङ्ग तमालही ॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर, बदत जय जय जय करी ।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महँ माया हरी ॥२७॥
माया बिगत कपि भालु हरषे, बिटप गिरि गहि सब फिरे ।
सर निकर छाँड़े राम रावन,-बाहु-सिर पुनि महि गिरे ॥
श्रीराम रावन समर-चरित अनेक कलप जो गावहीं ।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ, तदपि पार न पावहीं ॥२८॥

दो०—ता के गुन गन कछु कहे, जड़-मति तुलसीदास ।
निज-पौरुष-अनुसार जिमि, माछी उड़इ अकास ॥
काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लङ्केस ।
प्रभु क्रीडत सुर सिद्ध मुनि, ब्याकुल देखि कलेस ॥१०१॥

काटत बढ़हिँ सीस समुदाई । जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥
मरइ न रिपु स्रम भयउ बिसेखा । राम बिभीषन तन तब देखा ॥
उमा काल मरु जा की ईछा । सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा ॥
सुनु सर्बज्ञ चराचर-नायक । प्रनतपाल सुर-मुनि-सुख दायक ॥
नाभिकुंड पियूष बस या के । नाथ जियत रावन बल ता के ॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ॥
असुभ होन लागे तब नाना । रोवहिँ बहु सृगाल-खर-स्वाना ॥
बोलहिँ खग जग-आरति-हेतू । प्रगट भये नभ जहँ तहँ केतू ॥
दस-दिसि दाह होन अति लागा । भयउ परब बिनु रबि उपरागा ॥
मन्दोदरि उर कम्पति भारी । प्रतिमा स्रवहिँ नयन-मग-बारी ॥

हरिगीतिका-छन्द।

प्रतिमा रुदहिँ पवि पात नभ अति,-बात बहु डोलति मही।
बरषहिँ बलाहक रुधिर कच रज, असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर, बिकल बोलहिँ जय जये।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति, चाप सर जोरत भये ॥२९॥

दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक-सायक चले, मानहुँ काल फनीस ॥१०२॥

सायक एक नाभि सर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर-भुज हीन रुंड महि नाचा॥
धरनि धँसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतउँ पचारी॥
डोली भूमि गिरत दसकन्धर। छुभित सिन्धु सरि दिग्गज भूधर॥
धरनि परेउ दोउ खंड बढ़ाई। चापि भालु-मर्कट-समुदाई॥
मन्दोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रबिसे सब निषङ्ग महँ जाई। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई॥
तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि सम्भु चतुरानन॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल-भुजदंडा॥
बरषहिं सुमन देव-मुनि-बृन्दा। जय कृपाल जय जयति मुकुन्दा॥

हरिगीतिका-छन्द।

जय कृपा-कन्द मुकुन्द द्वन्द-हरन सरन-सुख-प्रद प्रभो।
खल-दल-बिदारन परम कारन, कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरषहिं हरष सङ्कुल, बाज दुन्दुभि गहगही।
सङ्ग्राम-अङ्गन राम अङ्ग अनङ्ग बहु सोभा लही ॥३०॥
सिर जटा-मुकुट प्रसून बिच बिच, अति मनोहर राजहीं॥
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत, रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

दो०—कृपा दृष्टि करि बृष्टि प्रभु, अभय किये सुरबृन्द।
भालु कीस सब हरषे, जय सुखधाम मुकुन्द ॥१०३॥

पति सिर देखत मन्दोदरी। मुरछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुवतिवृन्द रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिँ आईं॥
पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिँ बपुष सँभारा॥
उर ताड़ना करहिँ बिधि नाना। रोवत करहिँ प्रताप बखाना॥
तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिँ न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥
बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं॥
जगत विदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥
राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥
तव बस बिधि प्रपञ्च सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिँ माथा॥
अब तव सिर भुज जम्बुक खाहीं। राम विमुख यह अनुचित नाहीं॥
काल बिबस पति कहा न माना। अग-जग-नाथ मनुज करि जाना॥

हरिगीतिका-छन्द।

जानेउ मनुज करि दनुज-कानन, दहन-पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय, भजेहु नहिँ करुनामयं॥
आजन्म तेँ परद्रोह-रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

दो०—अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिन्धु नहिँ आन।
जोगि-वृन्द दुर्लभ गति, तोहि दीन्हि भगवान॥१०४॥

मन्दोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथ-बादी॥
भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम-मगन सब भये सुखारी॥
रुदन करत देखी सब नारी। गयेउ बिभीषन मन दुख भारी॥
बन्धु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहि आयो॥
कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु माना। बिधिवत देस काल जिय जानी॥

दो०—मन्दोदरी आदि सब, देहिँ तिलाञ्जलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन,-गन बरनत मन माहिँ ॥१०५॥
आइ बिभीषन पुनि सिर नायो। कृपासिन्धु तब अनुज बोलायो॥
तुम्ह कपीस अङ्गद नल नीला। जामवन्त मारुति नयसीला॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेहु रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवहुँ। आपु सरिस कपि अनुज पठवहुँ॥
तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक के रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥
जोरि पानि सबही सिर नाये। सहित बिभीषन प्रभु पहिँ आये॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥

हरिगीतिका-छन्द।

किय सुखी कहि बानी सुधा सम, बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर, जस तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ-कीरति तुम्हारी, परम-प्रीति जे गाइहैं।
संसार-सिन्धु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥१३॥

दो०—प्रभु के बचन स्रवन सुनि, नहिं अघाहिँ कपि-पुञ्ज।
बार बार सिर नावहिँ, गहहिँ सकल पद-कञ्ज॥१०६॥
पुनि प्रभु बोलि लिये हनुमाना। लङ्का जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लेइ तुम्ह चलि आवहु॥
तब हनुमन्त नगर महँ आये। सुनि निसिचरी निसाचर धाये॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनक-सुता दिखाइ पुनि दीन्ही॥
दूरिहि तें प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति-दूत जानकी चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपा-निकेता। कुसल अनुज-कपि-सेन-समेता॥
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीतेउ दससीसा॥
अबिचल राज बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥

हरिगीतिका-छन्द।

अति-हरष-मन तन-पुलक लोचन,-सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ ताहि त्रैलोक महँ कपि, किमपि नाहिँ बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायउँ अखिल-जग,-राज आजु न संसयं।

रन जीति रिपु दल-बन्धु-जुत-पस्यामि राममनामयं ॥३४॥

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव, हृदय बसहु हनुमन्त।
सानुकूल कोसलपति, रहहु समेत अनन्त ॥१०७॥

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखउँ नयन स्याम मृदुगाता॥
तब हनुमान राम पहिँ जाई। जनक-सुता कै कुसल सुनाई॥
सुनि संदेस भानुकुल-भूषन। बोलि लिये जुबराज बिभीषन॥
मारुत-सुत के सङ्ग सिधावहु। सादर जनक-सुतहि लेइ आवहु॥
तुरतहि सकल गये जहँ सीता। सेवहिँ सब निसिचरी बिनीता॥
देखि बिभीषन तिन्हहिँ सिखावा। सादर तिन्ह सीतहिँ अन्हवावा॥
बहु प्रकार भूषन पहिराये। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याये॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम-सुखधाम सनेही॥
बेतपानि-रच्छक चहुँ पासा। चले सकल मन परम-हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आये। रच्छक कोपि निवारन धाये॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादे आनहु॥
देखहिँ कपि जननी की नाईं। बिहँसि कहा रघुनाथ गोसाँई॥
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ तेँ सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अन्तर-साखी॥

दो०—तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब, लागी करन बिषाद ॥१०८॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन-क्रम-बचन-पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥
सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह-बिबेक-धरम-नति-सानी॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥
देखि राम रुख लछिमन धाये। पावक प्रगटि काठ बहु लाये॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष कछु भय नहिँ तेही॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहँ होउ स्रीखंड समाना॥

हरिगीतिका-छन्द।

स्रीखंड-सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस-बन्दित-चरन रति अति-निर्मली॥

अति बिस्व अरु लौकिक कलङ्क प्रचंड पावक महँ जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे सुर नभ, सिद्ध मुनि देखहिँ खरे॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्री, सत्य स्तुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इन्दिरा रामहिँ समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम-बिभाग राजति, रुचिर अति सोभा भली।
नव-नील-नीरज निकट मानहुँ, कनक-पङ्कज की कली॥३६॥

दो०—बरषहिँ सुमन हरषि सुर, बाजहिँ गगन निसान।
गावहिँ किन्नर सुर-बधू, नाचहिँ चढ़ी बिमान॥
जनक-सुता समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुख-सार॥१०९॥

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिर नाई॥
आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिँ जनु परमारथी॥
दीन बन्धु दयाल रघुराया। देव कीन्ह देवन्ह पर दाया॥
बिस्व-द्रोह-रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारग-गामी॥
तुम्ह सम रूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघ-सक्ति करुनामय॥
मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहिँ नसायो॥
रावन पाप-मूल सुर-द्रोही। काम-लोभ-मद-रत अति-कोही॥
सोउ कृपाल तव धाम सिधावा। यह हमारे मन बिसमय आवा॥
हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ-रत तव भगति बिसारी॥
भव-प्रवाह सन्तत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥

दो०—करि बिनती सुर सिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि, अस्तुति करत बहोरि॥११०॥

तोटक-छन्द।

जय राम सदा सुख-धाम हरे। रघुनायक सायक-चाप-धरे॥
भव-बारन-दारन सिंह प्रभो। गुन-सागर नागर नाथ बिभो॥
तनु काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनीन्द्र कबी॥
जस पावन रावन नागमहा। खगनाथ जथा करि कोप गहा॥

जन-रञ्जन भञ्जन-शोक-भयं। गत क्रोध सदा प्रभु बोध-मयं॥
अवतार उदार अपार गुनं। महि-भार-विभञ्जन ज्ञान घनं॥
अज व्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबंस—विभूषन दूषनहा। कृत भूप विभीषन दीन रहा॥
गुन ज्ञान-निधान अमान अजं। नित राम नमामि विभुं विरजं॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खलवृन्द-निकन्द महा-कुसलं॥
बिनु कारन दीन दयाल हितं। छवि-धाम नमामि रमा-सहितं॥
भव-तारन-कारन काज-परं। मन-सम्भव दारुन-दोष-हरं॥
सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन-लोचन भूप बरं॥
सुख-मन्दिर सुन्दर श्रीरमनं। मद मार मुधा-ममता-समनं॥
अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो॥
इति बेद बदन्ति न दन्तकथा। रवि आतप भिन्नमभिन्न जथा॥
कृतकृत्य विभो सब बानर ये। निरखन्ति तवानन सादर जे॥
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥
अब दीनदयाल दया करिये। मति मोरि विभेदकरी हरिये॥
जेहि तेँ विपरीत क्रिया करिये। दुख सो सुख मानि सुखी चरिये॥
खल-खंडन मंडन-रम्य-छमा। पद-पङ्कज सेवित सम्भु उमा॥
नृप-नायक दे बरदानमिदं। चरनाम्बुज प्रेम सदा सुभदं॥
दो०—बिनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम पुलकि अति गात।
सोभा-सिन्धु विलोकत, लोचन नहीं अघात॥ १११॥
तेहि अवसर दसरथ तहँ आये। तनय बिलोकि नयन जल छाये॥
अनुज सहित प्रभु बन्दन कीन्हा। आसिरबाद पिता तब दीन्हा॥
तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीतेउँ अजय निसाचर-राऊ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना॥
ता तेँ उमा मोच्छ नहिं पाये। दसरथ भेद-भगति मन लाये॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहँ राम भगति निज देहीं॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गये सुरधामा॥
दो०—अनुज-जानकी-सहित प्रभु, कुसल कोसलाधीस।

सोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर-ईस ॥११२॥

तोमर-छन्द ।

जय राम सोभा-धाम । दायक प्रनत बिस्राम ।
धृत त्रोन बर सर चाप । भुजदंड प्रबल प्रताप ॥
जय दूषनारि खरारि । मर्दन-निसाचर-धारि ॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ । भये देव सकल सनाथ ॥
जय हरन धरनी भार । महिमा उदार अपार ।
जय रावनारि कृपाल । किय जातुधान बिहाल ॥
लङ्केस अति बल गर्ब । किय बस्य सुर गन्धर्ब ।
मुनि सिद्धि खग नर नाग । हठि पन्थ सब के लाग ॥
पर-द्रोह-रत अति दुष्ट । पायो सो फल पापिष्ट ।
अब सुनहु दीनदयाल । राजीव-नयन-बिसाल ॥
मोहि रहा अति अभिमान । नहिँ कोउ मोहि समान ।
अब देखि प्रभु-पद-कञ्ज । गत मान-प्रद-दुख-पुञ्ज ॥
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि स्रुति गाव ।
मोहि भाव कोसलभूप । श्रीराम सगुन सरूप ॥
बैदेहि अनुज समेत । मम हृदय करहु निकेत ।
मोहि जानिये निजदास । दे भक्ति रमा-निवास ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

दे भक्ति रमनिवास त्रास-हरन सरन-सुख-दायकं ।
सुख-धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं ॥
सुर-बृन्द-रञ्जन द्वन्द-भञ्जन, मनुज तनु अतुलित बलं ।
ब्रह्मादि सङ्कर सेव्य राम नमामि करुना-कोमलं ॥

दो०—अब करि कृपाबिलोकि मोहि, आयसु देहु कृपाल ।
काह करउँ सुनि प्रिय बचन, बोले दीनदयाल ॥११३॥

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे ॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना । सकल जियाउ सुरेस सुजाना ॥
सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी । अति अगाध जानहिँ मुनि-ज्ञानी ॥
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई । केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई ॥

सुधा बरषि कपि भालु जिआये। हरषि उठे सब प्रभु पहिँ आये॥
सुधा-वृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर। जिये भालु-कपि नहिँ रजनीचर॥
रामाकार भये तिन्ह के मन। मुक्त भये छूटे भव-बन्धन॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिये सकल रघुपति की ईछा॥
राम सरिस को दीन-हितकारी। कीन्हे मुक्त निसाचर-झारी॥
खल मल-धाम काम-रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न॥

दो०—सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम पहिँ, आये सम्भु सुजान॥
परम-प्रीति-कर जोरि जुग, नलिन-नयन भरि बारि।
पुलकित-तनु गदगद-गिरा, बिनय करत त्रिपुरारि॥११४॥

डल्ला-छन्द

मामभिरक्षय रघुकुल-नायक। धृत-बर-चाप रुचिर कर सायक॥
मोह-महा-घन-पटल प्रभञ्जन। संसय-बिपिन-अनल-सुर-रञ्जन॥
सगुन अगुन गुन-मन्दिर सुन्दर। भ्रम-तम-प्रबल-प्रताप-दिवाकर॥
काम-क्रोध-मद-गज पञ्चानन। बसहु निरन्तर जन-मन-कानन॥
बिषय-मनोरथ-पुञ्ज कञ्ज-बन। प्रबल-तुषार उदार पार-मन॥
भव बारिधि-मन्दर-पर मन्दर। बारय तारय संसृति दुस्तर॥
स्याम-गात राजीव-बिलोचन। दीन बन्धु प्रनतारति-मोचन॥
अनुज जानकी सहित निरन्तर। बसहु राम-नृप मम उर अन्तर॥
मुनि-रञ्जन महिमंडल-मंडन। तुलसिदास-प्रभु त्रास-बिखंडन॥

दो०—नाथ जबहिँ कोसलपुरी, होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिन्धु मैं आउब, देखन चरित उदार॥११५॥

करि बिनती जब सम्भु सिधाये। तब प्रभु निकट बिभीषन आये॥
नाइ चरन सिर कह मृदु-बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँग-पानी॥
सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन-जस त्रिभुवन-बिस्तार्‌यो॥
दीन मलीन हीन-मति-जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥
अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। मज्जन करिय समर-स्रम छीजै॥
देखि कोस मन्दिर सम्पदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहँ मुदा॥
सब बिधि, नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय॥

सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भये दोउ नयन बिसाला॥

दो०—तोर कोस-गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि, निमिष कल्प सम जात॥
तापस बेष गात कृस, जपत निरन्तर मोहि।
देखउँ बेगि सो जतन करु, सखा निहोरउँ तोहि॥
बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर॥
करेहु कल्प भरि राज तुम्ह, मोहि सुमिरेहु मन माहिँ।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ सन्त सब जाहिँ॥११६॥

सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपा-धाम के॥
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु-पद गुन बिमल बखाने॥
बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। मनि-गन-बसन बिमान भरायो॥
लेइ पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसि करि कृपासिन्धु अस भाखा॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट-भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीँ। बरषि दिये मनि अम्बर सबहीँ॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीँ। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीँ॥
हँसे राम श्री-अनुज-समेता। परम-कौतुकी कृपा-निकेता॥

दो०—मुनि जेहि ध्यान न पावहिँ, नेति नेति कह बेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक बिनोद॥
उमा जोग जप दान तप, नाना ब्रत मख नेम।
राम-कृपा नहिँ करहिँ तसि, जसि निष्केवल प्रेम॥११७॥

भालु कपिन्ह पट भूषन पाये। पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये॥
नाना जिनिस देखि प्रभु कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा॥
चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरे बल मैं रावन मारा। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सारा॥
निज निज-गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपेहु जनि काहू॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहिँ सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किये सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि राम रुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहिँ गृह कै ईछा॥
दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, राम-रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले, बिनय बिबिध बिधि भाखि।
कपिपति नील रीछपति, अङ्गद नल हनुमान॥
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिँ कछु प्रेम-बस, भरि भरि लोचन बारि।
सनमुख चितवहिँ राम तन, नयन निमेष निवारि॥११८॥
अतिसय प्रीति-देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महँ बिप्र-चरन सिर नावा। उत्तर दिसिहि बिमान चलावा॥
चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सब कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत बैठे प्रभु ता पर॥
राजत राम सहित भामिनी। मेरु-सृङ्ग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन-बृष्टि हरषे सुर॥
परम-सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिँ सुन्दर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥
कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हतेउ इँद्रजीता॥
हनूमान अङ्गद के मारे। रन-महि परे निसाचर भारे॥
कुम्भकरन रावन दोउ भाई। इहाँ हने सुर-मुनि-सुखदाई॥
दो०—इहाँ सेतु बाँधेउँ अरु, थापेउँ सिव सुख-धाम।
सीता सहित कृपानिधि, सम्भुहि कीन्ह प्रनाम॥
जहँ जहँ करुनासिन्धु बन, कीन्ह बास बिस्राम।
सकल देखाये जानकिहि, कहे सबन्हि के नाम॥११९॥
तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडकबन जहँ परम-सुहावा॥
कुम्भजादि मुनि-नायक नाना। गये राम सब के असथाना॥
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आयउ जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर सन्तोषा। चला बिमान तहाँ ते चोखा॥
बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलिमल-हरनि सुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जनम-कोटि-अघ भागा॥
देखु परम-पावनि पुनि बेनी। हरनि-सोक हरिलोक-निसेनी॥
पुनि लखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध-ताप भव-रोगनसावनि॥

दो०—सीता सहित अवध कहँ, कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल-नयन तन पुलकित, पुनि पुनि हरषित राम॥
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी, हरषित मज्जन कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहँ, दान बिबिध बिधि दीन्ह॥१२०॥

प्रभु हनुमन्तहि कहा बुझाई। धरि बटु-रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनायहु। समाचार लेइ तुम्ह चलि आयहु॥
तुरत पवन-सुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहँ गयऊ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥
मुनि-पद बन्दि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु आये। नाव नाव कहँ लोग बोलाये॥
सुरसरि नाँघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरननि परी।
दीन्हि असीस हरषि मन गङ्गा। सुन्दरि तव अहिवात अभङ्गा॥
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम-सुख सङ्कुल॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिँ तेही
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

लियो हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राय रमापती।
बैठारि परम-समीप बूझी, कुशल सो कर बीनती॥
अब कुशल पद पङ्कज बिलोकि बिरञ्चि-सङ्कर सेव्य जे।
सुख-धाम पूरन-काम राम नमामि राम नमामि ते॥३८॥
सब भाँति अधम निषाद सो हरि, भरत ज्यों उर लाइयो।
मति-मन्द तुलसीदास सो प्रभु, मोह-बस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम-पद रति-प्रद सदा।
कामादि-हर बिज्ञान-कर सुर,—सिद्ध मुनि गावहिँ मुदा॥३९॥

दो०—समर बिजय रघुबीर के, चरित जे सुनहिँ सुजान।
बिजय-बिबेक-बिभूति-नित, तिन्हहिँ देहिँ भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ-नाम तजि, नाहिँ न आन अधार॥१२१॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलि कलुष बिध्वंसने
विशुद्ध सन्तोष सम्पादनो नाम षष्ठः सोपानः समाप्तः

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

# रामचरितमानस

## सप्तम-सोपान

## उत्तरकाण्ड

स्रग्धरा-वृत्त।

केकीकण्ठाभनीलं सुरवर विलसद्विप्रपादाब्जचिन्हं।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्॥
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम॥

रथोद्धता-वृत्त।

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥
कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमिशङ्करमनङ्गमोचनम्॥३॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुरलोग।
जहँ तहँ सोचहिँ नारि नर, कृस-तन राम वियोग॥
सगुन होहिँ सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनन्द अस होइ।
आयउ प्रभु सिय अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ॥
भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिँ बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन बिचार॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

कारन कवन नाथ नहिँ आये। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराये
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम-पदारबिन्द अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता तेँ नाथ सङ्ग नहिँ लीन्हा॥
जौँ करनी समुझहिँ प्रभु मोरी। नहिँ निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिँ राम सगुन सुभ होई॥
बीते अवधि रहहि जौँ प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

दो०—राम-बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन-सुत, आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन, जटा-मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात॥'॥

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी॥
जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल-तिलक सुजन सुख दाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावन्त जिमि पाइ पियूषा॥
को तुम्ह तात कहाँ ते आये। मोहि परम प्रिय बचन सुनाये॥
मारुत-सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबन्धु रघुपति कर किङ्कर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥
मिलत प्रेम नहिँ हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहँ देउँ काह सुनु भ्राता॥
एहि सन्देस सरिस जग माहीँ। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीँ॥
नाहिँ न तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥
तब हनुमन्त नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाँई। सुमिरहिँ मोहि दास की नाँई॥

हरिगीतिका-छन्द।

निज दास ज्योँ रघुबंस भूषन, कबहुँ मम सुमिरन करयो।

सुनि भरत बचन विनीत अति कपि, पुलकि तन चरनन्हि परयो ।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन, कहत अग जग नाथ जो ॥
काहे न होइ विनीत परम पुनीत सदगुन सिन्धु सो ॥ १ ॥

दो०—राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात ॥

सो०—भरत चरन सिर नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिँ ।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥

हरषि भरत कोसलपुर आये । समाचार सब गुरहि सुनाये ॥
पुनि मन्दिर महँ बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई ॥
सुनत सकल जननी उठि धाईं । कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाये । नर अरु नारि हरषि सब धाये ॥
दधि दुर्बा रोचन फल फूला । नव तुलसीदल मङ्गल-मूला ॥
भरि भरि हेमथार भामिनी । गावत चलीं सिन्धुर-गामिनी ॥
जो जैसेहि तैसेहि उठि धावहिं । बाल वृद्ध कहँ सङ्ग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई । तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भई सकल सोभा कइ खानी ॥
भइ सरजू अति निर्मल नीरा । बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा ॥

दो०—हरषित गुरु परिजन अनुज, भूसुर-वृन्द समेत ।
चले भरत अति प्रेम मन, सनमुख कृपानिकेत ॥
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह, निरखहिँ गगन बिमान ।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमङ्गल गान ॥
राका ससि-रघुपति पुर, सिन्धु देखि हरषान ।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु नारि तरङ्ग समान ॥ २ ॥

इहाँ भानुकुल-कमल-दिवाकर । कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥
सुनु कपीस अङ्गद लङ्केसा । पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥
यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ । यह प्रसङ्ग जानइ कोउ कोऊ ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
जा मज्जन ते बिनहिँ प्रयासा । मम समीप नर पावहिँ बासा ॥

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी॥
हरषे कपि सब सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥
दो०—आवत देखि लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम्ह कुबेर पहिँ जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष बिरह अति ताहु॥४॥
आये भरत सङ्ग सब लोगा। कृस तन श्री रघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनुसायक॥
धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह। अनुजसहित अति पुलक तनोरुह॥
भेँटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया॥
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम धुरन्धर रघुकुल नाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु-पद-पङ्कज। नमत जिन्हहिँ सुर मुनि सङ्कर अज॥
परे भूमि नहिँ उठत उठाये। बर करि कृपासिन्धु उर लाये॥
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े। नव-राजीव-नयन जल बाढ़े॥

हरिगीतिका-छंद।

राजीव-लोचन स्रवत जल तन, ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि, मिले प्रभु त्रिभुवन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिँ, जाति नहिँ उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिङ्गार तनु धरि, मिले बर सुखमा लही॥२॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि, बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तेँ, भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कोसलनाथ आरत, जानि जनु दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥३॥
दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन, भेँटे हृदय लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ॥५॥
भरतानुज लछिमन पुनि भेँटे। दुसह बिरह सम्भव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिर नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किये सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महँ सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सील-गुन-धामा॥
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

जनु धेनु बालकबच्छ तजि गृह, चरन बन परबस गई।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन, हुङ्कार करि धावत भई॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी, बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग-भव तिन्ह, हरष सुख अगनित लहे॥४॥

दो०—भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।
रामहिं मिलत कैकई, हृदय बहुत सकुचानि॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोभ न जाइ॥५॥

सासुन्ह सबन्हि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरष अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥
सब रघुपति मुख-कमल बिलोकहिं। मङ्गल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनकथार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥
नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानन्द हरष उर भरहीं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपासिन्धु रनधीरहिं॥
हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लङ्कापति मारा॥
अति सुकुमार जुगुल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥

दो०—लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहि बिलोकति मात।
परमानन्द मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात॥७॥

लङ्कापति कपीस नल नीला। जामवन्त अङ्गद सुभसीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥
भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥
देखि नगरबासिन्ह कइ रीती। सकल सराहहिं प्रभु-पद-प्रीती॥
पुनि रघुपति सब सखा बोलाये। मुनि-पद लागहु सकल सिखाये॥

गुरु बसिष्ठ कुल-पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे॥
ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहु तें मोहि अधिक पियारे॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भये। निमिष निमिष उपजत सुख नये॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नायेउ माथ।
आसिष दीन्ही हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥
सुमन बृष्टि नभ सङ्कुल, भवन चले सुखकन्द।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि बरबृन्द॥८॥

कञ्चन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥
बन्दनवार पताका केतू। सबन्हि बनाये मङ्गल हेतू॥
बीथी सकल सुगन्ध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई॥
नाना भाँति सुमङ्गल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥
कञ्चनथार आरती नाना। जुबती सजे करहिं सुभ गाना॥
करहिं आरती आरति-हर कै। रघुकुल-कमल-बिपिन दिनकर कै॥
पुर सोभा सम्पति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥

दो०—नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भये बिगसित भईं, निरखि राम राकेस॥
होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि, बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान॥९॥

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन प्रभु कीन्हा॥
कृपासिन्धु निज मन्दिर गये। पुर नर नारि सुखी सब भये॥
गुरु बसिष्ठ द्विज लिये बोलाई। आज सुघरी सुदिन सुभदाई॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाये। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाये॥
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिबर बिलम्ब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥

दो०—तब मुनि कहेउ सुमन्त्र सन, सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारेउ जाइ॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रब्य मँगाइ।
हरष समेत बसिष्ठ-पद, पुनि सिर नायउ आइ॥१०॥

अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन-बृष्टि झरि लाई॥
राम कहा सेवकन्ह बोलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाये। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये॥
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे॥
अन्हवाये प्रभु तीनिउँ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटिसत सकहिं न गाई॥
पुनि निज जटा राम बिबराई। गुरु अनुसासन माँगि नहाई॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अङ्ग अनङ्ग कोटि छबि लाजे॥

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ।
दिव्य बसन बर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ॥
राम बाम दिसि सोभित, रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं, जनम सुफल निज जानि॥
सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनिबृन्द।
चढ़ि बिमान आये सब, सुर देखन सुखकन्द॥११॥

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई॥
जनक-सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेदमन्त्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषी महतारी। बार बार आरती उतारी॥
बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंहासन पर त्रिभुवन साँई। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

नभ दुन्दुभी बाजहिं बिपुल गन्धर्ब किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछरा-बृन्द परमानन्द सुर मुनि पावहीं॥

भरतादि अनुज बिभीषनाङ्गद, हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि, चर्म शक्ति बिराजते ॥५॥
श्री सहित दिनकर-बंस-भूषन, काम बहु छबि सोहई।
नव अम्बुधर बर गात अम्बर, पीत मुनि मन मोहई॥
मुकुटाङ्गदादि बिचित्र भूषन, अङ्ग अङ्गन्हि प्रति सजे।
अम्भोज नयन बिसाल उर भुज, धन्य नर निरखन्त जे ॥६॥
दो०—वह सोभा समाज सुख, कहत न बनइ खगेस।
बरनइ सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस॥
भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गये सुर निज निज धाम।
बन्दी बेष बेद तब, आये जहँ श्रीराम॥
प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति, आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहू मरम कछु, लगे करन गुन गान ॥१२॥

हरिगीतिका-छन्द।

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकन्धरादि प्रचंड निसिचर, प्रबल खल भुज बल हने।
अवतार नर संसार भार बिभञ्जि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमाम हे ॥७॥
तव विषम माया बस सुरासुर, नाग नर अग जग हरे।
भवपन्थ भ्रमत अमित दिवस निसि, काल कर्म गुनन्हि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके, त्रिविध दुख ते निर्बहे।
भव-खेद छेदन दच्छ हम कहँ, रच्छ राम नमाम हे ॥८॥
जे ज्ञान-मान-बिमत्त तव भव, हरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर-दुर्लभ-पदादपि, परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि, दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव, नाथ सोइ समराम हे॥९॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ, परसि मुनि पतिनी तरी।
नख-निर्गता मुनि बन्दिता त्रय,-लोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अङ्कुस कञ्ज जुत बन, फिरत कंटक किन लहे।
पद कञ्ज द्वन्द मुकुन्द राम रमेस नित्य भजाम हे ॥१०॥

अव्यक्त-मूलमनादितरु त्वच, चारि निगमागम भने।
षट-कन्ध साखा-पञ्चबीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल-बिधि कटु मधुर बेलि, अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार-बिटप नमाम हे॥११॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभव,-गम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव, सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर, देव यह बर माँगहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव, चरन हम अनुरागहीं॥१२॥
दो०—सब के देखत बेदन्ह, बिनती कीन्हि उदार।
अन्तरधान भये पुनि, गये ब्रह्म-आगार॥
बैनतेय सुनु सम्भु तब, आये जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर॥१३॥

तोटक-छन्द।

जय राम रमा-रमनं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि जनं॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो॥
दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत-दूरि महा महि भूरि रुजा॥
रजनीचर-बृन्द पतङ्ग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे॥
महि मंडल मंडन चारु तरं। धृत सायक चाप निषङ्ग बरं॥
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुञ्ज दिवाकर तेज अनी॥
मनजात किरात निपात किये। मृग लोग कुभोग सरेन हिये॥
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे। बिषयाबन पाँवर भूलि परे॥
बहु रोग बियोगन्हि लोग हये। भवदंघ्रि निरादर के फल ये॥
भवसिन्धु अगाध परे नर ते। पद-पङ्कज प्रेम न जे करते॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह के पद-पङ्कज प्रेम नहीं॥
अवलम्ब भवन्त कथा जिन्ह के। प्रिय सन्त अनन्त सदा तिन्ह के॥
नहिँ राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह के सम बैभव वा बिपदा॥
यहि तेँ तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥
करि प्रेम निरन्तर नेम लिये। पद-पङ्कज सेवत सुद्ध हिये॥
सम मानि निरादर आदरही। सब सन्त सुखी बिचरन्ति मही॥

मुनि मानस पङ्कज भृङ्ग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महा मद मान अरी॥
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरन्तर श्रीरमनं॥
रघुनन्द निकन्दय द्वन्द्व घनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं॥

दो०—बार बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरङ्ग।
पद-सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसङ्ग॥
बरनि उमापति राम गुन, हरषि गये कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब बिधि सुख-प्रद बास॥१४॥

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिँ नर बिरति बिबेका॥
जे सकाम नर सुनहिँ जे गावहिँ। सुख सम्पति नाना बिधि पावहिँ॥
सुर-दुर्लभ सुख करि जग माहीँ। अन्तकाल रघुपति-पुर जाहीँ॥
सुनहिँ बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिँ भगति गति सम्पति नई॥
खगपति रामकथा मैँ बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी॥
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी॥
नित नव मङ्गल कोसलपुरी। हरषित रहहिँ लोग सब कुरी॥
नित नइ प्रीति राम-पद-पङ्कज। सब के जिन्हहिँ नमत सिव मुनि अज॥
मङ्गन बहु प्रकार पहिराये। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाये॥

दो०—ब्रह्मानन्द मगन कपि, सब के प्रभु-पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास षट बीति॥१५॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीँ। जिमि पर-द्रोह सन्त मन माहीँ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिर नाये॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करउँ बड़ाई॥
ता तेँ मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥
अनुज राज सम्पति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सब मम प्रिय नहिँ तुम्हहिँ समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहि दृढ़ नेम।

सदा सर्वगत सर्बहित, जानि करेहु अति प्रेम ॥१६॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भये। को हम कहाँ बिसरि तन गये॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिँ न कछु कहि अतिअनुरागे॥
परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेखा॥
प्रभु सनमुख कछुकहत न पारहिँ। पुनि पुनि चरन-सरोज निहारहिँ॥
तब प्रभु भूषन बसन मँगाये। नाना रङ्ग अनूप सुहाये॥
सुग्रीवहिँ प्रथमहिँ पहिराये। बसन भरत निज हाथ बनाये॥
प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराये। लङ्कापति रघुपति मन भाये॥
अङ्गद बैठ रहा नहिँ डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥
दो०—जामवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ॥
तब अङ्गद उठि नाइ सिर, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोले बचन, मनहुँ प्रेम-रस बोरि॥१७॥
सुनु सर्बज्ञ कृपा सुख सिन्धो। दीन दयाकर आरतबन्धो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली॥
असरन सरन बिरद सम्भारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद-जलजाता॥
तुम्हहिँ बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहौं। पद-पङ्कज बिलोकि भव तरिहौं॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥
दो०—अङ्गद बचन बिनीति सुनि, रघपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लयेउ, सजल नयन राजीव॥
निज उर माल बसन मनि, बालि-तनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥१८॥
भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥
अङ्गद हृदय प्रेम नहिँ थोरा। फिर फिर चितव राम की ओरा॥
बार बार कर दंड-प्रनामा। मन अस रहन कहहिँ मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥

प्रभु रुख देखि विनय बहु भाषी। चलेउ हृदय पद-पङ्कज राखी॥
अति आदर सब कपि पहुँचाये। भाइन्ह सहित राम फिर आये॥
तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति विनय कीन्ही हनुमाना॥
दिन दस करि रघुपतिपद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥
पुन्य-पुञ्ज तुम्ह पवन-कुमारा। सेवहु जाइ कृपा-आगारा॥
अस कहि कपि सब चले तुरन्ता। अङ्गद कहइ सुनहु हनुमन्ता॥
दो०—कहेहु दंडवत प्रभु सन, तुम्हहिँ कहउँ कर जोर।
बार बार रघुनायकहि, सुरति करायेहु मोर॥
अस कहि चलेउ बालि-सुत, फिर आयेउ हनुमन्त।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भये भगवन्त॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस अस राम कर, समुझि परइ कहु काहि॥१८॥
पुनि कृपाल लिय बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मनक्रम बचन धरम अनुसरेहू॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥
चरन-नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिँ धन्य सुख-रासी॥
राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका॥
बयर न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप विषमता खोई॥
दो०—बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद-पथ लोग।
चलहिँ सदा पावहिँ सुख, नहिँ भय सोक न रोग॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिँ काहुहि व्यापा॥
सब नर करहिँ परसपर प्रीती। चलहिँ स्वधर्म निरत स्रुति नीती॥
चारिउ चरन धरम जग माहीँ। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीँ॥
राम भगति रत सब नर नारी। सकल परमगति के अधिकारी॥
अल्प-मृत्यु नहिँ कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा॥
नहिँ दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिँ कोउ अबुध न लच्छन-हीना॥
सब निर्दम्भ धर्म-रत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥

सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिँ कपटी सयानी॥
दो०—राम राज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिँ।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिँ॥
भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि यहि चरित तिन्हहुँ रति मानी॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिँ महा मुनिबर दम-सीला॥
राम-राज कर सुख सम्पदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर-उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥
दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य-समाज।
जीतहु मनहिँ सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥२२॥
फूलहिँ फरहिँ सदा तरु कानन। रहहिँ एक सँग गज पञ्चानन॥
खग मृग सहज बयर बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिँ खग मृग नाना बृन्दा। अभय चरहिँ बन करहिँ अनन्दा॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुञ्जत अलि ले चलि मकरन्दा॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीँ। मन भावतो धेनु पय स्रवहीँ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिँ बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीँ। डारहिँ रतन तटन्हि नर लहहीँ॥
सरसिज सङ्कुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥
दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहिँ काज।
माँगे बारिद देहिँ जल, रामचन्द्र के राज॥२३॥
कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥
स्रुति पथ पालक धरम-धुरन्धर। गुनातीत अरु भोग-पुरन्दर॥
पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥
जानति कृपासिन्धु प्रभुताई। सेवति चरन-कमल मन लाई॥

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवा-बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥
जेहि बिधि कृपासिन्धु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा-बिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥
उमा रमा ब्रह्मादि बन्दिता। जगदम्बा सन्ततमनिन्दिता॥

दो०—जासु कृपा-कटाच्छु सुर, चाहत चितवन सोइ।
राम-पदारबिन्द रति, करति सुभावहि खोइ॥२४॥

सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम-चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभुमुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर-दुर्लभ भोगा॥
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर-चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुन्दर सीता जाये। लव कुस बेद पुरानन्ह गाये॥
दोउ बिजई बिनई गुन-मन्दिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भये रूप गुन सील घनेरे॥

दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानन्द घन, कर नर चरित उदार॥२५॥

प्रातकाल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभा सङ्ग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥
अनुजन्ह सञ्जुत भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। सहित पवन सुत उपबन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥
सब के गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

दो०—अवधपुरी बासीन्ह कर, सुख सम्पदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज॥२६॥

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥

दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिँ। देखि नगर बिराग बिसरावहिँ॥
जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रङ्ग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर। रचे कँगूरा रङ्ग रङ्ग बर॥
नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहु रङ्ग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिवर मन राँचा॥
धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत। कलस मनहुँ रबि ससि दुतिनिन्दत॥
बहुमनिरचित झरोखा भ्राजहिँ। गृह गृह प्रतिमनिदीपबिराजहिँ॥

हरिगीतिका-छन्द।

मनि दीप राजहिँ भवन भ्राजहिँ, देहरी बिद्रुम रची।
मनि खम्भ भीति बिरञ्चि बिरची, कनक मनि मरकत खची॥
सुन्दर मनोहर मन्दिरायत, अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट-पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥ १३॥

दो०—चारु चित्रसाला गृह, गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिँ चोराइ॥२७॥

सुमन-बाटिका सबहि लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई॥
लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिँ सदा बसन्त कि नाई॥
गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर। मरुत त्रिबिध सदा बह सुन्दर॥
नाना खग बालकन्ह जिआये। बोलत मधुर उड़ात सुहाये॥
मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिँ निज परिछाहीँ। बहु बिधि कूजहिँ नृत्य कराहीँ॥
सुक सारिका पढ़ावहिँ बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥
राजदुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू॥

हरिगीतिका-छन्द।

बाजार रुचिर न बनइ बरनत, बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की, सम्पदा किमि गाइये॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे॥१४॥

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह, निर्मल जल गम्भीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पङ्क नहिँ तीर॥२८॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहिँ बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिँ असनाना ॥
राजघाट सब बिधि सुन्दर बर । मज्जहिँ तहाँ बरन चारिउ नर ॥
तीर तीर देवन के मन्दिर । चहुँ दिसि जिन्ह के उपवन सुन्दर ।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी । बसहिँ ज्ञान रत मुनि सन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृन्द बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई ॥
पुर सोभा कछु बरनि न जाई । बाहिर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा । बन उपबन बापिका तड़ागा ॥

हरिगीतिका-छन्द ।

बापी तड़ाग अनूप कूप, मनोहरायत सोहहीं ।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल, देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहु रङ्ग कञ्ज अनेक खग, कूजहिँ मधुप गुञ्जारहीं ।
आराम रम्य पिकादि खग रव, जनुम पथिक हङ्कारहीं ॥१५॥

दो०—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ ।
अनिमादिक सुख सम्पदा, रही अवध सब छाइ ॥२९॥

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिँ । बैठि परसपर इहइ सिखावहिँ ॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिँ । सोभा सील रूप गुन धामहिँ ॥
जलज-बिलोचन स्यामल गातहि । पलक नयन इव सेवक त्रातहि ॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि । सन्त कञ्ज बन रबि रनधीरहि ॥
काल कराल ब्याल खगराजहि । नमत राम अकाम ममता जहि ॥
लोभ मोह मृग-जूथ किरातहि । मनसिज करि हरि जन सुख दातहि ॥
संसय सोक निबिड़ तम भानुहि । दनुज गहन घन दहन कृसानुहि ॥
जनक-सुता समेत रघुबीरहि । कस न भजहु भञ्जन भव-भीरहि ॥
बहु बासना मसक हिम-रासिहि । सदा एकरस अज अबिनासिहि ॥
मुनि रञ्जन भञ्जन महि भारहि । तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ॥

दो०—एहि बिधि नगर नारि नर, करहिँ राम गुन गान ।
सानुकूल सब पर रहहिँ, सन्तत कृपा निधान ॥३०॥

जब तेँ राम प्रताप खगेसा । उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका ॥

जिन्हहिँ सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या-निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ये चकोर सुख लहहिँ न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धरम तड़ाग ज्ञान बिज्ञाना। ये पङ्कज बिकसे बिधि नाना॥
सुख सन्तोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ये कोक अनेका॥
दो०—यह प्रताप-रबि जा के, उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिँ प्रथम जे, कहे ते पावहिँ नास॥३१॥

भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। सङ्ग परम प्रिय पवन-कुमारा॥
सुन्दर उपबन देखन गये। सब तरु कुसुमित पल्लव नये॥
जानि समय सनकादिक आये। तेज पुञ्ज गुन सील सुहाये॥
ब्रह्मानन्द सदा लयलीना। देखत बालक बहु कालीना॥
रूप धरे जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीँ। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीँ॥
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसम्भव मुनिबर ज्ञानी॥
रामकथा मुनि बहु बिधि बरनी। ज्ञान-जोनि पावक जिमि अरनी॥
दो०—देखि राम मुनि आवत, हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूछि पीत-पट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥३२॥

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवन-सुत सुख अधिकाई॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भये मगन मन सके न रोकी॥
स्यामल गात सरोरुह-लोचन। सुन्दरता मन्दिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिँ। प्रभु कर जोरे सीस नवावहिँ॥
तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥
आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहिँ अघ खीसा॥
बड़े भाग पाइय सतसङ्गा। बिनहिँ प्रयास होइ भव भङ्गा॥
दो०—सन्त सङ्ग अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ।
कहहिँ सन्त कबि कोबिद, स्रुति पुरान सद्ग्रन्थ॥३३॥

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी॥

जय भगवन्त अनन्त अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय॥
जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मन्दिर सुन्दर अति नागर॥
जय इन्दिरा-रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर॥
ज्ञान निधान अमान मान-प्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भञ्जन। नाम अनेक अनाम निरञ्जन॥
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय॥
द्वन्द बिपति भव फन्द बिभञ्जय। हृदि बसि राम काम मद गञ्जय॥

दो०—परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम।
प्रेम-भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम॥३४॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिध-ताप भव-दाप नसावनि॥
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु॥
भव बारिधि कुम्भज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुखदायक॥
मन सम्भव दारुन दुख दारय। दीनबन्धु समता बिस्तारय॥
आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक॥
भूप-मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति-सरि तरनी॥
मुनि मन मानस हंस निरन्तर। चरन-कमल बन्दित अज सङ्कर॥
रघुकुल केतु सेतु स्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक॥
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन॥

दो०—बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित सिर नाइ।
ब्रह्म-भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ॥३५॥

सनकादिक बिधि लोक सिधाये। भ्रातन्ह राम-चरन सिर नाये॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुत-सुत पाहीं॥
सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी॥
अन्तरजामी प्रभु सब जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥
जोरि पानि कह तब हनुमन्ता। सुनहु दीनदयाल भगवन्ता॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥
तुम्ह जानहु कपि मोरि सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥

दो०—नाथ न मोहि सन्देह कछु, सपनेहुँ सोक न मोह।

केवल कृपा तुम्हारिही, कृपानन्द—सन्दोह ॥ ३६ ॥
करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई॥
सन्तन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि वेद पुरानन्हि गाई॥
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई॥
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिन्धु गुन ज्ञान विचच्छन॥
सन्त असन्त भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥
सन्तन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित स्रुति पुरान विख्याता॥
सन्त असन्तन्ह कै असि करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निजगुन देइ सुगन्ध बसाई॥
दो०—ता तें सुर सीसन्ह चढ़त, जगबल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥३७॥
बिषय अलम्पट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहिँ मान प्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम तेइ प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन। सान्ति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज-पद प्रीति धरम जनयत्री॥
ये सब लच्छन बसहिँ जासु उर। जानेहु तात सन्त सन्तत फुर॥
समदम नियम नीति नहि डोलहिँ। परुष बचन कबहूँ नहि बोलहिँ॥
दो०—निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद-कञ्ज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मन्दिर सुख पुञ्ज ॥३८॥
सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ। भूलहु सङ्गति करिय न काऊ॥
तिन्ह कर सङ्ग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेखी। जरहि सदा पर-सम्पति देखी॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिँ पराई। हरषहिँ मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयर अकारन सब काहू सौं। जो कर हित अनहित ताहू सौं॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिँ मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिँ महा अहि हृदय कठोरा॥

दो०—परद्रोही पर दार रत, पर-धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद॥३९॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू के देखहिं बिपती। सुखी भये मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लम्पट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। सन्त सङ्ग हरिकथा न भावा॥
अवगुन-सिन्धु मन्द-मति कामी। वेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह सुरद्रोह बिसेषा। दम्भ कपट जिय धरे सुबेषा॥

दो०—ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृन्द बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं॥४०॥

पर-हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निरनय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥
काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृति दुख जाने॥
त्यागहिं करम सुभासुभदायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनिनायक॥
सन्त असन्तन्ह के गुन भाखे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥

दो०—सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखियहि, देखिय सो अबिबेक॥४१॥

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदय समाई॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हिय हरष अपारा॥
पुनि रघुपति निज मन्दिर गये। एहि बिधि चरित करत निज नये॥
बार बार नारदमुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥
सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म-निरत मुनि आहहिं॥

सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिँ परम अधिकारी॥
दो०—जीवनमुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिँ तजि ध्यान।
जे हरिकथा न करहिँ रति, तिन्ह के हिय पाषान॥४२॥
एक बार रघुनाथ बोलाये। गुरू द्विज पुरवासी सब आये॥
बैठे सदसि अनुज मुनि सज्जन। बोले बचन भगत-भय-भञ्जन॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिँ अनीति नहिँ कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जौं तुम्हहिँ सुहाई॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई॥
जौं अनीति कछु भाषउँ भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥
बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥
साधन-धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥
दो०—सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोस लगाइ॥४३॥
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वरगउ स्वल्प अन्त दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीँ। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीँ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुञ्जा ग्रहइ परसमनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर-देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
दो०—जो न तरइ भव-सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति, आतम-हन गति जाइ॥४४॥
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान स्रुति गाई॥
ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भगति हीन मोहि प्रिय नहिँ सोऊ
भगति सुतन्त्र सकल सुख खानी। बिनु सतसङ्ग न पावहिँ प्रानी॥
पुन्य पुञ्ज बिनु मिलहिँ न सन्ता। सतसङ्गति संसृति कर अन्ता॥

पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र-पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करइ द्विजसेवा॥
दो०—औरउ एक गुपुत-मत, सबहि कहउँ करजोरि।
सङ्कर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि॥४५॥
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ सन्तोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥
बयर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिज्ञानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥
दो०—मम गुन-ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ, परानन्द-सन्दोह॥४६॥
सुनत सुधा सम बचन राम के। गहे सबन्हि पद कृपा-धाम के॥
जननि जनक गुरु बन्धु हमारे। कृपानिधान प्रान ते प्यारे॥
तन धन धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥
अस सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥
हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीँ। सपनेहु प्रभु परमारथ नाहीँ॥
सब के बचन प्रेम-रस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने॥
निज निज गृह गये आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥
दो०—उमा अवधबासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, रघुनायक जहँ भूप॥४७॥
एक बार बसिष्ठ मुनि आये। जहाँ राम सुखधाम सुहाये॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि चरनोदक लीन्हा॥
राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिन्धु बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा॥
महिमा अमित बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥

उपरोहित कर्म अति मन्दा। बेद पुरान सुमृति कर निन्दा॥
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल-भूषन भूपा॥
दो०—तब मैं हृदय बिचारा, जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहँ करिय सो पाइहउँ, धर्म न एहि सम आन॥४८॥
जप तप नियम जोग निजधर्मा। स्रुति सम्भव नाना सुभ-कर्मा॥
ज्ञान दया दम तीरथ-मज्जन। जहँ लगि धरम कहत स्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद-पङ्कज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर॥
छूटइ मल कि मलहि के धोये। घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये॥
प्रेम-भाँति जल बिनु रघुराई। अभिअन्तर मल कबहुँ न जाई॥
सोइ सर्बज्ञ तज्ञ सोइ पंडित। सोई गुन गृह बिज्ञान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुग सोई। जा के पद-सरोज रति होई॥
दो०—नाथ एक बर मांगउँ, राम कृपा करि देहु।
जनम जनम प्रभु पद-कमल, कबहुँ घटइ जनि नेहु॥४६॥
असकहि मुनि बसिष्ठ गृह आये। कृपा सिन्धु के मन अति भाये॥
हनुमान भरतादिक भ्राता। सङ्ग लिये सेवक सुखदाता॥
पुनि कृपाल पुर बाहर गये। गज रथ तुरग मंगावत भये॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिये उचितजिन्ह जिन्ह जेहि चाहे॥
हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई। गये जहां सीतल अंबराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुत-सुत तब मारुत करई। पुलक बपुक लोचन जल भरई॥
हनुमान समान बड़ भागी। नहिं कोउ राम-चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज-मुख गाई॥
दो०—तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन॥५०॥
मामवलोकय पङ्कज-लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कञ्ज मकरन्द मधुप हरि॥
जातुधान बरूथ बल भञ्जन। मुनि सज्जन रञ्जन अघ गञ्जन॥

भूसुर ससि नव बृन्द बलाहक । असरन सरन दीन जन गाहक ॥
भुज बलबिपुल भार महि खंडित । खर दूषन बिराध बध पंडित ॥
रावनार सुख रूप भूप बर । जय दसरथ-कुल-कुमुद सुधाकर ॥
सुजस पुरान बिदित निगमागम । गावत सुर मुनि सन्त-समागम ॥
कारुनीक व्यलीक मद खंडन । सब बिधि कुसल कोसला-मंडन ॥
कलिमल मथन नाम ममता हन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत-जन ॥
दो०—प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम-गुन-ग्राम ।
सोभा-सिन्धु हृदय धरि, गये जहाँ बिधि धाम ॥५१॥
गिरजा सुनहु बिसद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ॥
रामचरित सतकोटि अपारा । स्रुति सारदा न बरनइ पारा ॥
राम अनन्त अनन्त गुनानी । जनम करम अनन्त नामानी ॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥
बिमल कथा हरि-पद-दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ॥
उमा कहेउँ सब कथा सुहाई । जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ॥
कछुक राम गुन कहेउँ बखानी । अब का कहउँ सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी । बोली अति बिनीत मृदु-बानी ॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी । सुनेउँ राम गुन भव-भय हारी ॥
दो०—तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह ।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु, चिदानन्द-सन्दोह ॥
नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुबीर ।
स्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहिं अघात मति-धीर ॥५२॥
रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ ॥
भवसागर चह पार जो पावा । राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥
बिषयिन्ह कहँ पुनि हरि गुन-ग्रामा । स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥
स्रवनवन्त अस को जग माहीं । जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ॥
ते जड़ जीव निजात्मक-घाती । जिनहहिं न रघुपति कथा सुहाती ॥
हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा । सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा ॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई । कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥

दो०—बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़, रामचरित अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति, मोहि परम सन्देह ॥५३॥

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धरम-ब्रत धारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवन्त कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म-लीन बिज्ञानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्म-पर प्रानी॥
सब तेँ सब सो दुर्लभ सुरराया। रामभगति रत गत मद माया॥
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥

दो०—राम परायन ज्ञान रत, गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पायेउ काग सरीर ॥५४॥

यह प्रभु चरित्र पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥
गरुड़ महाज्ञानी गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी॥
तेहि केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥
कहहु कवन बिधि भा सम्बादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा।
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥
धन्य सती पावनि मति तोरी। रघुपति-चरन प्रीति नहिँ थोरी॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल सोक भ्रम नासा॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिँ प्रयासा॥

दो०—ऐसइ प्रस्न बिहङ्गपति, कीन्ह काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ, सुनहु उमा मन लाइ ॥५५॥

मैँ जिमि कथा सुनी भवमोचनि। सो प्रसङ्ग सुनु सुमुखि सुलोचनि॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा॥
दच्छ जज्ञ तब भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भङ्गा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसङ्गा॥
तब अति सोच भयउ मन मोरे। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरे॥
सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बिरागा॥

गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। नीलसैल एक सुन्दर भूरी॥
तासु कनक-मय सिखर सुहाये। चारि चारु मोरे मन भाये॥
तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा॥

दो०—सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहु रङ्ग।
कूजत कल रव हंस गन, गुञ्जत मञ्जुल भृंग॥५६॥

तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कलपान्त न होई॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥
रहे व्यापि समस्त जग माहीँ। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीँ॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा॥
पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई॥
आम छाँह कर मानस-पूजा। तजि हरिभजन काज नहिँ दूजा॥
बर तर कह हरिकथा प्रसङ्गा। आवहिँ सुनहिँ अनेक बिहङ्गा॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥
सुनहिँ सकल मति बिमल मराला। बसहिँ निरन्तर जो तेहि ताला॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनन्द बिसेखा॥

दो०—तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास॥५७॥

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिँ खग-कुल केतू॥
जब रघुनाथ कीन्ह रन क्रीडा। समुझत चरित होत मोहि व्रीडा॥
इन्द्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो॥
बन्धन काटि गयउ उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा॥
प्रभु बन्धन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग-आराती॥
व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीँ। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीँ॥४॥

दो०—भवबन्धन तेँ छूटहिँ, नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नागपास सोइ राम॥५८॥

नाना भाँति मनहिँ समुझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा॥

भेदसिद्ध मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोह बस तुम्हरिहि नाँई॥
व्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥
जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह मन करई॥
जेहि बहु बार नचावा मोही। सोइ व्यापी बिहङ्गपति तोही॥
महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे॥
चतुरानन पहिँ जाहु खगेसा। सोइ करेहु जो होइ निदेसा॥
दो०—अस कहि चले देवरिषि, करत राम गुन गान।
हरिमाया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान॥५९॥
तब खगपति बिरञ्चि पहिँ गयऊ। निज सन्देह सुनावत भयऊ॥
सुनि बिरञ्चि रामहिँ सिर नावा। समुझि प्रताप प्रेम उर छावा॥
मन महँ करइ बिचार बिधाता। माया बस कवि कोबिद ज्ञाता॥
हरिमाया कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहि मोहि नचावा॥
अग जग मय सब मम उपराजा। नहिँ आचरज मोह खगराजा॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई॥
बैनतेय सङ्कर पहिँ जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू॥
तहँ होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहङ्ग सुनत बिधि बानी॥
दो०—परमातुर बिहङ्गपति, आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह, रहिहु उमा कैलास॥६०॥
तेहि मम पद सादर सिर नावा। पुनि आपन सन्देह सुनावा॥
सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी॥
मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावउँ तोही॥
तबहिँ होइ सब संसय भङ्गा। जब बहु काल करिय सतसङ्गा॥
सुनिय तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई॥
जेहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥
नित हरिकथा होति जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई॥
जाइहि सुनत सकल सन्देहा। राम चरन होइहि अति नेहा॥
दो०—बिनु सतसङ्ग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम-पद, होइ न दृढ़ अनुराग॥६१॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोग जप ज्ञान बिरागा॥
उत्तर दिसि सुन्दरगिरि नीला। तहँ रह काग भुसुंड सुसीला॥
रामभगति पथ परम प्रबीना। ज्ञानी गुन गृह बहु कालीना॥
रामकथा सो कहइ निरन्तर। सादर सुनहिँ विविध विहङ्ग वर॥
जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥
मैँ जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिर नाई॥
ता तेँ उमा न मैँ समुझावा। रघुपति कृपा मरम मैँ पावा॥
होइहि की है बहुँ अभिमाना। सो खोवइ चह कृपानिधाना॥
कछु तेहि ते पुनि मैँ नहिँ राखा। समुझइ खग खग ही कै भाखा॥
प्रभु माया बलवन्त भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी॥

दो०—ज्ञानी भक्त-सिरोमनि, त्रिभुवन पति कर जान।
ताहि मोह माया नर, पाँवर करहिँ गुमान॥
सिव बिरञ्चि कह मोहइ, को है वपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिँ मुनि, मायापति भगवान॥६२॥

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडी। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ॥
करि तड़ाग मज्जन जल पाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना॥
बृद्ध वृद्ध विहङ्ग तहँ आये। सुनइ राम के चरित सुहाये॥
कथा अरम्भ करइ सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ वायस सहित समाजा॥
अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब वोलेउ कागा॥

दो०—नाथ कृतारथ भवउँ मैँ, तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करउँ अब, प्रभु आयहु केहि काज॥
सदा कृतारथ-रूप तुम्ह, कह मृदु वचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर. निज मुख कीन्ह महेस॥६३॥

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तब पायउँ॥
देखि परम पावन तव आस्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥१॥
अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुञ्ज नसावनि॥

सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही ॥
सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहइ रघुपति गुन गाहा ॥
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित-सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥

दो०—बाल चरित कहि बिबिध बिधि, मन महँ परम उछाह।
रिषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह ॥ ६४ ॥

बहुरि राम अभिषेक प्रसङ्गा। पुनि नृप बचन राज-रस भङ्गा ॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन सम्बादा ॥
बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बस भगवाना ॥
सचिवागमन नगर नृप मरना। भरतागमन प्रेम बहु बरना ॥
करि नृप क्रिया सङ्ग पुरबासी। भरत गये जहँ प्रभु सुख रासी ॥
पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाये। लेइ पादुका अवधपुर आये ॥
भरत रहनि सुरपति-सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी ॥

दो०—कहि बिराध बध जेहि बिधि, देह तजी सरभङ्ग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्ति सतसङ्ग ॥६५॥

कहि दंडक बन पावन ताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥
पुनि प्रभु पञ्चवटी कृत बासा। भञ्जी सकल मुनिन्ह कै त्रासा ॥
पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा ॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरम दसानन जाना ॥
दसकन्धर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही ॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना ॥
पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबन्ध सबरिहि गति दीन्ही ॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोबर तीरा ॥

दो०—प्रभु नारद सम्बाद कहि, मारुति मिलन प्रसङ्ग।
पुनि सुग्रीव मिताई, बालि प्रान कर भङ्ग ॥
कपिहि तिलक करि प्रभु कृत, सैलप्रबरषन बास।

बरनत बरषा सरद रि ; राम रोष कपि त्रास ॥६६॥
जेहि बिधि कपिपति कीस पठाये । सीता खोज सकल दिसि धाये ॥
बिबर प्रवेस कीन्ह जेहि भाँति । कपिन्ह बहोरि मिला सम्पाती ॥
सुनि सब कथा समीरकुमारा । नाँघत भयउ पयोधि अपारा ॥
लङ्का कपि प्रवेस जिमि कीन्हा । पुनि सीतहि धीरज जिमि दीन्हा ॥
बन उजारि रावनहिँ प्रबोधी । पुर दहि नाँघेउ बहुरि पयोधी ॥
आये कपि सब जहँ रघुराई । बैदेही कइ कुसल सुनाई ॥
सेन समेत जथा रघुबीरा । उतरे जाइ बारिनिधि तीरा ॥
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई । सागर निग्रह कथा सुनाई ॥
दो०—सेतु बाँधि कपि सेन जिमि, उतरी सागर पार ।
गयउ बसीठी बीर बर, जेहि बिधि बालिकुमार ॥
निसिचर कीस लराई, बरनेसि बिबिध प्रकार ।
कुम्भकरन घननाद कर, बल पौरुष संहार ॥६७॥
निसिचर निकर मरन बिधिनाना । रघुपति रावन समर बखाना ॥
रावन बध मन्दोदरि सोका । राज बिभीषन देव असोका ॥
सीता रघुपति मिलन बहोरी । सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी ॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता । अवध चले प्रभु कृपानिकेता ॥
जेहिबिधि राम नगर निज आये । बायस बिसद चरित सब गाये ॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका । पुर बरनन नृपनीति अनेका ॥
कथा समस्त भुसुंडि बखानी । जो मैं तुम्ह सन कही भवानी ॥
सुनि सब रामकथा खगनाहा । कहत बचन मन परम उछाहा ॥
सो०—गयउ मोर सन्देह, सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।
भयउ राम-पद नेह, तव प्रसाद बायस-तिलक ॥
मोहि भयउ अति मोह, प्रभु बन्धन रन महँ निरखि ।
चिदानन्द सन्दोह, राम बिकल कारन कवन ॥६८॥
देखि चरित नर तनु अनुसारी । भयउ हृदय मम संसय भारी ॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना ॥
जो अति आतप ब्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ॥
जौं नहिँ होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुनाई। अति विचित्र बहु विधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं सन्देहा॥
सन्त बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
राम कृपा तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥
दो०—सुनि विहङ्गपति बानी, सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग॥
श्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्य अपि, सज्जन करहिं प्रकास॥६९॥
बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी। नभगनाथ पर प्रीति न थोरी॥
सब विधि नाथ पूज्य तुम्हमेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे॥
तुम्हहिं न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥
पठइ मोहि मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही॥
तुम्ह निज मोहि कहा खगसाँई। सो नहिं कछु आचरज गोसाँई॥
नारद भव विरञ्चि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी॥
तृष्ना केहि न कीन्ह बौरहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दीहा॥
दो०—ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ विडम्बना, कीन्हि न एहि संसार॥
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नयन सर, को अस लाग न जाहि॥७०॥
गुन कृत सन्यपाति नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जसन नसावा॥
मच्छर काहि कलङ्क न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिन्ता साँपिनि को नहि खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोकई षना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनइ पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥
दो०—ब्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखंड

दो०—सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पदरोपि ॥७१॥

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥
सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज बिज्ञान रूप बल धामा ॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरञ्जन सुख सन्दोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रवि सनमुख तम कबहु कि जाहीं ॥

दो०—भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥
जथा अनेक बेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ ॥७२॥

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी ॥
जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ॥
नयन-दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहँ कह सोई ॥
जब जेहि दिसि-भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उयेउ दिनेसा ॥
नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परसपर मिथ्याबादी ॥
हरि बिषइक अस मोह बिहङ्गा। सपनेहुँ नहिं अज्ञान प्रसङ्गा ॥
माया बस मतिमन्द अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी ॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि, मूढ़ परे तम कूप ॥
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥७३॥

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई ॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सो सब कथा सुनावउँ तोही ॥

गरुड़ और कागभसुँड संवाद पृष्ठ ४१२

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

राम-कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरिगुन प्रीति मोहि सुख दाता॥
ता तें नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ॥
सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
ता तें करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गुसाँईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥

दो०—जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननी, गनत न सो सिसु पीर॥
तिमि रघुपति निज दास कर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजसि भ्रम त्यागि॥७४॥

राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भगत हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जनम-महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥
इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटिसत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सफल करउँ उरगारी॥
लघु बायस बपु धरि हरि सङ्गा। देखउँ बाल चरित बहु रङ्गा॥

दो०—लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ सङ्ग उड़ाउँ।
जूठन परइ अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ॥
एक बार अतिसय सब, चरित किये रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर॥७५॥

कहइ भुसुंडि सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक सुखदायक॥
नृप मन्दिर सुन्दर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥
बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बाल-विनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अङ्ग अङ्ग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अङ्क कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रव कारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किङ्किनि कल मुखर सुहाई॥

दो०—रेखा त्रय सुन्दर उदर, नाभि रुचिर गम्भीर ।
उर आयत भ्राजत बिबिध, काल-बिभूषन चीर ॥७६॥

अरुन पानि नख करज मनोहर । बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर ॥
कन्ध बाल केहरि दर ग्रीवाँ । चारु चबुक आनन छबि सींवाँ ॥
कलबल बचन अधर अरुनारे । दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा । सकल सुखद ससि कर सम हासा ॥
नील कञ्ज लोचन भव मोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाये । कुञ्चित कच मेचक छबि छाये ॥
पीत झीनि झगुली तन सोही । किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी । नाचहिँ निज प्रतिबिम्ब निहारी ॥
मो सन करहिँ बिबिध बिधि क्रीड़ा । बरनत चरित होत मोहि ब्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिँ । चलउँ भागि तब पूप देखावहिँ ॥

दो०—आवत निकट हँसहिँ प्रभु, भाजत रुदन कराहिँ ।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितइ पराहिँ ॥
प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह ।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द-सन्दोह ॥७७॥

एतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित ब्यापी माया ॥
सो माया न दुखद मोहि काहीँ । आन जीव इव संसृति नाहीँ ॥
नाथ इहाँ कछु कारन आना । सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥
ज्ञान अखंड एक सीताबर । माया बस्य जीव सचराचर ॥
जौं सब के रह ज्ञान एकरस । ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुन खानी ॥
परबस जीव स्वबस भगवन्ता । जीव अनेक एक श्रीकन्ता ॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

दो०—रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्बान ।
ज्ञानवन्त अपि सो नर, पसु बिनु पूछ बिषान ॥
राकापति षोड़स उअहिँ, तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दव लाइय, बिनु रबि राति न जाइ ॥७८॥

ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा । मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥

हरिसेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥
ता तें नास न होइ दास कर। भेदभगति बाढ़इ बिहङ्ग बर॥
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहंग सो सुनु चरित बिसेखा॥
तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू॥
जानु पानि धाये मोहि धरना। स्यामलगात अरुन कर चरना॥
तब मैं भागि चलेउ उरगारी। राम गहन गहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउ अकासा। तहँ हरि भुज देखउँ निज पासा॥
दो०—ब्रह्मलोक लगि गयउ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अङ्गुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात॥
सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगे गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, ब्याकुल भयउ बहोरि॥७९॥
मूँदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥
उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक तें एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडुगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगिनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥
दो०—जो नहिँ देखा नहि सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ।
एक एक ब्रह्मांड महँ, रहेउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं, अंडकटाह अनेक॥८०॥
लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता॥
नर गन्धर्व भूत बेताला। किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला॥
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिँ भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपञ्च तहँ आनहिँ आना॥
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखउँ जिनिस अनेक अनूपा॥
अवध पुरी प्रति भुवन निहारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखेउ बाल बिनोद उदारा ॥

दो०—भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन ॥
सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ, प्रेरित मोह समीर ॥ ८१ ॥

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कलप सत एका ॥
फिरत फिरत निज आस्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गँवायउँ
निज प्रभु जनम अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ ॥
देखेउँ जनम-महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई ॥
राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना ॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। मायापति कृपाल भगवाना ॥
करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी ॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउ भ्रमित मन मोह बिसेखा ॥

दो०—देखि कृपाल बिकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतही मुख बाहेर, आयउँ सुनु मतिधीर ॥
सोइ लरिकाई मो सन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउँ, मन न लहइ बिस्राम ॥८२॥

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई ॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता ॥
प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी ॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ ॥
कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा सन्दोहा ॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी ॥
भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेखी ॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हेउँ बहु बिधि बिनय बहोरी ॥

दो०—सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गम्भीर मृदु, बोले रामनिवास ॥
कागभुसुंडी माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि ॥

अनिमादिक सिधि अपर रिधि, मोच्छ सकल सुख खानि ॥८३॥
ज्ञान विवेक बिरति बिज्ञाना। सुरदुर्लभ गुन जे जग जाना ॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं। माँगु जो तोहि भाव मन माहीं ॥
सुनिप्रभुबचनअधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥
प्रभु कह देनसकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही ॥
भगति हीन गुन सब सुख कैसे। लवन बिना बहु ब्यञ्जन जैसे ॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥
जौं प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन-भावत बर माँगउँ स्वामी। तुम उदार उर अन्तर जामी ॥
दो०—अबिरल भगति बिसुद्धतव, स्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥
भगत-कलपतरु प्रनत हित, कृपासिन्धु सुख धाम।
सोइ निजभगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥८४॥
एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना ॥
सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिँ जगकोउतोहिसम बड़भागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहिँ लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु बिहङ्ग प्रसाद अब मोरे। सब सुभगुन बसिहहिँ उर तोरे ॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥
दो०—माया सम्भव भ्रम सकल, अब न ब्यापिहहिँ तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ॥
मोहि भगत प्रिय सन्तत, अस बिचारि सुनु काग।
काय बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग ॥८५॥
अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
निज सिद्धान्त सुनावउँ तोही। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥
मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब तैं अधिक मनुज मोहि भाये ॥

तिन्ह महं द्विज द्विज महँ स्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम-धर्म अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु तेँ अति प्रिय विज्ञानी॥
तिन्ह तेँ पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीँ। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीँ॥
भगति हीन बिरञ्चि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥

दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग॥८६॥

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवन्त सूर कोउ दाता॥
कोउ सर्वज्ञ धर्म-रत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु-भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल बिस्व यह मम उपजाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजहिं मोहि मन बच अरु काया॥

दो०—पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ॥

सो०—सत्य कहउं खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब॥८७॥

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरन्तर मोही॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तन पुलकित मन अति हरषाऊँ॥
सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिँ जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहिँ नयना। किमि कहि सकहिँ तिन्हहिँ नहिँ बयना॥
एहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा॥
देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिये उर लाई॥
गोद राखि कराव पय पाना। रघुबर चरित ललित कर गाना॥

सो०—जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ बेष कृत सिव सुखद।

अवधपुरी नर नारि, तेहि सुख महँ सन्तत मगन ॥
सोई सुख लवलेस, जिन्ह बारक सपनेहुं लहेउ ।
ते नहिँ गनहिं खगेस, ब्रह्म-सुखहि सज्जन सुमति ॥८८॥
मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला । देखेउँ बाल-बिनोद रसाला ॥
राम प्रसाद भगति बर पायउँ । प्रभु पद बन्दि निजाश्रम आयउँ ॥
तब तें मोहि न ब्यापी माया । जब तें रघुनायक अपनाया ॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा । हरि माया जिमि मोहि नचावा ॥
निज अनुभव अब कहउँ खगेसा । बिनु हरिभजन न जाहिँ कलेसा ॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती बिनु परतीति होइ नहिँ प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिँ भगति दृढ़ाई । जिमि खगेस जल कै चिकनाई ॥
सो०—बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिँ बेद पुरान, सुख कि लहिय हरिभगति बिनु ॥
कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु ।
चलइ कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय ॥८९॥
बिनु सन्तोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिँ कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा
बिनु बिज्ञान कि समता आवै । कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै ॥
स्रद्धा बिना धरम नहिँ होई । बिनु महि गन्ध कि कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरिभजन न भव भय नासा ॥
दो०—बिनु बिस्वास भगति नहिँ, तेहि बिनु द्रवहिँ न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिस्राम ॥
सो०—अस बिचारि मतिधीर, तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद ॥९०॥
निज मति सरिस नाथ मैं गाई । प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेखी । यह सब मैं निज नयनन्हि देखी ॥

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनन्त रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिँ। निगम सेष सिव पार न पावहिँ॥
तुम्हहिँ आदि खग मसक प्रजन्ता। नभ उड़ाहिँ नहिँ पावहिँ अन्ता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥
राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटिसत सरिस बिलासा। नभ सतकोटि अमित अवकासा॥

दो०—मरुत कोटिसत बिपुल बल, रवि सतकोटि प्रकास।
सखि सतकोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास॥
काल कोटिसत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूमकेतु सतकोटि सम, दुराधरष भगवन्त॥९१॥

प्रभु अगाध सतकोटि पताला। समन कोटिसत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटिसत पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिन्धु कोटिसत सम गम्भीरा॥
कामधेनु सतकोटि समाना। सकल कामदायक भगवाना॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटिसत पालन करता। रुद्र कोटिसत सम संहरता॥
धनद कोटिसत सम धनवाना। माया कोटि प्रपञ्च निधाना॥
भार धरन सतकोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

हरिगीतिका-छन्द।

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटिसत खद्योत सम रवि, कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति-बिलास मुनीस हरिहि बखानहीँ।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख पावहीँ॥

दो०—राम अमित गुन सागर, थाह कि पावइ कोइ।
सन्तन्ह सन जस कछु सुनेउँ, तुम्हहिँ सुनायउँ सोइ॥

सो०—भाव बस्य भगवान, सुखनिधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान, भजिय सदा सीतारमन॥९२॥

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाये। हरषित खगपति पङ्ख फुलाये॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्री रघुपति प्रताप उर आना॥

व्याकुल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥
पुनि पुनि काग चरन सिर नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥
गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जौ बिरञ्चि सङ्कर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥
तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जियायहु जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥

दो०—ताहि प्रसंसि बिबिध बिध, सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि॥
प्रभु अपने अबिबेक तें, बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिन्धु सादर कहहु, जानि दास निज मोहि॥ ९३॥

तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥
कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
रामचरितसर सुन्दर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥
नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहु नास तव नाहीं॥
मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरे मन संसय अहई॥
अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी॥

सो०—तुम्हहिं न ब्यापत काल, अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ग्यान प्रभाव कि जोगबल।

दो०—प्रभु तव आस्रम आयउँ, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग॥ ९४॥

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा सहित अनुरागा॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी॥
सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम की सुधि मोहि आई॥
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई॥
जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना॥
सब कर फल रघुपति-पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥
एहि तन रामभगति मैं पाई। ता तें मोहि ममता अधिकाई॥

जेहि तेँ कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥
सो०—पन्नगारि असि नीति, स्रुति सम्मत सज्जन कहहिँ।
अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परम हित॥
पाट कीट तेँ होइ, तेहि तेँ पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालइ सबकोइ, परम अपावन प्रान सम॥८५॥
स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम-पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजइ रघुबीरा॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिँ तेही॥
रामभगति एहि तन उर जामी। ता तेँ मोहि परम प्रिय स्वामी॥
तजउँ न तनु निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिँ बरना॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥
नाना जनम करम पुनि नाना। किये जोग जप तप मख दाना॥
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीँ। मैँ खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीँ॥
देखेउँ करि सब करम गोसाईँ। सुखी न भयउँ अबहिँ की नाईँ॥
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी॥
दो०—प्रथम जनम के चरित अब, कहउँ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभु-पद रति उपजइ जा तेँ मिटहिँ कलेस॥
पूरब कल्प एक प्रभु, जुग कलियुग मल-मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत, सकल निगम प्रतिकूल॥८६॥
तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जनमत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निन्दक अभिमानी॥
धन मद मत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि उर दम्भ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥
अब जाना मैँ अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहुँ जनम अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥
अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिँ राम धनु पानी॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥
दो०—कलिमल ग्रसे धरम सब, लुप्त भये सद्‌ग्रन्थ।
दम्भिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किये बहु पन्थ॥

भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभकर्म।
सुनु हरिजान ज्ञान निधि, कहउँ कछुक कलि-धर्म ॥९७॥
बरन धरम नहिँ आस्रम चारी। स्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज स्रुतिबेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिँ मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारम्भ दम्भ रत जोई। ता कहँ सन्त कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो पर धन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना॥
निराचार जे स्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी बैरागी॥
जा के नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
दो०—असुभ बेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिँ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहिँ॥
सो०—जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लवार, ते बकता कलिकाल महँ ॥९८॥
नारि बिबस नर सकल गोसाँई। नाचहिँ नट मरकट की नाँई॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिँ ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिँ कुदाना॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। बेद बिप्र गुरु सन्त बिरोधी॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सृङ्गार नबीना॥
गुरु सिष बधिर अन्ध कर लेखा। एक न सुनइ एक नहिँ देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोरनरक महँ परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिँ। उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिँ।
दो०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिँ न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिँ बिप्र गुरु घात॥
बादहिँ सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह तेँ कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिँ डाटि ॥९९॥
पर तिय लम्पट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेद-बादी ज्ञानी नर। देखा मैँ चरित्र कलियुग कर॥
आपु गये अरु तिन्हहूँ घालहिँ। जे कहुँ सत-मारग प्रतिपालहिँ॥

कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूँड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥
ते बिप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥

दो०—भये बरनसङ्कर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक बियोग॥
स्रुति सम्मत हरिभक्ति-पथ, सञ्जुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पन्थ अनेक॥१००॥

तोटक-वृत्त।

बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि ली न रही बिरती॥
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥
कुलवन्ति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥
ससुरारि पियारि लगी जब तें। रिपु रूप कुटुम्ब भये तब तें॥
नृप पाप-परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडम्ब प्रजा नितहीं॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी। द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरिसेवक सन्त सही कलि सो॥
कबि बृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

दो०—सुनु खगेस कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद, ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥
तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बये न जामहिं धान॥१०१॥

तोटक-वृत्त।

अबला कच भूषन भूरि छुधा। धन हीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संवत पञ्च दसा। कलपान्त न नास गुमान असा॥
कलिकाल बिहाल किये मनुजा। नहिँ मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥
नहिँ तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता॥
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता विगता॥
सब लोग वियोग विसोक हये। बरनास्रम धर्म अचार गये॥
दम दान दया नहिँ जानपनी। जड़ता परबञ्चनताति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिन्दक जे जग मेँ बगरे॥
दो०—सुनु ब्यालारि काल कलि, मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर, बिनु प्रयास निस्तार॥
कृतजुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम तेँ पावहिँ लोग॥१०२॥
कृतजुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहिँ भव प्रानी॥
त्रेता बिबिध जज्ञ नर करहीं। प्रभुहि समर्पि करम भव तरहीँ॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिँ उपाव न दूजा॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिँ भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जज्ञ न ज्ञाना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहिँ। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिँ॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीँ। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीँ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिँ नहिँ पापा॥
दो०—कलिजुग सम जुग आन नहिँ, जौँ नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुनगन बिमल, भव तर बिनहिँ प्रयास॥
प्रगट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान।
जेनकेन बिधि दीन्हे, दान करइ कल्यान॥१०३॥
नित जुग धर्म होहिँ सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे॥
सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्व बहुत रज कछु रति करमा। सब बिधि सुख त्रेता कर धरमा॥
बहु रज सत्व स्वल्प कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥

बुध जुग धरम जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥
काल धरम नहिँ व्यापहिँ ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापइ माया ॥

दो०—हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरिभजन न जाहि।
भजिय राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माहिँ ॥
तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपत्ति बस, तबमैं गयउँ बिदेस ॥१०४॥

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥
गये काल कछु सम्पति पाई। तहँ पुनि करउँ सम्भु सेवकाई ॥
बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काज न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिन्दक। सम्भु उपासक नहिँ हरि निन्दक ॥
तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साँई। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाँई ॥
सम्भु मन्त्र मोहि द्विजवर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा॥
जपउँ मन्त्र सिवमन्दिर जाई। हृदय दम्भ अहमिति अधिकाई ॥

दो०—मैं खल मल सङ्कुल मति, नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखे जरउँ, करउँ बिष्नु कर द्रोह ॥

सो०—गुरु नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दम्भिहि नीति कि भावई ॥१०५॥

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई ॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम-पद होई ॥
रामहिँ भजहिँ तात सिव धाता। नर पाँवर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥
हर कहँ हरिसेवक गुरु कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाये। भयेउँ जथा अहि दूध पिआये ॥
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरु कर द्रोह करउँ दिन राती ॥
अति दयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा॥
जेहि तेँ नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिँ हठि ताहि नसावा ॥
धूम अनल सम्भव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥
सुनु खगपति अस समुझि प्रसङ्गा। बुधनहिँ करहिँ अधमकर सङ्गा॥
कवि कोबिद गावहिँ असि नीती। खलसन कलह न भल नहिँ प्रीती॥
उदासीन नित रहिय गुसाँई। खल परिहरिय स्वान की नाँई॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरु हित कहहिँ न मोहि सुहाई॥

दो०—एक बार हरमन्दिर, जपत रहेउँ सिव नाम।
गुरु आयउ अभिमान तेँ, उठि नहिँ कीन्ह प्रनाम॥
सो दयाल नहिँ कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुरु-अपमानता, सहि नहिँ सके महेस॥१०६॥

मन्दिर माँझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अज्ञ अभिमानी॥
जद्यपि तव गुरु के नहिँ क्रोधा। अति दयाल चित सम्यक बोधा॥
तदपि साप सठ देइहउँ तोही। नीति बिरोध सुहाइ न मोही॥
जौं नहिँ दंड करउँ खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा॥
जे सठ गुरु सन इरिषा करहीँ। रौरव नरक कोटि जुग परहीँ॥
त्रिजग-जोनि पुनि धरहिँ सरीरा। अयुत जनम भरि पावहिँ पीरा॥
बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी॥
महा बिटप कोटर महँ जाई। रहु अधमाधम अध-गति पाई॥

दो०—हाहाकार कीन्ह गुरु, दारुन सुनि सिव साप।
कम्पित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज, सिव सनमुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद गिरा, समुझि घोर गति मोरि॥१०७॥

भुजङ्गप्रयात-वृत्त।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपम्। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्। चिदाकाशमाकाशवासं भजेहम्॥
निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयम्। गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशम्॥
करालं महाकालकालं कृपालम्। गुणागार संसारपारं नतोऽहम्॥
तुषाराद्रिसङ्काशगौरं गँभीरम्। मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम्॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गङ्गा। लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा॥
चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं बिशालम्। प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालम्॥

मृगाधीशचर्म्माम्बरं मुण्डमालम्। प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ॥
प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशम्। अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशम्॥
त्रयःशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्। भजेहं भवानीपतिं भावगम्यम्॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
न यावद्उमानाथ पादारविन्दम्। भजन्तीह लोके परे वा नराणाम्॥
न तावत्सुखं शान्तिसन्तापनाशम्। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम्॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजाम्। नतोहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानम्। प्रभो पाहि आपन्नमामीशशम्भो॥

अनुष्टुप-वृत्त

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

दो०—सुनि बिनती सर्वज्ञ सिव, देखि बिप्र अनुराग।
पुनि मन्दिर नभबानी, भइ द्विजवर वर माँग॥
जौं प्रसन्न प्रभु मो पर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु, पुनि दूसर बर देहु॥
तव माया बस जीव जड़, सन्तत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिन्धु भगवान॥
सङ्कर दीनदयाल अब, एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं, नाथ थोरेही काल॥१०८॥

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी॥
जदपि कीन्ह एहि दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेखी॥
छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जनम सहस्र अवसि यह पाइहि॥
जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई॥
कवनेहुँ जनम मिटिहि नहिं ज्ञाना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥
रघुपति-पुरी जनम तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ॥
पुरी प्रभाउ अनुग्रह मोरे। रामभगति उपजिहि उर तोरे॥

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन-व्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु सन्त अनन्त समाना॥
इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला। काल दंड हरि चक्र कराला॥
जो इन्ह कर मारा नहिँ मरई। बिप्र द्रोह-पावक सो जरई॥
अस बिबेक राखेहु मन माहीँ। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीँ॥
औरउ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत-गति होइहि तोरी॥

दो०—सुनि सिव बचन हरषि गुरु, एवमस्तु इति भाखि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह, सम्भु-चरन उर राखि॥
प्रेरित काल बिन्धिगिरि, जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गये कछु काल॥
जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि, अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान॥
सिव राखी स्तुति नीति अरु, मैं नहिँ पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु, ज्ञान न गयउ खगेस॥१०८॥

त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ। तहँ तहँ रामभजन अनुसरऊँ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ॥
चरम-देह द्विज कै मैं पाई। सुर-दुर्लभ पुरान स्तुति गाई॥
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥
प्रौढ़ भये मोहि पिता पढ़ावा। समुझउँ सुनउँ गुनउँ नहिँ भावा॥
मन तेँ सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी॥
कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सुहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥
भये काल बस जब पितु माता। मैँ बन गयउँ भजन जन त्राता॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावौँ। आस्रम जाइ जाइ सिर नावौँ॥
बूझउँ तिन्हहिँ राम गुन गाहा। कहहिँ सुनउँ हरषित खगनाहा॥
सुनत फिरउँ हरिगुन अनुबादा। अव्याहत-गति सम्भु प्रसादा॥
छूटी त्रिबिध ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम-चरन-बारिज जब देखौँ। तब निज जनम सुफल करि लेखौँ॥
जेहि पूछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्व भूत मय अहई॥

निर्गुन मत नहिँ मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥
दो०—गुरु के बचन सुरति करि, रामचरन मन लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥
मेरु सिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नायउँ, बचन कहेउँ अति दीन॥
सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूछत भये, द्विज आयउ केहि काज॥
तब मैं कहा कृपानिधि, तुम्ह सर्वज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन, मोहि कहहु भगवान॥११०॥
तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक-सादर खगनाथा॥
ब्रह्मज्ञान रत मुनि बिज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिँ भेदा। बारि बीच इव गावहिँ बेदा॥
बिबिध भाँति मुनिमोहिसमुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥
रामभगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सो उपदेस करहु करि दाया। निज नयनन्हि देखउँ रघुराया॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥
तब मैं निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तनु भये क्रोध के चीन्हा॥
सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये। उपज क्रोध ज्ञानिहु के हिये॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चन्दन त होई॥
दो०—बारम्बार सकोप मुनि, करइ निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठ तब, करउँ बिबिध अनुमान॥
क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
माया बस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥१११॥

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परसमनि जा के॥
परद्रोही की होहिँ निसङ्का। कामी पुनि कि रहहिँ अकलङ्का॥
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहिँ स्वरूपहि चीन्हे॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभगति पाव कि परत्रिय-गामी॥
भव कि परहिँ परमात्मा-बिन्दक। सुखी कि होहिँ कबहुँ हरिनिन्दक॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने। अघ कि रहहिँ हरिचरित बखाने॥
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥
लाभ कि किछु हरिभगति समाना। जेहि गावहिँ स्रुति सन्त पुराना॥
हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहिँ नर तनु पाई॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥
एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेश न सादर सुनऊँ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोल बचन सकोपा॥
मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। वायस इव सबही तेँ डरही॥
सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥
लीन्ह स्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिँ कछु भय न दीनता आई॥

दो०—तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिर नाइ।
सुमिरि राम रघुबंसमनि, हरषित चलेउँ उड़ाइ॥
उमा जे राम चरन रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहिँ जगत, केहि सन करहिँ बिरोध॥११२॥

सुनु खगेश नहिँ कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस-बिभूषन॥
कृपासिन्धु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परीछा मोरी॥
मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना॥
रिषि मम महतशीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेखी॥
अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बुलाई॥
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा। हरषित राममन्त्र तब दीन्हा॥
बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥
सुन्दर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिँ मैं तुम्हहिँ सुनावा॥
मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाखा॥

सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई।
रामचरितसर गुप्त सुहावा। सम्भु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ता तेँ मैं सब कहेउँ बखानी॥
रामभगति जिन्ह के उर नाहीँ। कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीँ॥
मुनि मोहि बिबिध भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरनावा॥
निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्हि मुनीसा॥
रामभगति अबिरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे॥

दो०—सदा राम प्रिय होब तुम्ह, सुभगुन-भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ज्ञान बिराग निधान॥
जेहि आस्रम तुम्ह बसब पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या, जोजन एक प्रजन्त॥११३॥

काल करम गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहिँ न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥
बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम-पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीँ। हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीँ॥
सुनिमुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥
एवमस्तु तव बच मुनिज्ञानी यह मम भगत करम मन बानी॥
सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद-सरोज पुनि पुनि सिर नाई॥
हरष सहित एहि आस्रम आयेउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायेउँ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥
करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिँ बिहङ्ग सुजाना॥
जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिँ भगत-हित मनुज सरीरा॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसु रूपा। निज आस्रम आवउँ खगभूपा॥
कथा सकल मैं तुम्हहिँ सुनाई। काग-देह जेहि कारन पाई॥
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। रामभगति महिमा अति भारी॥

दो०—ता तेँ यह तन मोहि प्रिय, भयउ राम-पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ, गयउ सकल सन्देह॥

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ, देखहु भजन प्रताप॥११४॥
जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिँ पय लागी॥
सुनु खगेस हरिभगति बिहाई। जे सुख चाहहिँ आन उपाई॥
ते सठ महा सिन्धु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिँ जड़ करनी॥
सुनि भुसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥
सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ बिस्रामा॥
एक बात प्रभु पूछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥
कहहिँ सन्त मुनि बेद पुराना। नहिँ कछु दुर्लभ ज्ञान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाँई। नहिँ आदरेहु भगति की नाँई॥
ज्ञानहिँ भगतिहि अन्तर केता। सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥
भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु अन्तर। सावधान सोउ सुनु बिहङ्ग बर॥
ज्ञान बिराग जोग बिज्ञाना। ये सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
दो०—पुरुष त्यागि सक नारिहि, जो बिरक्त मतिधीर।
नतु कामी बिषयाबस, बिमुख जो पद रघुबीर॥
सो०—सो मुनि ज्ञान निधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिकल होहिँ हरिजान, नारि बिस्व माया प्रगट॥११५॥
इहाँ न पच्छपात कछु राखौं। बेद पुरान सन्त मत भाखौं॥
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि-बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बेचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ता तेँ तेहि डरपति अति माया॥
रामभगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिँ भगति सकल सुखखानी॥

दो०—यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा, सपनेहुँ मोह न होइ॥
औरउ ज्ञान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम-पद, प्रीति सदा अबिछीन॥११६॥

सुनहु नाथ यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भयउ गोसाँई। बँधेउ कीर मर्कट की नाँई॥
जड़ चेतनहिँ ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब तेँ जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी॥
स्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
जीव हृदय तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परइ न देखी॥
अस सञोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥
सात्विक स्रद्धा धेनु सुहाई। जो हरिकृपा हृदय बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ-धरम अचारा॥
तेइ तृन हरित चरइ जब गाई। भाव बच्छ-सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै। धृति सम जावन देइ जमावै॥
मुदिता मथइ बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

दो०—जोग अगिनि करि प्रगट तब, करम सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावइ ज्ञान घृत, ममता मल जरि जाइ॥
तब बिज्ञान रूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरइ दृढ़, समता दियटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास तेँ काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करइ सुगाढ़ि॥

सो०—एहि बिधि लेसइ दीप, तेज रासि बिज्ञान मय।
जातहिँ जासु समीप, जरहिँ मदादिक सलभ सब॥११७॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप-सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बइठि ग्रन्थि निरुआरा॥
छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। बिघन अनेक करइ तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ देखावहिँ आई॥
कल बल छल करि जाहिँ समीपा। चञ्चल बात बुझावहिँ दीपा॥
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितवन अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघन बुद्धि नहिँ बाधी। तौ बहोरि सुर करहिँ उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।
आवत देखहिँ विषय बयारी। ते हठि देहिँ कपाट उघारी॥
जब सो प्रभञ्जन उर गृह जाई। तबहिँ दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

दो०—तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥
कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छरन्याय ज्यौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥११८॥

ज्ञानपन्थ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिँ बारा॥
जौं निर्बिघ्न पन्थ निर्बहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। सन्त पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाँई। अनइच्छित आवइ बरिआँई॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई॥
तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई॥
अस बिचारि हरिभगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लोभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृतिमूल अबिद्या नासा॥
भोजन करिय तृप्ति हित लागी। जिमि सो असन पचवइ जठरागी॥
असि हरिभगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

दो०—सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम-पद पङ्कज, अस सिद्धान्त बिचारि॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहिँ जीव ते धन्य ॥११९॥
कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥
रामभगति चिन्तामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जा के उरअन्तर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिँ कछु चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिँ आवा। लोभ बात नहिँ ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिँ सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिँ जाहीँ। बसइ भगति जा के उर माहीँ॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिँ मानसरोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
रामभगति मनि उर बस जा के। दुख लवलेस न सपनेहुँ ता के॥
चतुरसिरोमनि तेइ जग माहीँ। जे मनि लागि सुजतन कराहीँ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिँ कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिँ भटमेरे॥
पावन पर्बत बेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगतिमनि सब सुख खानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तेँ अधिक राम कर दासा॥
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा॥
सब कर फल हरिभगति सुहाई। सो बिनु सन्त न काहू पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसङ्गा। रामभगति तेहि सुलभ बिहङ्गा॥
दो०—ब्रह्म पयोनिधि मन्दर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़इ, भगति मधुरता जाहि॥
बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरिभगति, देखु खगेस बिचारि॥१२०॥
पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौँ कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥
प्रथमहिँ कहहु नाथ मतिधीरा। सब तेँ दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहि कहहु बिचारी॥

सन्त असन्त मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥
मानसरोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वज्ञ कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं सन्क्षेप कहउँ यह नीती॥
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मन्द मन्दतर॥
काँच किरिच बदले ते लेहीं। कर तें डारि परसमनि देहीं॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। सन्त सहज सुभाव खगराया॥
सन्त सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असन्त अभागी॥
भूरज तरु सम सन्त कृपाला। पर हित नित सह बिपति बिसाला
सन इव खल पर बन्धन करई। खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥
पर सम्पदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥
सन्त उदय सन्तत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥
परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा। परनिन्दा सम अघ न गिरीसा॥
हरि गुरु निन्दक दादुर होई। जनम सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निन्दक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥
सुर श्रुति निन्दक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक सन्त निन्दा रत। मोह निसा प्रिय ज्ञान भानु गत॥
सब कै निन्दा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥
सुनहु तात अब मानसरोगा। जेहिं तें दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। जेहि तें पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥

पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलाई॥
अहङ्कार अति दुखद डमरुआ। दम्भ कपट मद मान नहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहउँ कुराग अनेका॥

दो०—एक ब्याधि बस नर मरहिँ, ये असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिँ सन्तत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि॥
नेम धरम आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिक नहीँ, रोग जाहिँ हरिजान॥१२१॥

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥
मानसरोग कछुक मैं गाये। हैं सब के लखि बिरलन्हि पाये॥
जाने तेँ छीजहिँ कछु पापी। नास न पावहिँ जन परितापी॥
बिषय कुपथ्य पाइ अङ्कुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥
राम कृपा नासहिं सब रोगा। जौँ एहि भाँति बनइ सञ्जोगा॥
सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा। सञ्जम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपतिभगति सजीवन मूरी। अनूपान स्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं। नाहिँ त जतन कोटि नहिँ जाहीँ॥
जानिय तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥
बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह रामभगति उर छाई॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्मबिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिय राम-पद पङ्कज नेहा॥
स्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं। रघुपतिभगति बिना सुख नाहीँ॥
कमठ पीठि जामहिँ बरु बारा। बन्ध्या-सुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
अन्धकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
हिम तेँ अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

दो०—बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तेँ बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

मसकहि करइ विरञ्चि प्रभु, अजहि मसक तें हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहिँ भजहिँ प्रबीन॥

नगस्वरूपिणी-वृत्त।

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नराभजन्ति जेऽति दुस्तरं तरन्ति ते॥ १२२॥

कहेउँ नाथ हरिचरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥
स्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काम बिसारी॥
प्रभु रघुपति तजि सेइय काही। मो से सठ पर ममता जाही॥
तुम्ह बिज्ञानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्ह मो पर तुम्ह छोहा॥
पूछेहु रामकथा अति पावनि। सुक सनकादि सम्भु मन भावनि॥
सतसङ्गति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥
देखु गरुड़ निज हृदय बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन॥

दो०—आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि, सन्त समागम दीन॥
नाथ जथामति भाखेउँ, राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिन्धु रघुबीर के, थाह कि पावइ कोइ॥१२३॥

सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप रघुराई॥
सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाव कहुँ सुनउँ न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं॥
साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतज्ञ सन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्म निरत पंडित बिज्ञानी॥
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गये मो से अघरासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥

दो०—जासु नाम भवभेषज, हरन ताप त्रयसूल।
सो कृपाल मोपर सदा, रहहु राम अनुकूल॥
सुनि भुसुंडि के बचन सुभ, देखि राम-पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुड़ बिगत सन्देह॥१२४॥

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई॥
मोह जलधि बोहित तुम्ह भये। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दये॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बन्दउँ तव पद बारहिं बारा॥
पूरनकाम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी॥
सन्त बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी॥
सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता॥
जीवन जनम सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥
जानेहु सदा मोहि निज किङ्कर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहङ्गबर॥

दो०—तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥
गिरिजा सन्त समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं बेद पुरान॥१२५॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहिं भव पासा॥
प्रनत कलपतरु करुना पुञ्जा। उपजइ प्रीति राम-पद कञ्जा॥
मन बच करम जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा स्रवन मन लाई॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। सञ्जम दम जप तप मख नाना॥
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी॥
सो रघुनाथभगति स्रुति गाई। राम कृपा काहू एक पाई॥

दो०—मुनि दुर्लभ हरिभगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि बिस्वास॥१२६॥

सोइ सर्वज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महिमंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना। स्रुति सिद्धान्त नीक तेहि जाना॥
सो कबि कोबिद सो रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥
धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥

धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निजधर्म न टरई॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी॥
धन्य घरी सोइ जब सतसङ्गा। धन्य जनम द्विज भगति अभङ्गा॥

दो०—सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत ॥१२७॥

मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥
यह न कहिय सठहीं हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरिलीलहि॥
कहिय न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचरस्वामिहि॥
द्विज द्रोहिहि न सुनाइय कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥
रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह के सतसङ्गति अति प्यारी॥
गुरु पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज-सेवक अधिकारी तेई॥
ताकहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रान प्रिय श्रीरघुराई॥

दो०—राम-चरन-रति जो चहइ, अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा, करउ स्रवन पुट पान ॥१२८॥

रामकथा गिरिजा मैं बरनी। कलिमल समनि मनोमल हरनी॥
संसृतिरोग सजीवन मूरी। रामकथा गावहिं स्रुति भूरी॥
यहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपतिभगति केर पन्थाना॥
अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ यहि मारग सोई॥
मनकामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥
सुनि सुभ कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥
नाथ कृपा मम गत सन्देहा। राम-चरन उपजेउ नव नेहा॥

दो०—मैं कृतकृत्य भयउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी रामभगति दृढ़, बीते सकल कलेस ॥१२९॥

यह सुभ सम्भु-उमा सम्बादा। सुख सम्पादन समन बिषादा॥
भव भञ्जन गञ्जन सन्देहा। जन रञ्जन सज्जन प्रिय एहा॥
राम-उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्हके कछु नाहीं॥
रघुपति कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा॥
रामहिँ सुमिरिय गाइय रामहिँ। सन्तत सुनिय रामगुन-ग्रामहिँ॥
जासु पतित-पावन बड़ बाना। गावहिँ कवि स्रुति सन्त पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहिँ पाई॥

हरिगीतिका-छन्द।

पाई न केहि गति पतितपावन, राम भजि सुनु सठमना।
गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिँ राम नमामि ते॥१७॥
रघुबंस-भूषन चरित यह नर कहहि सुनहिँ जे गावहीँ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम, रामधाम सिधावहीँ॥
सतपञ्च चौपाई मनोहर, जानि जो नर उर धरैं।
दारुन अविद्या-पञ्च जनित विकार श्रीरघुबर हरैं॥१८॥
सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम-हित निर्बान प्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस तेँ मतिमन्द तुलसीदासहूँ॥
पायउ परम बिस्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥१९॥

दो०—मोसम दीन न दीनहित, तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भव भीर॥
कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥१३०॥

शार्दूलविक्रीड़ित-वृत्त

यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं।
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्तुं तु रामायणम्॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥१॥
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं बिज्ञान भक्तिप्रदं।
मायामोहमलापहं सुविमलंप्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्राम चरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये॥
ते संसार पतङ्ग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥२॥

इति श्रीराम चरितमानसे सकलकलि कलुषविध्वंसने अविरल हरिभक्ति सम्पादनो नाम सप्तमः सोपानः समाप्तः

शुभमस्तु-मङ्गलमस्तु

गोसाईं जी की जीवनी सहित है। पृष्ठ संख्या १४५०, मूल्य लागत मात्र केवल ≈) । इसी असली रामायण का एक सस्ता संस्करण भी हमने जनता के लाभ के लिये छापा है। सचित्र और सजिल्द १३०० पृष्ठों का मूल्य ४॥) प्रत्येक कांड अलग अलग भी मिल सकते हैं।

दुःख का मीठा फल—इस उपन्यास के नाम ही से समझ लीजिये। मूल्य ॥≈)

कर्मफल—यह सामाजिक उपन्यास बड़ा शिक्षाप्रद और रोचक है। मूल्य ॥)

हिन्दीकवितावली—यह उत्तम कविताओं का संग्रह बालक बालिकाओं के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ।)

प्रेम-तपस्या—एक सामाजिक उपन्यास (प्रेम का सच्चा उदाहरण) मूल्य ।')

हिन्दी साहित्य सुमन—छोटे लड़कों के लिए यह पुस्तक अपूर्व है (सचित्र) मूल्य ॥)

सचित्र विनय पत्रिका—गोस्वामीजी की इस दुर्लभ पुस्तक का दाम मय टीका और राग परिचय के सिर्फ ।) है सजिल्द ।)

विनय कोश—विनयपत्रिका के सम्पूर्ण शब्दों का अकारादि से संग्रह करके विस्तार से अर्थ है। मूल्य १)

हनुमान बाहुक—प्रति दिन पाठ करने योग्य, मोटे अक्षरों में बहुत शुद्ध छपा है। मूल्य ≈)॥

गीता—(पाकेट एडिशन) श्लोक और उनका सरल हिन्दी में अनुवाद है। अन्त में गूढ़ शब्दों का कोश भी है। मूल्य ॥≈)

गुटका रामायण—यह असली रामायण छोटे रूप में अत्यन्त शुद्ध तथा सजिल्द और २० रंगीन भिन्न २ प्रकार के चित्रों से सुशोभित है मूल्य केवल लागत मात्र १।)

हिन्दी महाभारत—सरल हिन्दी में कई सुंदर रंगीन चित्रों के सहित १८ पर्वों का सारांश छपा है। मूल्य ३)

नैपकुसुम—इस पुस्तक में कई छोटी बड़ी कहानियाँ हैं जो बड़ी रोचक और शिक्षाप्रद हैं। पढ़िये और घरेलू जिन्दगी का आनन्द लूटिये। मूल्य ॥।)

कवित्त रामायण—पं० रामगुलाम जी द्विवेदी कृत पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ सहित छपी है। मूल्य ।≈)

तुलसी ग्रन्थवली—रामायण के अतिरिक्त तुलसीदास जी के कुल ग्यरहों ग्रन्थ शुद्धता पूर्वक मोटे मोटे बड़े अक्षरों में छपे हैं और पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ दिये हैं। १ रंगीन और २ सादे चित्रों के सहित सजिल्द का मूल्य ४)

चित्र माला—अति सुंदर मनोहर बारह बारह रंगीन चित्रों का संग्रह है। प्रथमखंड मूल्य ॥।) दूसरा खंड मूल्य ॥।)

[illegible]न्द्र भूषण—एक सचित्र सजिल्द उत्तम मौलिक जासूसी उपन्यास है। मूल्य १)

काव्य निर्णय—काव्य प्रेमी सज्जनों के लिये अत्यन्त ही लाभदायक पुस्तक है। दास कवि का बनाया हुआ इस उत्तम

ग्रन्थ का ऐसी सरल टीका-टिप्पणी आज तक न हुई थी। मूल्य १।)

हिन्दी साहित्य प्रदीप—कक्षा ५ व ६ के लड़कों के लिये (सचित्र) ॥≈)

हिन्दी साहित्य सागर—कक्षा ३ व ४ के लिये (सचित्र) मूल्य ।-)॥

सुमनोञ्जलि प्रथम भाग—इस पुस्तक में हिन्दू धर्म सम्बन्धी विविध प्रकार की बातों का संग्रह है। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक है। सजिल्द मूल्य ॥≈)

लोक संग्रह अथवा संतति विज्ञान—(सचित्र) मूल्य ॥।≈)

संदेह—यह मौलिक क्रांतकारी उपन्यास अनूठा और बिलकुल नया है। दाम ॥।) राजसंस्करण १।)

लोक परलोक हितकारी—इसमें कुल महात्माओं के उत्तम उपदेशों का संग्रह किया गया है। पढ़िये और अनमोल जीवन को सुधारिये। मूल्य ॥।=)

मिलने का पता—

मैनेजर, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

# संतबानी पुस्तकमाला

[जीवन-चरित्र हर महात्मा के उन की बानी के आदि में दिया है]

कबीर साहिब का साखी संग्रह ... ... १=)
कबीर साहिब की शब्दावली, पहला भाग ... ॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, दूसरा भाग ... ॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, तीसरा भाग ... ।=)
कबीर साहिब की शब्दावली, चौथा भाग ... ≡)
कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेख़्ते और झूलने ... ।=)
कबीर साहिब की अखरावती ... ... =)
धनी धरमदास जी की शब्दावली ... ... ॥-)
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की शब्दावली भाग १ ... १=)
तुलसी साहिब दूसरा भाग पद्मसागर ग्रंथ सहित ... १=)
तुलसी साहिब का रत्नसागर ... ... १।-)
तुलसी साहिब का घट रामायण पहला भाग ... १॥)
तुलसी साहिब का घट रामायण दूसरा भाग ... १॥)
गुरु नानक की प्राण-संगली सटिप्पण पहला भाग ... १॥)
गुरु नानक की प्राण-संगली दूसरा भाग ... १॥)
दादू दयाल की बानी, भाग १ "साखी" ... १॥)
दादू दयाल की बानी, भाग २ "शब्द" ... १)
सुंदर विलास ... ... ... १-)
पलटू साहिब भाग १—कुंडलियाँ ... ... ॥)
पलटू साहिब भाग २—रेख़्ते, झूलने, अरिल, कवित्त, सवैया ॥)
पलटू साहिब भाग ३—भजन और साखियाँ ... ॥)
जगजीवन साहिब की बानी, पहला भाग ... ॥-)
जगजीवन साहिब की बानी, दूसरा भाग ... ॥-)
दूलन दास जी की बानी ... ... ।)॥
चरनदास जी की बानी, पहला भाग ... ... ॥-)

...दास जी की बानी, दूसरा भाग ... ..

गरीबदास जी की बानी ... ...

रैदास जी की बानी ... ... ...

दरिया साहिब (बिहार) का दरिया सागर ...

दरिया साहिब के चुने हुए पद और साखी ..

दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी ..

भीखा साहिब की शब्दावली ... ..

गुलाल साहिब की बानी ... ..

बाबा मलूकदास जी की बानी ... ..

गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी ..

यारी साहिब की रत्नावली ... ..

बुल्ला साहिब का शब्दसार ... .

केशवदास जी की अमीघूँट ... ..

धरनी दास जी की बानी ... ..

मीरा बाई की शब्दावली ... ..

सहजो बाई का सहज-प्रकाश ... ..

दया बाई की बानी ... ... ..

संतबानी संग्रह, भाग १ [साखी] ... ..

[ प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहि

संतबानी संग्रह, भाग २ [शब्द]

[ ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित जो भाग १ में

कु

अहिल्या बाई ... ... ...

दाम में डाक महसूल व रजिस्टरी शामिल नहीं

उसके ऊपर लिया जायगा—

मिलने का पता—

मैनेजर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद